

कान्त-साहित्य-सदन
भरुहवरिया, मिर्जापुर

विद्रोही सुभाष

स्व० कुशवाहा 'कान्त'



प्रकाशक
त्रिलोक कुशवाहा
कान्त-साहित्य-सदन
महुवरिया, मिर्जापुर





संशोधित संस्करण
पाँच रुपया आठ आना

मुद्रक
ऊषा प्रिंटिंग वर्क्स
बनारस

तुरन को

पिता जी की कुछ पुस्तकें बहुत अशुद्ध और फूहड़ ढंग से प्रकाशित हो रही थीं। उन्होंने अपने पाठकों के अनुरोध से, उनका संशोधित-संस्करण स्वयं निकालने का निश्चय कर लिया था। छपाई आरंभ भी हो गई थी कि सहसा ही वे चल बसे। सारा कार्य अपने स्थान पर रुक गया।

स्नेही पाठकों के अनुरोध अब भी बराबर हो रहे हैं। विवश होकर मुझे उनके द्वारा आरम्भ कार्य को पूरा करना पड़ रहा है।

आशा है, पाठकों से पूर्ववत् स्नेह-सहयोग प्राप्त होगा।

—त्रिलोक कुशवाहा

विद्रोही सुभाष

लगभग पचास वर्ष पूर्व !

सन् १८५७ के प्रबल विद्रोह के चालीस, बयालीस साल बाद !

उस समय, भारत महान् ग़दर की करुण-कहानी भूला चुका था। पाशविक अत्याचारों की गाथा, केवल गाथा रह गई थी। गोरी चमड़ी-वाले नर-पशुओं ने अभागे भारत पर जो ज़ुल्म ढाया था, विद्रोह का शमन करने के लिये जो अमानुषिक नरमेध हुआ था—उसकी स्मृति भारतीय जनता के मस्तिष्क से विलीन हो चुकी थी।

ऐसे समय !

२३ जनवरी सन् १८९७ ई० !

स्वच्छाकाश पर सफ़ेद बादल के कई टुकड़े तैर रहे थे। हवा में एक सिहरनकारी मृदुलता आ गई थी।

कटक प्रदेश का स्निग्ध वातावरण, एक नवजात शिशु का स्वागत करने के लिए पूर्णतया प्रस्तुत था।

रायबहादुर जानकीनाथ बोस व्यग्रतापूर्वक दरवाज़े पर टहल रहे थे। घर भर में डाक्टरों तथा अनुभवी नर्सों की भीड़ उमड़ पड़ी थी।

रायबहादुर जानकीनाथ बोस कटक में सरकारी वकील थे। प्रभावती

देवी उनकी सहधर्मिणी थीं, जो आज प्रसव-पीड़ा से व्याकुल होकर सूतिका-गृह में क्रन्दन कर रही थीं। पत्नी का करुण स्वर रह-रहकर, हवा के साथ तैरता हुआ, रायबहादुर के कानों में आ पहुँचता था और कोमल हृदय रायबहादुर अपनी पत्नी की पीड़ा का अनुमान करके बेचैन हो उठते थे।

टहलते-टहलते रुक गये रायबहादुर। व्यस्त भाव से जाती हुई एक नर्स की ओर देखा उन्होंने, उत्कंठापूर्ण भंगिमा से।

परन्तु नर्स ने उनकी ओर देखा नहीं—वह आगे बढ़ती गई।

"नर्स !..." पुकारा रायबहादुर ने।

नर्स रुक गई। घूमकर उनके सामने आ खड़ी हुई वह।

रायबहादुर ने देखा, नर्स की मुखाकृति अत्यन्त गम्भीर थी।

उसकी गम्भीर भंगिमा देखकर वे शंकित हुए।

"क्या है सर ?..." नर्स ने नम्रतापूर्ण गम्भीर वाणी में पूछा।

"नर्स !..." कहते-कहते रायबहादुर का गला अवरुद्ध हो गया। उनके मुख से स्वर ही न निकल सका।

"आप घबड़ायें नहीं—" नर्स ने कहा—"हम लोग पूरी कोशिश कर रहे हैं। आगे भगवान की इच्छा।"

"हालत क्या बहुत ख़तरनाक है नर्स ?"—

रायबहादुर ने अपने हृदय को संयत करके पूछा।

"अभी कुछ कहा नहीं जा सकता—" नर्स बोली—"सिवा इसके कि आप धैर्य रखें...मैं आपरेशन का सामान लेने डिसपेंसरी जाती हूँ..."

कहकर चली गई नर्स !

और हताश रायबहादुर पुनः दरवाज़े पर व्यग्रतापूर्वक टहलने लगे।

बहुत देर तक टहलते रहे वे ! एकाएक रुक गये।

सूतिका-गृह से प्रभावती देवी के क्रन्दन का स्वर द्विगुणित हो उठा। हाथ मलने लगे रायबहादुर जानकीनाथ बोस।

उसी समय एक नवजात शिशु का रुदन-स्वर हवा पर सवार होकर वायु-मंडल में नृत्य कर उठा।

चौंक पड़े रायबहादुर—शिशु का रुदन स्वर उनके अन्तराल में प्रवेश कर, हर्षोल्लास की सृष्टि करने लगा।

वृक्षों की टहनियाँ मस्ती से झूम उठीं।

वायु हहरकर बहने लगा।

चिड़ियाँ चहचहाने लगीं।

विस्मरण-सा छा गया रायबहादुर पर।

उनके श्रवणों में किसी का गायन मधुर सन्देश देता हुआ प्रवेश कर गया—

मसलहत का है तक़ाज़ा, वक़्त की आवाज़ है।
राहे आज़ादी में मरने का, यही अन्दाज़ है॥
ऐ अजीज़ाने वतन, तू अस्ल में जाने वतन।
शान है तेरी वतन से, और तू शाने वतन॥

स्वतन्त्रता की यह मधुर रागिनी!

आज़ादी का वह दिव्य सन्देश!

दुनिया का पहला स्वर, जो उस नवजात शिशु के कानों में पड़ा, वह यही था।

रायबहादुर ने घूमकर देखा—

एक बुड्ढा फ़क़ीर खड़ा था, गाता हुआ।

"कुछ इम्दाद दो जनाबे आली!—" फ़क़ीर बोला—"हज़ूर के घर बेटे ने जन्म लिया है। ख़ुदा बच्चे को तन्दुरुस्ती बख़्शे और उसकी दिलेरी की कहानियाँ मानिन्द आफ़ताब हों..."

वह एक बुज़ुर्ग फ़क़ीर का आशीर्वाद था!

नवजात शिशु के विषय में भविष्योक्ति थी वह!

रायबहादुर ने प्रसन्नतापूर्वक एक रुपया निकालकर उस फ़कीर के आगे फेंक दिया।

फ़कीर चला गया।

उसी समय हँसती हुई एक नर्स सूतिका-गृह से निकली।

"मुबारक हज़ूर!—" कहा उसने—"बेटा हुआ..."

"मगर..."

"आपरेशन की ज़रूरत नहीं पड़ी"—नर्स ने कहा—"बच्चा बहुत तन्दुरुस्त है। देवीजी की हालत अब एकदम ठीक है।"

रायबहादुर की प्रफुल्लता द्विगुणित हो उठी, प्रभावती देवी के सकुशल प्रसव करने का समाचार सुनकर।

उसी दिन!

द्वार पर शहनाइयाँ बजीं।

मित्रों ने रायबहादुर को पुत्र-प्राप्ति के उपलक्ष्य में बधाइयाँ दीं और उपहार भेजे।

× × × × ×

दिन बीतते गये।

बसन्त ऋतु का पीलापन, पतझड़ के झंझावात में विलीन हो गया।

नवजात शिशु चाँद-सा निखरता गया।

मृदुल समीरण ने उसे मधुर थपकियाँ दे-देकर सुलाया, हर्षोन्मत्त पक्षियों ने उसे अपना मुग्धकारी कलरव सुनाया, भारतमाता की ममता-मयी धूल ने उसे वात्सल्य प्रदान किया, प्रभावती देवी ने अपने दुग्ध से उसकी पोषणा की—

और वह शिशु महीने पर महीने पार करता रहा।

ग्रीष्म की सन्ध्या ने उसे दुलराया, चुमकाया—वर्षा की बूँदों ने उसके स्वस्थ शरीर पर फुहारें डालीं—शिशिर ने उसे लिहाफ़ में दुबका-कर सुलाया—

और देखते-देखते वह पूर्णमासी का चन्द्रमा, वह सलोना शिशु साल भर का हो गया।

और तब !

उसका नामकरण हुआ सुभाष !

दिन बीतते देर नहीं लगती।

ग्रीष्म, वर्षा और शिशिर का क्रम पूर्ववत चलता रहा—

और वह शिशु, जो एक दिन असहाय क्रन्दन करता हुआ इस संसार में आया था, सात वर्ष का हो गया।

शिक्षारम्भ हो चुका था।

अपनी प्रखर बुद्धि द्वारा सुभाष ने अपने माता-पिता तथा शिक्षकों को भी चकित कर दिया था।

माता-पिता को सुभाष की गम्भीरता देखकर शका होने लगी थी।

सुभाष में चंचलता नाम मात्र को भी नहीं थी। वे सदैव अत्यन्त गम्भीर रहा करते थे। अन्य बालकों की तरह खेल-कूद में उनका तनिक भी मन नहीं लगता था।

वे सदैव एकान्त में बैठकर न जाने क्या सोचा करते थे।

बालक सुभाष की एकान्तप्रियता से रायबहादुर जानकीनाथ बोस भयभीत हो उठे थे। उन्होंने सुभाष को चंचल बनाने के लिये बहुतेरा प्रयत्न किया, मगर सब निष्फल।

और एक दिन !

आश्विन मास की दुर्गा नवमी थी। बंगवासियों के घर-घर में समारोह के साथ माता शक्ति की उपासना की जा रही थी।

रायबहादुर जानकीनाथ बोस और उनकी सहधर्मिणी प्रभावती देवी अत्यन्त धार्मिक भावों के थे। उनके घर में देवी की स्वर्ण-प्रतिमा थी, जिसकी उपासना प्रभावती देवी नित्य किया करती थीं।

दुर्गानवमी के दिन प्रभावती देवी ने शक्ति का विधिवत् शृङ्गार किया।

बालक सुभाष भी उपासना के समय उपस्थित थे। वे एक आसन पर गम्भीरता धारण किये हुए बैठे थे और मनोयोग-पूर्वक शक्ति की उपासना देख रहे थे।

उनकी माता ने प्रतिमा को स्नान कराया, चन्दन और कुंकुम मस्तक पर लगाया, पुष्पमाला गले में डाली और तत्पश्चात् मन ही मन अपने कुटुम्ब की मंगल कामना करने लगीं।

उपासना समाप्त हो चुकने पर प्रभावती देवी ने दुर्गा माता का प्रसाद उठाया और सुभाष के समक्ष आ खड़ी हुईं।

"प्रसाद लो बेटा !..." कहा उन्होंने

"......" परन्तु बालक सुभाष ने जैसे कुछ सुना ही नहीं।

वे एकटक देवी की स्वर्ण प्रतिमा की ओर देख रहे थे। नेत्र विन्दु शक्ति की प्रतिमा की ओर केन्द्रित थे।

"बेटा सुभाष !—" माता ने पुनः पुकारा—"देवी का प्रसाद लो बेटा !"

"......" सुभाष अब भी चुप रहे।

"तुम क्या सोच रहे हो ?—" माता ने उच्च स्वर में कहा—"देवी का प्रसाद क्यों नहीं लेते सुभाष ?"

सुभाष जैसे सोते से जगे हों। चौंक पड़े वे।

बोले—"क्या है माताजी ?...है क्या ?..."

"देवी का प्रसाद लो बेटा !—" माता प्रभावती ने कहा।

"देवी का प्रसाद ? किस देवी का ?—"

"जिसकी ओर अभी इतनी तन्मयतापूर्वक तुम देख रहे थे बेटा !—"

"वह किस देवी की प्रतिमा है माताजी ?—" पूछा सुभाष ने।

"मातेश्वरी दुर्गा की—"

"बड़ी भव्य प्रतिमा है यह !..." सुभाष ने कहा।

"माता-शक्ति की प्रतिमा भला क्यों न भव्य होगी ?..."

"तो क्या माता-शक्ति यही हैं ?—" चौंककर सुभाष ने पूछा।

"हाँ बेटा !..." माता ने कहा।

"शक्ति देवी की उपासना तुम इस तरह करती हो माताजी ?"

"किस तरह ?—"

"धूप दीप और कुंकुम से...?"

"तो और किस तरह की जाती है उपासना ?—" माता प्रभावती को सुभाष की बातें सुनकर अत्यन्त आश्चर्य हो रहा था।

"नहीं माताजी !—" सुभाष बोले—"शक्ति की उपासना, धूपदीप और कुंकुम से नहीं की जाती..."

"तो......"

"शक्ति की उपासना की जाती है शस्त्रों की टंकार से...आत्म-बलिदान से..." सुभाष ने कहा।

"......" आश्चर्य विस्फारित नेत्रों से देखने लगीं माता प्रभावती, बालक सुभाष के मुख की ओर।

"और..." सुभाष कहते गये—"मातेश्वरी शक्ति पुष्पमाला से प्रसन्न नहीं होतीं। वे प्रसन्न होती हैं रक्त की बूँदों से...मातेश्वरी की उपासना के लिये ख़ून चाहिये...साधक का ख़ून..."

और सुभाष ने तुरन्त ही अपनी जेब से चाकू निकालकर अपनी उँगली चीर दी। ख़ून बहने लगा।

प्रभावती देवी चीत्कार कर उठीं।

परन्तु बालक सुभाष तनिक भी विचलित न हुए। उन्होंने आगे बढ़-कर अपने बहते हुए ख़ून से, शक्ति के मस्तक में लाल टीका लगा दिया।

"यह है शक्ति की वास्तविक उपासना !—" हँसकर बोले सुभाष।

डरकर प्रभावती देवी ने अपने नेत्र बन्द कर लिये।

यह थी एक घटना !

सुभाष ने अपनी बाल्यावस्था में ही आत्म-बलिदान का पाठ पढ़ा, दलितों के प्रति आँसू बहाना सीखा और शोषकों का नाश करने के लिये अपने ख़ून की आहुति देने का दृढ़ संकल्प किया।

ख़ून से सींचा करो, अपने वतन की याद।
ए ख़ुदाई नूर ! तुमसे है यही फ़रियाद॥

तीन-चार साल और व्यतीत हुए।

सन् १९०९ ई० में सुभाष कटक कालेजियेट स्कूल में भर्त्ती हुए।

स्कूल के प्रधानाध्यापक थे बाबू बेणीमाधवदास। उनका चरित्र अत्यन्त उज्वल था। धार्मिक विषयों के वे प्रकाण्ड विद्वान् थे।

बाबू बेणीमाधवदास के उज्वल चरित्र का बालक सुभाष पर गहरा प्रभाव पड़ा। वे उनके सच्चे अनुयायी बन गये।

वेणी बाबू ने भी बालक सुभाष के अन्तराल में छिपी हुई विद्रोह भावना का परिचय पाया। वे समझ गये कि इस शिशु के नन्हें से शरीर में एक महान् आत्मा उपस्थित है।

यह सब जानकर वेणी बाबू की प्रसन्नता का पारावार न रहा।

उन्होंने सुभाष को विद्रोह-भावना का ज़हर पिला-पिलाकर, उनकी सोई हुई क्रान्ति को ठोकरें मार-मारकर उकसाया।

और बालक सुभाष के कोमल हृदय में योग्य गुरु की शिक्षाओं ने अगम विद्रोह की सृष्टि कर दी।

वे दिन रात, सोते जागते, अपने देश की पराधीनता का चिन्तन कर व्याकुल-से रहने लगे।

उनकी माता, अपने पुत्र का रंग-ढंग देखकर पहले ही शंकित हो उठी थीं। अब सुभाष की यह परिवर्तित भंगिमा देखकर उन्हें परम आश्चर्य हुआ।

माता प्रभावती ने, बालक सुभाष का हृदय धार्मिक विषयों की ओर लगाना चाहा। उन्होंने उसे रामकृष्ण चरितामृत का नियमपूर्वक पाठ कराया—योगासन की शिक्षा दी—और धार्मिक विषयों की आलोचना-प्रत्यालोचना करना सिखाया।

बालक सुभाष का कोमल हृदय, कुछ दिनों के लिये, परतन्त्रता का करुण क्रन्दन भूल गया और धर्मपथ पर तीव्रता के साथ अग्रसर हुआ।

माता प्रभावती अत्यन्त प्रसन्न हुईं, पुत्र का मन धार्मिक विषयों में लगते देखकर।

एक दिन—

सुभाष की धार्मिक प्रेरणा असहायों का करुण क्रन्दन सुनकर चीत्कार कर उठी।

जाजपुर के परगने में हैज़ा फैला था। सैकड़ों पुरुष प्रतिदिन काल-कवलित हो रहे थे।

दीन-दुखिया-ग़रीबों की वह हृदयविदारक पुकार सुनकर सुभाष की प्रेरणा हाहाकार कर उठी।

दोपहर को जब वे भोजन करने बैठे, तो थाली ज्यों की त्यों सामने रखी रह गई और उस दयालु बालक की विचारधारा दीनों के दुख का चिन्तन करती रही।

"यह क्या सुभाष?...तूने अभी तक खाया नहीं—" प्रभावती देवी ने कहा। वे ध्यानपूर्वक सुभाष की अव्यवस्थित भंगिमा देख रही थीं।

"खाता हूँ माताजी!..." सुभाष ने अन्यमनस्क भाव से उत्तर दिया।

"बात क्या है ?—" माता प्रभावती ने पूछा—"तुझे हो क्या गया है आज ?...तू कौर क्यों नहीं उठाता ?"—

"हजारों दुखियारे घुल-घुलकर मर रहे हों...और मैं यहाँ आराम से बैठकर खाना खाऊँ ?...यह नहीं हो सकेगा मुझसे।"

थाली छोड़कर उठ खड़े हुए सुभाष। माता ने उन्हें रोकना चाहा, परन्तु आँधी के प्रबल वेग को कौन रोक सकता है ?

दृढ़ संकल्प की भावना लिये हुए सुभाष पहुँच गये, प्रधानाध्यापक बाबू वेणीमाधवदास के घर।

वेणी बाबू अपने कमरे में बैठे उस दिन का समाचार-पत्र देख रहे थे।

सुभाष उनकी कुर्सी के पीछे जा खड़े हुए।

उन्होंने देखा कि उनके सामने खुले हुए समाचार पत्र में भी जाज-पुर परगने में हैज़े के प्रकोप का हृदयविदारक समाचार छपा था और वेणी बाबू उस समाचार को ध्यानपूर्वक पढ़कर कुछ सोच रहे थे।

"मास्टर साहब !..." सुभाष ने धीरे से पुकारा।

चौंक पड़े वेणी बाबू।

पीछे घूमकर देखा तो सुभाष।

"क्या है सुभाष ?...आओ बैठो..."

"........."

और सुभाष चुपचाप उनके सामने जाकर खड़े हो गये, बैठे नहीं।

"बड़े उद्विग्न दिखाई पड़ रहे हो ? क्या बात है ?—" पूछा मास्टर साहब ने।

"मास्टर साहब !—" सुभाष बोले—"अभी आप समाचारपत्र पढ़ते हुए क्या सोच रहे थे ?—"

"सोच रहा था कि मानव जाति का दुख पराकाष्ठा तक पहुँच चुका है—"

"........."

सुभाष ने वेणी बाबू की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा।

"जाजपुर में हैज़ा फैला हुआ है—" मास्टर साहब कहते गये—"निरीह प्राणी पशुओं की तरह मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं...मैं सोच रहा था कि क्या उन ग़रीबों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करनेवाला आज कोई मानव नहीं ? क्या हैज़े को मारात्मक रोग समझकर, सभ्य कहलाने वाला एक भी पशु वहाँ जाकर उनकी सहायता नहीं कर सकता ?"

शिक्षक और शिक्षार्थी, दोनों के हृदय में एक ही भाव थे, एक ही पीड़ा थी, एक ही लक्ष्य था।

"तुम इस दोपहरी में कैसे दौड़े आये सुभाष ?—" पुनः पूछा वेणी बाबू ने।

"मैं भी सभ्य कहलाने वाला एक पशु ही हूँ मास्टर साहब !—" सुभाष बोले—"परन्तु वह पशु नहीं, जो हैज़े को मारात्मक रोग समझकर वहाँ जाने से डरता हो..."

चौंक पड़े वेणी बाबू !

"तुम्हारा मतलब ?—" बोले वे—"सुभाष ! तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?..."

"मुझे चैन नहीं है मास्टर साहब !...जब से मैंने जाजपुर के विषय में सुना है, तब से न ठीक से खाना खा सका हूँ और न सो सका हूँ..."

"तुम करना क्या चाहते हो ?—"

"मैं वही करना चाहता हूँ, जो हमारे योग्य शिक्षक ने हमें सिखाया है..." रुककर कहा सुभाष ने—"मैं जाजपुर चलकर पीड़ितों का दुख देखना चाहता हूँ..."

"क्या करोगे देखकर वह हृदयविदारक दृश्य ?—"

"वह दृश्य देखकर मैं अपने अन्तराल में बसे हुए निकृष्ट मानव को जगाऊँगा और असहायों की यथाशक्ति सेवा करके अपने को पशुओं की श्रेणी से अलग करूँगा..."

बारह वर्ष के उस अबोध बालक का दृढ़ संकल्प देखकर चिन्ता-निमग्न हो गये वेणी बाबू!

"तुम सरकारी वकील के बेटे हो सुभाष!"—उन्होंने कहा—"अब तक तुमने सुख में ही अपना जीवन व्यतीत किया है...क्या तुम दुखों का सामना कर सकोगे?..."

"आप मेरे सर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दीजिये मास्टर साहब! और मैं सब कष्ट हँसते-हँसते झेल लूँगा..."

"तुम हठी हो बेटे!—" वेणी बाबू हँसकर बोले—"मगर तुम्हारा यह हठ भी अपूर्व है!...चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। तुम्हें कष्ट की जगह अकेले कैसे जाने दूँ..."

और तब!

असहायों की सहायता का दृढ़ संकल्प लेकर वे दोनों दीवाने निकल पड़े गाँवों की ओर।

दो महीनों तक मारे-मारे फिरते रहे और दलितों की सेवा में अपने दिन बिताते रहे दोनों।

इधर रायबहादुर जानकीनाथ बोस सुभाष के लुप्त होने से बहुत उद्विग्न थे। उन्होंने उनका पता लगाने के लिये बहुत प्रयत्न किया, मगर उनका पता न लग सका।

दो महीने बाद सुभाष घर आकर, सीधे अपने पिता के सामने जा खड़े हुए।

रायबहादुर उन्हें देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए, परन्तु अनवरत परिश्रम द्वारा सुभाष को कृषकाय देखकर उन्हें दुख भी हुआ।

"सुभाष!..."

"पिताजी!..."

"कहाँ थे इतने दिनों तक?..."

"जाजपुर में!"

"जाजपुर में ?—" चौंककर बोले रायबहादुर—"जाजपुर में, जहाँ मृत्यु का ताण्डव हो रहा था ?—"

"जी हाँ !—" नत मस्तक सुभाष ने उत्तर दिया ।

"क्या कर रहे थे वहाँ तुम सुभाष ?—"

"सेवाकार्य कर रहा था..."

"सेवाकार्य ?"—अत्यधिक आश्चर्य से बोले रायबहादुर—"तुम सेवाकार्य कर रहे थे ?—"

"........."

चुप रहे सुभाष ।

"जो स्वयं दूसरों से सेवा कराने का अधिकारी है, वह दलितों की सेवा करे ?..." रायबहादुर बोले—"तुम्हें अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान न आया ?"

"......"

"तुमने नीच मनुष्यों की तरह सेवावृत्ति अंगीकार की, परन्तु तुम यह भूल गये कि तुम उस बाप के बेटे हो, जो रायबहादुर है और जिसका सम्मान सरकारी अफसर तक करते हैं..."

"......"

एकाएक सुभाष की भंगिमा दृढ़ हो उठी । वे तनकर खड़े हो गये ।

"पिताजी !..." तेज़ी के साथ बोले सुभाष—"जो मान-प्रतिष्ठा मानवता के पवित्र भावों पर लात मारकर ग्रहण की गई हो, वह तुच्छ है..."

"......"

आश्चर्य विस्फारित नेत्रों द्वारा देखने लगे रायबहादुर, सुभाष की ओर ।

"जो सरकारी पद दलितों के प्रति दयाभाव के बदले घृणा प्रदान करता है वह मेरी दृष्टि में हेय है...घृणित है..."

और वह विद्रोही बालक तेजी के साथ अपने पिता के सामने से चला गया।

निरन्तर अन्यान्य विषयों का चिन्तन करते-करते सुभाष, अपनी पढ़ाई की ओर विशेष ध्यान नहीं दे सकते थे।

फिर भी उनमें प्रतिभा थी—उनके मस्तिष्क में ज्ञान का अगम भण्डार उपस्थित था—

शिक्षकगण उनकी अप्रतिम योग्यता देखकर आश्चर्यचकित थे। थोड़ी ही अवस्था में उनमें अँग्रेज़ी भाषा का अगम ज्ञान था। उनके मुख से शुद्ध और साफ़ गोरी भाषा सुनकर गोरे भी प्रभावित हो उठते थे।

सन् १९१३ ई० में सुभाष ने मैट्रीक्यूलेशन परीक्षा पास की। उत्तीर्ण क्षात्रों में उनका दूसरा स्थान था।

उन्हीं दिनों रायबहादुर जानकीनाथ बोस ने, कलकत्ते में एलगिन रोड पर एक भव्य भवन बनवाया।

रायबहादुर साहब का अभिप्राय यह था कि उच्च शिक्षा प्राप्त करते समय उनके पुत्रों को कलकत्ते में कोई कष्ट न हो।

१९१३ के जुलाई मास में सुभाष ने कलकत्ते के प्रेसिडेन्सी कालेज में प्रवेश किया और उसी मकान में रहने लगे।

उसी समय डाक्टर सुरेश बनर्जी ने नवयुवकों की एक संस्था स्थापित की।

इस संस्था में वे विद्रोही युवक ही प्रवेश कर सकते थे, जो आजीवन अविवाहित रहकर मातृ-भूमि तथा पीड़ितों की सेवा करने का व्रत लेते थे।

जब सुभाष बाबू ने इस संस्था के विषय में सुना, तो उनकी विद्रोही आत्मा उल्लसित हो उठी।

उन्होंने तुरन्त ही जाकर उस संस्था में अपना नाम लिखाया। विद्रोही सुभाष, जीवन में प्रथम बार एक संस्था के संसर्ग में आये।

वे मनोयोगपूर्वक संस्था का प्रचार करने लगे।

उनके वाक्यों में जादू था, उनकी वाणी में दैवी शक्ति थी।

फल यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में कालेज के बहुत से क्षात्र उक्त संस्था के सदस्य हो गये।

उन्हीं दिनों डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र घोष ने भी इस संस्था में प्रवेश किया।

सन् १९१४ ई० में, कलकत्ते में रामकृष्ण मिशन का वार्षिकोत्सव था। दूर-दूर से विद्वान पधारे थे।

उत्सुकतावश सुभाष भी जा पहुँचे।

स्वामी विवेकानन्द का तेजोन्मय मुखमंडल देखते ही सुभाष अत्यन्त प्रभावित हुए।

और जब स्वामीजी की गम्भीर वाणी ने स्थिर स्वर में कहा—"सत्य की खोज करो—"

तो युवक सुभाष पर जादू-सा फिर गया।

सत्य क्या है? और कहाँ मिलेगा?

सोचने लगे सुभाष!

उन्होंने सुन रखा था कि सत्य की खोज करने के लिये महात्मा लोग हिमालय पर्वत की ओर जाते हैं और अँधेरी गुफ़ाओं तथा भयावह कन्द-राओं में योगसाधना करते हुए महान् शक्ति प्राप्त करते हैं।

फिर क्या था?

विद्रोही सुभाष ने पढ़ाई पर लात मार दी और उस अनोखी वस्तु 'सत्य' की खोज करने निकल पड़े घर से।

घर पर किसी को भी अपने जाने की सूचना न दी। चुपचाप चल दिये, महान् शक्ति प्राप्त करने।

घनघोर अँधेरी में,

प्रचण्ड धूप में,

बरसते हुए आकाश में—

वह दृढ़ प्रतिज्ञ युवक हिमालय के जंगलों में मारा-मारा फिरा, परन्तु न तो उसे कहीं सत्य की झलक दिखाई दी और न तो कोई योग्य गुरु ही मिला, जो उसे आध्यात्म का सच्चा मार्ग दिखलाता।

हिमालय के एकान्त वास से ऊबकर सुभाष आगरा आये। यहाँ पर उनकी भेंट प्रेमानन्द सन्यासी से हुई।

सन्यासीजी योग्य पुरुष थे, ग्रेजूएट भी थे, परन्तु उनका रहन-सहन गृहस्थों के समान था, जो सुभाष को अच्छा न लगा।

आगरे से सुभाष वृन्दावन पहुँचे। वृन्दावन में वे राजर्षि बनमाली राय से मिले। बनमाली राय ने सुभाष के पठनार्थ धार्मिक ग्रन्थों की उचित व्यवस्था कर दी।

सुभाष की प्रबल बुद्धि देखकर रामकृष्ण दास नामक साधु ने उन्हें सलाह दी कि आप काशी जाकर ज्ञान मार्ग का उपदेश लें।

सुभाष बाबू काशी आये।

बहुत दिनों तक उन्होंने रामकृष्ण मिशन के ब्रह्मानन्द स्वामी के साथ धर्म-चर्चा की।

एक दिन स्वामीजी ने उन्हें घर जाने की आज्ञा दे दी, क्योंकि वे यह नहीं चाहते थे कि बिना माता-पिता की अनुमति के वह मेधावी युवक सन्यास धारण करे।

स्वामीजी की आज्ञा शिरोधार्यकर सुभाष काशी से अपने घर की ओर चल पड़े।

परन्तु अब भी जिस सत्य की खोज में वे निकले थे, वह उन्हें कहीं न मिल सका था।

हाँ! काशी में धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन ने उन्हें कुछ शान्ति अवश्य प्रदान की थी।

रास्ते में सुभाष का मन पुनः डगमगा उठा और वे गया में ट्रेन से उतर पड़े।

उन्होंने सुन रखा था कि गया एक महान् तीर्थ है। उन्हें आशा थी कि अवश्य ही वे गया में 'सत्य' की शोध करने में सफल होंगे।

उतरने को तो सुभाष गया में उतर गये, परन्तु वे यह निश्चय न कर सके कि कहाँ जाँय और क्या करें?

वे निरुद्देश्य भाव से इधर-उधर चक्कर लगाने लगे। रास्ते में एक मन्दिर के सामने अपार भीड़ देखकर वे रुक गये।

एक मोटा-सा पंडा उनके पास आया।

बोला—"दर्शन करोगे बच्चा?"

"किसका दर्शन?"—उत्सुकतावश पूछा सुभाष ने।

"महन्थ महाप्रभु का!"—पंडे ने उत्तर दिया।

"क्या महन्थ महाप्रभु का दर्शन करने से मुझे शान्ति मिल सकेगी?"—सुभाष ने कहा—"क्या मुझे सत्य का ज्ञान हो सकेगा?"

पंडे ने आश्चर्यपूर्वक उस युवक की ओर देखा। वह समझ गया कि यह नादान युवक घर से भटककर चला आया है।

बोला वह—"महन्थ महाप्रभु के तुम शिष्य हो जाओ बच्चा! तुम्हें पूर्ण शान्ति मिलेगी..."

"और सत्य?—"

"उसका भी ज्ञान तुम्हें हो जायगा..." पंडे ने कहा।

"तो मुझे महन्थ महाप्रभु के पास ले चलो"—सुभाष बोले—"मैं उस पवित्र आत्मा का शिष्य होने को प्रस्तुत हूँ..."

"चलो !..."

आगे आगे वह पंडा और पीछे-पीछे सुभाष उस विशाल मन्दिर में प्रविष्ट हुए।

एक विशाल प्राङ्गण में आकर चौंक पड़े सुभाष। स्थिर हो गये उनके पग।

उन्होंने देखा कि गौर वर्ण का एक दीर्घाकार व्यक्ति चाँदी के एक विशाल आसन पर बैठा था। बदन एकदम नग्न था, केवल कमर में सोने की करधनी में कोपीन पड़ी थी। वे ही थे महन्थ महाप्रभु !

उच्च कुल की कितनी ही नवयौवनाएँ महन्थ महाप्रभु का पूजन करने वहाँ आई थीं। पूजन के लिये दुग्ध से भरे हुए बर्तन और फलों की टोकरियाँ लाई थीं।

बारी-बारी से एक-एक युवती महन्थ महाप्रभु के पास जाती थी और महन्थ के ऊपर दुग्ध का बर्तन उँड़ेलकर, उन्हें मल-मलकर नहलाती थी और अपने कोमल हाथों द्वारा फल छील कर महन्थ महाप्रभु को खिलाती थी।

महन्थ महाप्रभु हँस-हँसकर, नयनों से कटाक्ष का तीर चला-चलाकर, सब की पूजा स्वीकार करते थे।

सौन्दर्य का अपूर्व समारोह था मन्दिर के उस विशाल प्राङ्गण में।

सुभाष चित्रलिखित-से खड़े थे। वे वह दृश्य देखने में इतने तल्लीन थे कि अपना अस्तित्व तक भूल गये थे।

"आओ बेटा !..." पंडे ने कहा—"महन्थ महाप्रभु के चरणों की वन्दना करो..."

चुपचाप आगे बढ़कर सुभाष ने महन्थ के चरण छुए। महन्थ ने हँसकर उनके सर पर अपना हाथ फेरा।

"देवदूत !..." महन्थ ने पंडे को पुकारा।

"आज्ञा महाप्रभु !—" पंडे ने आगे बढ़कर महन्थ के सामने हाथ जोड़ दिये।

"यह युवक कौन है ?—" महन्थ ने पूछा ।

"यह एक पथभ्रान्त युवक है महाप्रभु !..."

"यहाँ आने का कारण ?—"

"यह आपकी सेवा का अभिलाषी है देव ! और महाप्रभु की चरण वन्दना करके सत्य की खोज करना चाहता है..."

"अच्छा ! अच्छा !..." महन्थ ने तीक्ष्ण दृष्टि से सुभाष की ओर देखा—"तुम सत्य का अनुसन्धान करने आये हो भोले युवक ?..."

"हाँ महाप्रभु !..." सुभाष ने कहा ।

"एवमस्तु !...तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी..." महन्थ ने कहा—"देवदूत ! इस युवक के वास-स्थान का प्रबन्ध कर दो...आज रात्रि में इसकी दीक्षा हो जायगी..."

"जो आज्ञा महाप्रभु !—" देवदूत बोला ।

मन्दिर के वहिर्प्रान्त में सुभाष को एक छोटी-सी कोठरी मिल गई । सुभाष ने उसी में अपना डेरा डाला ।

उस मन्दिर का वातावरण न जाने क्यों सुभाष को पसन्द नहीं आया । महन्थ का आचरण भी उन्हें संदिग्ध जान पड़ा ।

फिर भी वे उत्सुकतापूर्वक रात्रि काल की प्रतीक्षा करने लगे । वे यह देखने को लालायित थे कि उनकी दीक्षा होती किस प्रकार है ।

सन्ध्या हुई—

और रात्रि के भयावह अन्धकार ने अपने पंख फैला दिये ।

मन्दिर का कण-कण तीव्र ज्योति में जगमगा उठा । संसार की भयंकर कालिमा जैसे वहाँ थी ही नहीं ।

रात्रि का प्रथम प्रहर व्यतीत हो चुकने पर देवदूत सुभाष के पास आया ।

बोला—"चलो बेटे ! अब तुम्हारी दीक्षा का समय हो चुका..."

"चलिये !..." कहकर सुभाष देवदूत के पीछे-पीछे चले ।

इस समय मन्दिर के एक दूसरे प्राङ्गण में सुभाष ने प्रवेश किया। वहाँ का दृश्य देखकर तो सुभाष को पहले से भी अधिक आश्चर्य हुआ।

सबसे पहले उनकी दृष्टि प्राङ्गण की चित्रित दीवालों पर पड़ी। उन्होंने देखा कि स्थान-स्थान पर नग्न स्त्री-पुरुषों के कामुक चित्र बने हैं।

दूसरी ओर दृष्टि गई तो उन्होंने देखा कि महन्थ महाप्रभु आकर्षक परिधान धारण किये हुए रजत आसन पर उपस्थित हैं और उनके आस-पास बीसों अर्द्धनग्न युवतियाँ लज्जा परित्याग किये खड़ी हैं।

सुभाष के आते ही सबकी दृष्टि उनकी ओर उठ गई।

युवतियाँ उन्हें घूर-घूरकर विचित्र हाव-भाव प्रदर्शित करने लगीं।

"आओ वत्स!..." महन्थ ने पुकारा सुभाष को।

सुभाष चित्र-लिखित से आगे बढ़े और एक छोटे रजत आसन पर जाकर बैठ गये।

"चरणांबु उपस्थित करो..." महंथ महाप्रभु ने युवतियों को आज्ञा दी।

युवतियाँ यन्त्र चालित-सी उठ खड़ी हुईं।

सुभाष का हृदय आशंकित हो उठा, जब कि उन्होंने देखा कि हर एक युवती के हाथ में किसी 'लाल शर्बत' का प्याला है।

चरणाम्बु क्या था, बोतल का हलाहल था।

उनमें से एक देवाङ्गना, जो सबसे सुन्दर तथा सुडौल शरीर वाली थी, आगे बढ़ी। अपने हाथ के हलाहल का पात्र, महन्थ महाप्रभु के होठों से लगा दिया उसने।

महन्थ ने पात्र में से दो घूँट पिये, फिर उस युवती को अपनी गोद में खींचकर उसके अधरों का हलाहल पान किया।

और तब—

वह युवती, अपनी नाज़ुक कमर पर सैकड़ों बल देती हुई, सुभाष के सामने आ खड़ी हुई।

उसका हाथ हलाहल का पात्र लिये सुभाष के होंठों की ओर बढ़ा।

और सुभाष तेजी के साथ उठ खड़े हुए।

सहमकर युवती दो पग पीछे हट गई।

"महाप्रभु का चरणाम्बु पान करो युवक !..." आज्ञा भरे स्वर में देवदूत बोला।

"........" भावावेश में सुभाष कुछ बोल न सके। उनकी आँखें जल उठीं, लाल अंगारे की तरह।

"महावारुणी का तिरस्कार न करो युवक! महाप्रभु का अपमान करके तुम सुख न प्राप्त कर सकोगे..." देवदूत ने कहा और कई पग आगे बढ़कर सुभाष के सन्मुख आ खड़ा हुआ।

"यह नीच कर्म मुझसे नहीं हो सकेगा..." तीव्र स्वर में सुभाष ने कहा। और पलटकर वे द्वार की ओर बढ़े।

"ठहरो !..." महन्थ का कठोर गर्जन सुनाई पड़ा।

रुककर सुभाष ने पीछे की ओर देखा।

महन्थ ने बलपूर्वक अपना क्रोध दूर किया और स्वर में यथाशक्ति नम्रता लाकर बोला—"लौट आओ नादान युवक!...मत पान करो चरणाम्बु, मगर शान्त चित्त होकर अपने आसन पर बैठे रहो..."

न जाने क्या सोचकर सुभाष लौट आये और अपने आसन पर जा बैठे।

इसके बाद उस पवित्र प्राङ्गण में मदिरा की नदी बह उठी। लज्जा तथा मनुष्यत्व को तिलांजलि दे दी गई और पाशविक कामुकता का साम्राज्य छा गया।

प्रज्वलित नयनों से देखते रहे सुभाष, वह सब।

अन्त में महन्त ने आज्ञा दी—"महाप्रसाद उपस्थित करो..."

शीघ्र ही मांसाहार की थालियाँ आ प्रस्तुत हुईं।

सुभाष की सहनशीलता भाग खड़ी हुई। उन्हें ऐसा लगा कि जिस 'सत्य' की खोज में वे दर-दर भटकते फिरे, वह सत्य तो उनके सामने ही उपस्थित है।

परन्तु कितना कटु था वह 'सत्य'—

उठकर खड़े हो गये सुभाष।

"चाण्डालों! पवित्र देव-भूमि को तुम लोगों ने विहार-क्षेत्र बना लिया है?...धिक्कार है!..."

"चुपचाप बैठे रहो!—" गरजकर बोला महन्थ।

"दीनहीन भारतवासियों को लूटकर तुम लोग अपने लिये मदिरा और विलास की सामग्री प्रस्तुत करते हो...लुटेरों! तुम लोगों को गोली मार देनी चाहिये..."

"देवदूत!..." चिल्ला पड़ा महन्थ।

"आज्ञा महाप्रभु!..."

"इस युवक के लिये महानरक की व्यवस्था करो..."

"जो आज्ञा देव!...?"

देवदूत अपनी भीमकाय आकृति लेकर सुभाष की ओर बढ़ा।

"वहीं खड़े रहो..." युवक सुभाष ने मेघ गर्जना की।

वह गर्जना सुनकर सहम गया देवदूत। उसने सुभाष की आँखों की ओर देखा।

जलती मशाल हो रही थीं सुभाष की आँखें। उनमें अगम आत्म-बल भरा हुआ था। उन प्रज्वलित नेत्रों में एक दाहक शक्ति विद्यमान थी, जिससे देवदूत का साहस उस युवक की ओर बढ़ने का न हुआ।

"देवदूत! आगे बढ़ो..." महन्थ चिल्लाया।

"वहीं खड़े रहो..." सुभाष गरजे।

और आज विलासी महन्थ ने देखा कि उस जैसे दीर्घाकार व्यक्ति की आत्म-शक्ति, उस अपरिचित युवक के आत्म-बल के समक्ष तुच्छ है।

देवदूत अपने स्थान पर निश्चल खड़ा रहा।

और 'सत्य' का अनुसन्धान करके सुभाष, मन्थर गति से, उस अपवित्र भूमि से बाहर हो गये।

सुभाष जिस 'मधुर सत्य' की खोज में घूम रहे थे, उसके स्थान पर उन्हें प्राप्त हुआ था एक 'कटु सत्य'—

वह 'कटु सत्य' जान कर सुभाष के हृदय में ढोंगी महात्माओं के प्रति प्रबल विद्रोह जागृत हो उठा। अब उन्होंने भटकने की हठ छोड़ दी और घर लौट जाने का निश्चय किया। शीघ्र ही वे विशाल नगरी कलकत्ता को लौट आये। ट्राम से उतर कर वे सीधे अपने घर पहुँचे।

दरवाजे पर ही उनकी भेंट अपने मामा से हो गई। आँखें फाड़-फाड़कर सुभाष को देखने लगे, क्योंकि निरन्तर भ्रमण करते तथा कष्ट सहते-सहते सुभाष का स्वास्थ्य एकदम नष्टप्रायः हो चुका था।

सुभाष के आने का समाचार घर भर में प्रसारित हो गया।

माता प्रभावती दौड़ी हुई आईं और झपटकर सुभाष को कलेजे से लगा लिया। रोने लगीं वे।

बोलीं—"सुभाष! मुझे दुख देने के लिये ही तू इस संसार में आया है।...अब यदि तू फिर कहीं जाने की ठानेगा, तो मैं अपने प्राण दे दूँगी।"

रायबहादुर जानकीनाथ बोस भी आ गये। अपने पिता को देखकर सुभाष के नेत्र सजल हो उठे।

रायबहादुर, सुभाष का हाथ पकड़कर उन्हें अपने कमरे में लाये। सुभाष की आँखें नीची थीं, और रायबहादुर की मुखाकृति थी गम्भीर।

"सुभाष!..." ने पुकारा।

"जी!..." नीचे देखते हुए सुभाष ने कहा।

"आँखें ऊपर करो सुभाष!..." रायबहादुर बोले—"मेरी ओर देखो!"

"......" एक क्षण के लिये सुभाष ने अपने पिता के मुख की ओर देखा।

चौंक पड़े वे—उनके गालों पर बहते हुए आँसुओं को देखकर।

रायबहादुर जानकीनाथ सचमुच रो रहे थे। सुभाष के चले जाने पर वे अत्यन्त दुखित थे।

"कहाँ गये थे सुभाष ?—" पूछा रायबहादुर ने, स्निग्ध स्वर में।

"......" और सुभाष ने क्रमशः सारी घटनायें यथातथ्य अपने पिताजी को सुना दीं।

सुनकर रायबहादुर बोले—"कितने परेशान थे हम लोग—भला एक पत्र तो डाल देना था तुम्हें ? क्या अब हम लोग तुम्हारे लिये एकदम पराये हो गये ?..."

"......" कुछ उत्तर न दे सके सुभाष।

"तुमने धर्म धुरंधरों की संगति की है..." रायबहादुर पुनः बोले—"क्या तुम मेरी कुछ बातों का उत्तर दोगे ?"

"पूछिये !..." नम्रभाव से कहा सुभाष ने।

"संसार में धर्म है कि नहीं ?...त्याग के लिये तैयारी आवश्यक है या नहीं ?...अपने कर्त्तव्य से विमुख होना क्या उचित है ?..."

"संसार में धर्म है !..." सुभाष बोले—"केवल एक धर्म—मानव-धर्म !...परन्तु सबके लिये एक ही मार्ग उपयुक्त नहीं..."

"......" सुन रहे थे रायबहादुर।

"और त्याग की भावना संस्कार द्वारा उत्पन्न होती है...त्याग के लिये सबको एक-सा प्रयत्न नहीं करना पड़ता..."

"......"

"कर्त्तव्य शब्द सापेक्ष है। बड़ों की आज्ञा के सामने छोटों की आज्ञा का कोई महत्व नहीं रह जाता। ज्ञान की प्राप्ति होते ही कर्म का नाश हो जाता है..."

"हूँ !..." रायबहादुर ने कहा—"यह बताओ कि अद्वैतज्ञान, 'ब्रह्मसत्य जगतमिथ्या' केवल सिद्धान्त मात्र है या और कुछ ?"

"जबतक हम केवल इन शब्दों का उच्चारण करते रहते हैं—" सुभाष ने कहा—"तब तक ये सिद्धान्त मात्र हैं। परन्तु इनकी प्राप्ति के बाद ये सत्य हो जाते हैं और यत्न करने पर इनकी प्राप्ति सम्भव है।"

"यह तुम्हारी सूझ है या तुम्हारे गुरु की ?—" रायबहादुर ने व्यंगात्मक स्वर में पूछा।

"यह हमारी सूझ नहीं है—" सुभाष बोले—"इस सिद्धान्त का प्रतिपादन उन महर्षियों ने किया है, जिन्होंने इसकी प्राप्ति की थी और उन्होंने ही उस मार्ग का निर्देश किया है, जिस पर चलकर हम लोग भी इस अलभ्य वस्तु को प्राप्त कर सकते हैं..."

"......" कुछ सोच रहे थे रायबहादुर जानकीनाथ बोस। शायद सुभाष की तर्क शक्ति पर स्वयं उन्हें भी अचम्भा हो रहा था।

"रामकृष्ण परमहंस ने इसे सत्य करके दिखा दिया था—" कहते गये सुभाष—"स्वामी विवेकानन्द मेरे आदर्श हैं..."

कुछ कह न सके रायबहादुर।

केवल इतना कहा—"जब दूसरी बार तुम्हें अन्तरात्मा की पुकार सुनाई देगी, तो देखा जायगा।"

सुभाष कुछ न बोले और अपनी माता के पास चले आये।

सुभाष के लौटने की खुशी, सबसे अधिक उनकी माता प्रभावती को थी। उनको तो जैसे उनका जीवन ही मिल गया था।

रात्रि को सुभाष जब भोजन करने बैठे, तो उनकी माता रोने लगीं।

आज बहुत दिनों के पश्चात् वे अपने लाड़ले पुत्र को अपने हाथों से परसकर खिला रही थीं।

"अब तो मैं आ गया माताजी ! अब तुम आँसू क्यों बहा रही हो ?—" सुभाष ने पूछा।

"तू तो आ गया है ज़रूर, मगर कितना तड़पाया है, कितना रुलाया है तूने मुझे—कि मैं ही जानती हूँ..."

"परन्तु अब तो तुम्हारे रोने-तड़पने का अन्त हो जाना चाहिये माताजी !..." सुभाष बोले।

"अपनी दशा तो देख—" माता ने कहा—"फूल-सा बच्चा मेरा, सूखकर काँटा हो गया है तू !..."

यात्रा में अनेक कठिनाइयों का सामना करते-करते सुभाष का कोमल शरीर जर्जर हो उठा था।

परिणाम यह हुआ कि दो-चार दिन में ही उन्हें रोग ने आ घेरा। प्रबल टायफायड का उन पर आक्रमण हुआ।

माता-पिता अत्यन्त चिन्तित हुए। डाक्टरों के अनवरत परिश्रम से महीनों में जाकर तब सुभाष का स्वास्थ्य सुधरा।

अभी रोग-शैय्या से उठे ही थे कि परीक्षा सिर पर आ धमकी। साल भर से कुछ पढ़ा तो था नहीं। केवल इने-गिने दिनों में किताबें शुरू से आख़ीर तक देख डालीं।

और आश्चर्य कि प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए सुभाष।

सन् १९१५ ई० !

प्रथम श्रेणी में एफ० ए० (आर्ट्स) पास कर चुकने के पश्चात् सुभाष ने बी० ए० में प्रवेश किया। और दर्शन शास्त्र में आनर्स चुना।

यह देखा जाता है कि कुछ विद्यार्थी रट-रटाकर परीक्षायें पास कर लेते हैं, परन्तु ऐसे लड़कों की आत्मायें कभी समुन्नत नहीं हो सकतीं। वे संसार में कोई भी उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करने का साहस नहीं कर सकते।

परन्तु सुभाष का मस्तिष्क अत्यन्त तीक्ष्ण था और उनकी आत्मा भी सबल थी। उनकी आँखें कोई भी अन्यायपूर्ण कार्य होते नहीं देख सकती थीं। अनाचार देखकर उनका विद्रोही रक्त खौल उठता था।

एक दिन !

कालेज के अँग्रेज प्राफ़ेसर क्लास ले रहे थे। उनका नाम था सी० एफ० ओटन ! गोरी चमड़ीवाले पक्के अँगरेज़ थे वे। विद्यार्थियों को बात-बात में भद्दे वाक्य कह बैठते थे।

सुभाष उनकी पीरियड में पहले ही पहल आये थे, अतः उन्हें प्रोफ़ेसर ओटन का दुर्व्यवहार अब तक मालूम न था।

प्रोफ़ेसर साहब ने एक विद्यार्थी से कोई सवाल पूछा। वह विद्यार्थी उनके प्रश्न का समुचित उत्तर न दे सका। यह बात प्रोफ़ेसर ओटन का क्रोध भड़काने के लिये पर्याप्त थी।

वे तड़पकर बोले—"यू रास्कल ! तुम पढ़ता-लिखता नहीं। घर पर जाकर खेलने-कूदने सकता है !"

प्रोफ़ेसर के मुँह से अपशब्द सुनकर विद्रोही सुभाष विचलित हो उठे।

उस विद्यार्थी ने कहा—"सर ! आपका सवाल मेरी समझ में नहीं आया। आप समझाकर कहने की कृपा कीजिये..."

"यू ब्लैक मङ्की ! तुम सवाल भी नहीं समझने सकता ?"

अब असह्य हो उठा सुभाष के लिये। वे तेज़ी से उठ खड़े हुए।

"तुम बैठ जाओ !—" क्रोध से बोला प्रोफ़ेसर।

"ज़बान सम्हालकर शब्द निकालिये मुँह से प्रोफ़ेसर साहब !—" सुभाष तीक्ष्ण स्वर में बोले।

"यू ब्लडी ! .." चिल्लाया प्रोफ़ेसर—"तुम बैठने माँगता या नहीं ?..."

सुभाष ने आग्नेय नेत्रों से देखा, उस सफ़ेद निशाचर की ओर। और कई पग आगे बढ़कर प्रोफ़ेसर के सामने आ खड़े हुए।

"तुम अपने को समझते क्या हो प्रोफ़ेसर ?—" बोले सभाष—"तुमने हमें कुत्ता समझ लिया है ?"

"हाँ, कुत्ते हो तुम लोग—" प्रोफ़ेसर ने झिड़ककर घृणापूर्ण वाणी में कहा।

"हम लोग कुत्ते हैं—" तड़पकर कहा सुभाष ने—"और तुम ?... तुम क्या हो ?...हमारी आज़ादी छीनकर हमें गुलाम बनाने वाले ज़लील, बोलो तुम क्या हो ?..."

"......" क्रोध से काँपने लगा प्रोफ़ेसर ओटन ।

"हम लोग कुत्ते हैं, काले बन्दर हैं और मूर्ख हैं—" कहते गये सुभाष—"केवल इसलिये कि हम परतन्त्र हैं—हमें तबाह कर, हमें लूट कर सुख चैन की नींद सोने वाले लुटेरे, सुफ़ेद शैतान, बोलो तुम क्या हो ?...यहाँ आकर हमारी नौकरी करने वाले, हमारे टुकड़ों पर पलने वाले नरपशु !...तुम अपने को बहुत उच्च समझते हो ?..."

"शट अप यू बास्टर !..." कहकर प्रोफ़ेसर जाने लगा ।

उसके मुख से भद्दी गाली सुनकर सुभाष के बदन का खून आँखों में उतर आया ।

वह गाली थी, जिसे एक शासक ने शासित को दी थी ।

वह गाली थी, जिसे एक गोरे ने काले को दी थी ।

प्रोफ़ेसर ओटन के मुख से निकली हुई वह गाली अभागे भारत की पराधीनता का उपहास थी—गोरी सरकार की दम्भपूर्ण-शासन-नीति की प्रतीक थी ।

रोम-रोम काँप उठा सुभाष का । उन्होंने दौड़कर प्रोफ़ेसर ओटन का गला पकड़ लिया । देखते-देखते उस बलिष्ट युवक के पंजों के काले दाग़, ओटन की गोरी चमड़ी पर उमड़ आये ।

"किस मुँह से कहा तुमने हमें बास्टर—" गरजकर बोले सुभाष—"किस ज़बान से तुमने यह गाली निकाली...खींच लूँगा ज़बान—ज़लील कुत्ता कहीं का !"

सुभाष की चौड़ी हथेली ओटन के रक्तिम गालों पर आ पड़ी । पाँचों उँगलियाँ छापे की तरह उभर आईं ।

वह पहला तमाचा था ।

सन् १८५७ के बाद, ब्रिटेन के मुख पर विद्रोही भारत का वह पहला तमाचा था।

दुनिया भर में गर्व से सर उठाये हुए चलनेवाले अँगरेज़ों का मान उस एक तमाचे ने मर्दन कर दिया।

क्रोध से काँपता हुआ प्रोफ़ेसर श्रोटन प्रिन्सिपल के पास दौड़ा गया।

और उसी दिन सुभाष को विद्रोही ठहराकर कालेज से निकाल दिया गया।

कालेज से निकाल दिये जाने के पश्चात् सुभाष अपने पिता के पास कटक आये।

पिता ने उनसे असमय में, बिना सूचित किये हुए आने का कारण पूछा और सुभाष ने यथा-तथ्य सारी घटनायें वर्णन कर दीं।

सुनकर रायबहादुर जानकीनाथ गम्भीरता धारण कर, न जाने क्या सोचने लगे। उन्होंने अपने पुत्र को क्या बनाना चाहा था और वह क्या बन गया?

बड़ी देर के बाद बोले वे—"यह अच्छा नहीं हुआ सुभाष!"

"जो होता है, वह अच्छा ही होता है पिताजी!—" कहने लगे सुभाष—"मैं बहुत दिनों से इस बात का अनुभव करता आ रहा हूँ कि मेरा जन्म एक निश्चित ध्येय की पूर्ति के लिये हुआ है..."

"तुम्हारे जीवन का उद्देश्य चाहे जो कुछ हो—" रायबहादुर बोले—"मगर यह निश्चित है कि तुम्हारे कार्यों ने तुम्हारा भविष्य अंधकारपूर्ण कर दिया है। तुम जिसे अपनी ध्येयपूर्ति का मार्ग समझते हो, वह एक युवक की नादानी का परिणाम भी हो सकता है..."

"मैं जनमत को अपने हृदय में आदरणीय स्थान नहीं दे सकता पिताजी!...लोग तो अपने मतानुसार सभी वस्तुओं का खंडन-मंडन किया करते हैं...परन्तु मेरा भविष्य-मार्ग तो विषद है...मुझ पर इन आलोचनाओं की प्रतिक्रिया नहीं हो सकती..."

"तुम्हें कभी न कभी अपने विचारों में परिवर्तन करना ही पड़ेगा सुभाष !..." बोले रायबहादुर दृढ़ स्वर में।

"यह तो दुर्बलता होगी—" सुभाष ने कहा—"जो मनुष्य लोगों के व्यवहार से ऊबकर क्षण प्रति क्षण अपना मन बदलते रहते हैं, वे दुर्बल हैं...उनमें आत्मबल नहीं..."

"तुममें आत्मबल है सुभाष ?—" पिता ने पूछा।

"आत्मबल के ही आधार पर तो आप से इतनी बातें कह रहा हूँ..." बोले सुभाष।

"तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं सुभाष !—" रायबहादुर ने कहा—"पता नहीं इस जीवन में कभी समझ भी सकूँगा तुम्हारा अभिप्राय, अथवा नहीं..."

"मेरा अभिप्राय अत्यन्त सरल है पिताजी !..."

"तुम्हारा लक्ष्य क्या है ?..."

"मेरा लक्ष्य आकाश है—" सुभाष ने उत्तर दिया—"और मैं मार्ग में पड़नेवाले संकटों से नहीं घबड़ा सकता..."

"तुम देवता बनना चाहते हो सुभाष ?—"

"नहीं पिताजी !..." सुभाष बोले—"मैं मानव बनना चाहता हूँ... पूर्ण मानव !...और पूर्ण मानव बनने के लिये तीन बातों की आवश्यकता है..."

"कौन कौन ?..."

रायबहादुर को उस युवक की बातों में आनन्द का आभास मिल रहा था, इसीलिये उन्होंने प्रश्न किया।

"अतीत का गौरव, वर्तमान का मूर्त रूप और भविष्य का पैगम्बर !—" बोले सुभाष—"और अपने को पूर्ण मानव बनाने के लिये मैं इन तीनों को प्राप्त करूँगा..."

"तुमने एक बात पर कभी ध्यानपूर्वक सोचा है सुभाष ?"—पूछा रायबहादुर ने।

"कौन-सी बात ?—"

"यही कि पुत्र पर पिता का भी कुछ उत्तरदायित्व होता है और वह पुत्र के सुनहले भविष्य का निर्माणकर्त्ता है..."

"......" चुप रहे सुभाष।

"तुम मेरे पुत्र हो और मैं हूँ तुम्हारा पिता..."

रुक कर रायबहादुर ने ध्यानपूर्वक सुभाष के चेहरे की ओर देखा। शायद अपनी बातों का प्रभाव जानने के लिये—

तत्पश्चात् कहने लगे—"तुम्हारा पूर्ण उत्तरदायित्व मुझ पर है... तुम्हारे भविष्य को अन्धकारमय बनाना मुझे अभीष्ट नहीं..."

"......" सुन रहे थे सुभाष, एकाग्र चित्त से।

"और न तो मैं यही चाहता हूँ कि तुम्हारी उत्कट अभिलाषाओं का दमन करूँ, क्योंकि मैं यह बात भलीभाँति जानता हूँ कि अभिलाषायें ही सफलता की जननी हैं..." रुक कर बोले रायबहादुर—"परन्तु क्या तुमने यह भी कभी सोचा है कि आजकल तुम्हारी जीवन-धारा किस ओर प्रवाहित हो रही है ?..."

"जीवन धारा तो सदैव भिन्न-भिन्न मार्गों का अवलम्बन करती है"—सुभाष कहने लगे—"कभी कल्याण मार्ग की ओर अग्रसर होती है तो कभी बहकर न जाने किस अतल तल में जा पहुँचती है...भारतवर्ष का कौन अभागा युवक होगा, जो इन बातों का अनुभव न करता हो। हम लोग धन्य हैं, जो हमारा जन्म इस शुभ युग में हुआ। हमें आगामी नर-मेध के लिये अपने रक्त की आहुति देनी पड़ेगी..."

"तुम जाकर आराम करो..." ऊबकर बोले रायबहादुर जानकी-नाथ बोस।

सुभाष की बातें, ऊलजलूल होने के कारण कभी उनकी समझ में नहीं आतीं थीं।

दो वर्ष तक सुभाष कटक में बैठे रहे।

सन् १९१७ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइसचांसलर सर आशुतोष मुखर्जी के अकथ प्रयत्न से सुभाष को पुनः अध्ययन आरम्भ करने की आज्ञा मिली।

स्काटिश चर्च कालेज में वे प्रविष्ट हुए और प्रथम श्रेणी में दर्शन शास्त्र में बी० ए० पास किया।

उस समय सुभाष की अवस्था बाइस वर्ष की थी। सन् १९१९ में उन्होंने बी० ए० पास किया था।

बी० ए० पास कर चुकने के पश्चात् सुभाष बाबू ने एम० ए० में नाम लिखाया। परन्तु उनके पिता रायबहादुर जानकीनाथ के विचार कुछ और ही थे। वे अपने पुत्र को आई० सी० एस० बनाना चाहते थे। कुछ तो उन्हें सुभाष के भविष्य का ध्यान था और कुछ वे सुभाष को बिलायत भेजकर उनकी दुर्गम विचारधाराओं में शैथिल्य लाना चाहते थे। उन्हें विश्वास था कि विलायत के वैभव में उनका पुत्र पूर्णतया खो जायगा और अँग्रेजों के प्रति उसकी विद्रोह-भावना बहुत कुछ शान्त हो जायगी।

तीन महीने तक एम० ए० में पढ़ने के पश्चात् जब सुभाष घर आये, तो उनके पिता ने कहा—"सुभाष! मैं नहीं चाहता कि तुम्हारी एम० ए० की पढ़ाई चलती रहे..."

"क्यों?..." आश्चर्य हुआ सुभाष को। वे यह समझ ही न सके कि उनके पिता को उनकी एम० ए० की पढ़ाई से एतराज क्यों है।

"तुमने एक बात पर कभी ध्यानपूर्वक सोचा है सुभाष!"—पूछा रायबहादुर ने।

"किस बात पर ?—"

"यही कि पुत्र पर पिता का भी कुछ पितृत्व अधिकार होता है और वह पुत्र के सुनहरे भविष्य का निर्माणकर्त्ता है...."

"......." चुप रहे सुभाष।

"तुम मेरे पुत्र हो और मैं तुम्हारा पिता..."

रुक कर रायबहादुर ने ध्यानपूर्वक सुभाष के चेहरे की ओर देखा। शायद अपनी बातों का प्रभाव जानने के लिये।

तत्पश्चात् कहने लगे—"तुम्हारा पूर्ण उत्तरदायित्व मुझ पर है... तुम्हारे भविष्य को अन्धकारमय बनाना मुझे अभीष्ट नहीं...."

"......" सुन रहे थे सुभाष, एकाग्रचित्त से।

"और न तो मैं यही चाहता हूँ कि तुम्हारी उत्कट अभिलाषाओं का दमन करूँ क्योंकि मैं यह बात भलीभाँति जानता हूँ कि अभिलाषायें ही सफलता की जननी हैं..." रुक कर बोले रायबहादुर—"परन्तु क्या तुमने यह भी कभी सोचा है कि आजकल तुम्हारी जीवन-धारा किस ओर प्रवाहित हो रही है ?..."

"जीवन-धारा तो सदैव भिन्न-भिन्न मार्गों का अवलम्बन करती है"— सुभाष कहने लगे—"कभी कल्याण-मार्ग की ओर अग्रसर होती है तो कभी बहकर न जाने किस अतल-तल में जा पहुँचती है...भारतवर्ष का कौन अभागा युवक होगा, जो इन बातों का अनुभव न करता हो। हम लोग धन्य हैं, जो हमारा जन्म इस शुभ युग में हुआ। हमें आगामी क्रान्ति के लिये अपने रक्त की आहुति देनी पड़ेगी..."

"तुम जाकर आराम करो..." ऊबकर बोले रायबहादुर जानकी-नाथ बोस।

सुभाष की बातें, उलजलूल होने के कारण कभी इनकी समझ में नहीं आती थीं।

दो वर्ष तक सुभाष कटक में बैठे रहे।

सन् १९१७ ई० में कलकत्ता विश्वविद्यालय के वाइसचांसलर सर आशुतोष मुखर्जी के अथक प्रयत्न से सुभाष को पुनः अध्ययन आरम्भ करने की आज्ञा मिली।

स्काटिश चर्च कालेज में वे प्रविष्ट हुए और प्रथम श्रेणी में दर्शन शास्त्र में बी० ए० पास किया।

उस समय सुभाष की अवस्था बाईस वर्ष की थी। सन् १९१९ में उन्होंने बी० ए० पास किया था।

बी० ए० पास कर चुकने के पश्चात् सुभाष बाबू ने एम० ए० में नाम लिखाया परन्तु इनके पिता रायबहादुर जानकीनाथ के विचार कुछ और ही थे। वे अपने पुत्र को आई० सी० एस० बनाना चाहते थे। कुछ तो इन्हें सुभाष के भविष्य का ध्यान था और कुछ वे सुभाष को विलायत भेजकर इनकी दुर्गम विचारधाराओं में शैथिल्य लाना चाहते थे। इन्हें विश्वास था कि विलायत के वैभव में उनका पुत्र पूर्णतया खो जायगा और अंग्रेजों के प्रति उसकी विद्रोह-भावना बहुत कुछ शान्त हो जायगी।

तीन महीने तक एम० ए० में पढ़ने के पश्चात् जब सुभाष घर आये तो उनके पिता ने कहा—"सुभाष, मैं नहीं चाहता कि तुम्हारी एम० ए० की पढ़ाई चलती रहे...."

"क्यों ?...." आश्चर्य हुआ सुभाष को। वे यह समझ ही न सके कि पिता को उनकी एम० ए० की पढ़ाई से एतराज क्यों है ?

"मेरे विचार से यह पढ़ाई तुम्हारे भविष्य के निर्माण में विशेष सहायक न होगी...." रायबहादुर जानकीनाथ बोस ने कहा।

"तब आपके विचार से मुझे क्या करना चाहिये ?"—पूछा सुभाष ने।

"तुम्हें विलायत जाकर आई० सी० एस० की परीक्षा देनी चाहिये...." रायबहादुर ने कहा।

चौंक पड़े सुभाष। समझ गये कि वे उन्हें परतन्त्रता की बेड़ियों में पूर्णतया जकड़ देना चाहते हैं।

वे जान गये कि उनके पिता यह चाहते हैं कि उनका बेटा गुलामी की जंजीरों में इस तरह गिरफ्तार हो जाय कि उसकी अन्तरात्मा मृतप्राय हो उठे और वह भविष्य में अपना सर उठाने लायक न रह जाय।

सुभाष कुछ बोले नहीं। सोचते रहे न जाने क्या-क्या ?

"मैं तुम्हारा विचार जानना चाहता हूँ सुभाष !—" रायबहादुर ने गम्भीर स्वर में पूछा।

"मेरा विचार आई० सी० एस० होने का नहीं है पिताजी !—" सुभाष ने स्पष्ट उत्तर दे दिया।

"क्यों ?....आखिर क्यों ?"

"मुझे अपने देश-वासियों पर शासन नहीं करना है...." सुभाष बोले—"मुझे उनकी सेवा में ही तृप्ति मिलेगी...."

"आई० सी० एस० होकर भी तो तुम जनता की सेवा कर सकते हो सुभाष !—" रायबहादुर ने कहा।

"अंग्रेज सरकार का नमक खाकर दिल-दिमाग़ बेकाबू हो जायगा.... आत्मा का हनन होने पर गुलामी के दिन ही अच्छे लगेंगे....और यही मैं नहीं चाहता...."

"तब तुम चाहते क्या हो ?—" पूछा रायबहादुर ने।

"मैं अपनी आत्मा को विद्रोही बनाना चाहता हूँ—" बोले

सुभाष—"गोरों का नमक खाकर अपनी आत्मा को असमय में ही पंगु नहीं कराना चाहता मैं !"

"हूँ !..." रायबहादुर ने गम्भीर नेत्रों से देखा सुभाष की ओर।

"यह क्यों नहीं कहते—" रायबहादुर पुनः बोले—"कि बिलायत जाकर तुम अपनी बुद्धि द्वारा अंग्रेजों का सामना नहीं करना चाहते...."

व्यंगपूर्वक हँस पड़े रायबहादुर।

तीर-सा लगा सुभाष को, अँगरेजों के मुकाबले में अपना अपमान होता देखकर।

"मैंने सिविल सर्विस को सदैव घृणा की दृष्टि से देखा है पिताजी !—" सुभाष बोले।

"क्यों न देखोगे !...." रायबहादुर ने कहा—"अंगूर खट्टे हैं न !... अँगरेजों से बाजी मार ले जाना हँसी-खेल भी तो नहीं...."

"पिताजी !..." सुभाष ने कुछ कहना चाहा परन्तु रुक गये।

वे स्पष्ट अनुभव कर रहे थे कि उनके पिता ने सब ओर से निराश होकर, यह रास्ता पकड़ा है और अपनी व्यंगात्मक बातों से उनका सोया हुआ अभिमान जगाना चाहते हैं।

"तुम बिलायत इसलिये नहीं जाना चाहते कि तुम्हें अपनी योग्यता पर विश्वास नहीं है..."

"......"

"तुम सिविल सर्विस नहीं पढ़ना चाहते क्योंकि तुम्हें अपने अज्ञान का अनुभव हो रहा है..."

"पिताजी !..." सुभाष उठकर खड़े हो गये—"आप अंगरेजों को इतना उच्च और भारतीयों को इतना हेय क्यों समझते हैं ?"

"चुप रहो सुभाष !—" पिता ने अग्नि में आहुति दी—"रहने दो—सिविल सर्विस तुम्हारे लिये आकाश-कुसुम ही है !"

"क्या कहते हैं आप पिताजी!—" सुभाष बोले—"मैं वह आकाश-कुसुम लाकर आप के चरणों पर रख दूँगा..."

"तुम्हारा तात्पर्य?—" सब समझते हुए भी पूछा रायबहादुर ने।

"मैं बिलायत जाऊँगा और अंगरेजों के मुकाबले में अपनी प्रतिभा दिखाऊँगा..."

विद्रोही युवक गर्व से सिर ऊँचा किये खड़ा था।

पिता हर्षित हो उठे थे।

"तुम कब जाना चाहते हो?"—पूछा रायबहादुर ने।

"जल्द से जल्द!...."

"रहने दो, पारसाल जाना"—पिता बोले—"तीन महीने बीत चुके हैं, शायद सफल न हो सको परीक्षा में...."

"सफलता तो मेरी दासी है पिताजी!...' सुभाष ने कहा।

और थोड़े दिनों बाद!

वह स्वदेशाभिमानी युवक बिलायत में था।

हृदय में अंगरेज़ों को बुद्धि द्वारा हराने की तीव्र लालसा थी।

आँखों में सदैव घृणा लहराती रहती थी।

अन्त में इण्डियन सिविल सर्विस की जब परीक्षा हुई तो न केवल सुभाष ससम्मान उत्तीर्ण हुए, वरन् सफल छात्रों में उनका चतुर्थ स्थान रहा।

पिता ने जब सुना तो उन्हें अपने पुत्र की सफलता पर महान् गर्व हुआ। वे समझ गये कि सुभाष अब ठीक रास्ते पर आ गये हैं।

जिस मनुष्य के हृदय में अपनी मातृभूमि की दासता देखकर करुण चीत्कारें न उठें, वह नरपशु के समान जीवित ही मृतक है।

हमारी भारत भूमि के कितने ही पशु जिनको जगन्नियन्ता ने मनुष्य का शरीर दान किया है और जिनका शरीर इसी पवित्र भूमि पर लोट-लोटकर परिपुष्ट हुआ है—आज आई० सी० एस० बनकर ब्रिटिश सत्ता के लौह स्तम्भ बने बैठे हैं।

सरकार का नमक खाकर इन वफादारों ने 'सर, रायबहादुर', 'राइट आनरेबुल' आदि पदवियाँ प्राप्त की हैं—और भारत माता के मुँह पर अपनी बर्बरतापूर्ण कृत्यों द्वारा असंख्यों बार तमाचे मारे हैं—

इन्होंने स्वतन्त्रता के लिये तड़पते हुए परवानों के खून से अपने हाथ रँगे हैं—अपने दलित देशवासियों पर ज़ुल्म के आरे चला-चलाकर अपनी नौकरशाही प्रदर्शित की है।

सन् १९१९-२० के दिन, जैसे तूफ़ान के दिन थे।

युगों से सुप्त भारतवासियों के जागरण का उद्बोधन था वह। पंजाब में नरघातकी ओडायर ने जो ज़ुल्म ढाया था, उसका घाव अब तक ताज़ा था। तिस पर मांटेगू ने लार्ड चेम्सफोर्ड और ओडायर को प्रशंसा करके देशवासियों को विक्षुब्ध कर दिया था।

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर मित्रराष्ट्रों ने वार्साई में खूब उत्सव मनाया था और भारत की स्वतन्त्रता की माँग का उत्तर उपेक्षा द्वारा दिया था। ब्रिटिश शासन सत्ता की निर्ममता से समग्र भारत दुखी था।

रौलट बिल के पास होते ही तो समग्र राष्ट्र त्राहि-त्राहि कर उठा।

ठीक उसी समय पूज्य महात्मा गाँधी ने भारत के कण-कण में जागृति की अग्नि प्रज्वलित कर दी।

अहिंसा और हिंसा!

देवत्व और राक्षसत्व का प्रथम-युद्ध था वह!

१९२० में नागपुर में कांग्रेस का पैंतीसवाँ अधिवेशन हुआ।

यह अधिवेशन लोकमान्य तिलक के सभापतित्व में होना निश्चित

हुआ था परन्तु बीच में ही उनका स्वर्गवास हो जाने से श्रीविजय राघवाचार्य चक्रवर्ती सभापति बनाये गये ।

इस अधिवेशन में असहयोग प्रस्ताव पास हुआ । महात्मा गाँधी द्वारा बनाया गया कांग्रेस का नया विधान स्वीकृत हुआ और १४५०३ प्रतिनिधियों ने कांग्रेस का ध्येय निश्चित किया—"सभी उचित और शान्तिपूर्ण उपायों से स्वराज्य प्राप्त करना !"

थोड़े ही दिनों बाद देश भर में असहयोग की लहर दौड़ उठी । लोगों ने सरकारी पदवियाँ लौटा दीं । वकीलों ने कचहरी जाना छोड़ दिया । विद्यार्थियों ने स्कूल और कालेज जाना बन्द कर दिया । ब्रिटिश न्यायालयों को धूल-धूसरित करने के लिये देश भर में पंचायतें बन गईं ।

ऐसे समय—

भला कौन देशभक्त स्थिर रह सकता था । इङ्गलैण्ड में होते हुए भी सुभाष अपने देश का अपमान प्रत्यक्ष देख रहे थे । उनके समक्ष, देशबंधु द्वारा प्रेषित युवकों के नाम पर अपील रह-रहकर नृत्य कर उठती थी ।

"युवक ही तो देश के प्राण हैं!"—रह-रहकर उनकी आत्मा चीत्कार कर उठती थी । अन्त में उन्होंने निश्चय कर लिया—"अपनी आत्मा का हनन करने पर मैं अपने ध्येय से पथच्युत हो जाऊँगा...मैं आजादी और गुलामी के मुकाबले में आजादी को ही पसन्द करूँगा..."

दृढ़ निश्चय करने के बाद उन्होंने एक ही ठोकर में आई० सी० एस० का पद दूर भगा दिया ।

यद्यपि भारत मंत्री ने सुभाष को बहुत ही समझाया परन्तु आजादी के उस दीवाने ने सिविल सर्विस से त्यागपत्र दे ही दिया ।

सन् १९२१ में केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी से दर्शन शास्त्र में बी० ए० की उपाधि लेकर सुभाष भारत लौटे । अभागे भारत ने अपने इस अनोखे वीर का स्वागत, अपने आँसुओं द्वारा किया । जननी जन्मभूमि को तड़पता हुआ देखकर वीर-हृदय सुभाष का रोम-रोम विप्लवी हो उठा ।

भारत में आते ही सुभाष देशबन्धु चितरञ्जन दास से मिले। देशबन्धु ने सुभाष को स्व-स्थापित एक राष्ट्रीय विद्यालय के आचार्य का कार्य-भार सौंपा।

१९२१ में बेज़वादा में भारतीय कांग्रेस कमेटी ने असहयोग को नवीन ढंग से आयोजित किया।

यह निश्चित हुआ कि एक करोड़ राष्ट्रीय-स्वयं-सेवक बनाये जाँय, तिलक-स्वराज्य-कोष के लिये एक करोड़ रुपये एकत्र किये जाँय और २० लाख चरखे चलाये जाँय।

जब देशबन्धु चितरञ्जन दास कलकत्ता लौटकर आये तो वे अगम उत्साह के साथ कार्य में तल्लीन हो गये। देखते-देखते कई सहस्र स्वयं-सेवक एकत्रित हो गये। स्वयंसेवकों को सैनिक वर्दियाँ दी गईं।

सरकार भी सशंकित हो उठी, युवकों के इस संघटन से।

स्वयंसेवकों की शक्ति दिन प्रतिदिन बढ़ती ही गई।

अब देशबन्धु को एक ऐसे सेनापति की आवश्यकता थी, जो स्वयं-सेवकों को आदर्श रीति से संचालित कर सके।

देशबन्धु का ध्यान सुभाष की ओर गया और सुभाष स्वयं-सेवकों के सेनापति नियुक्त हुए।

सरकार इस नये सेनापति से घबरा उठी। उसने सोचा कि यदि इस विद्रोही सेनापति को उभरने का मौका दिया गया तो आगे चलकर घातक सिद्ध होगा।

अतः उसने सुभाष को दिसम्बर १९२१ में क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट एक्ट के अनुसार गिरफ्तार करके अलीपुर जेल में बन्द कर दिया।

भारत का वह दुर्दमनीय सिंह, जीवन में पहली बार सींखचों के अन्दर आकर दहाड़ उठा। उसी समय देशबन्धु चितरञ्जनदास भी बन्दी बना लिये गये।

न्यायालय में सुभाष पर मुकदमा चला। न्यायाधीश ने उन्हें ६ महीने की सज़ा दी।

सज़ा सुनकर सुभाष हँस पड़े। बोले—"क्या मैंने किसी की मुर्गी चुराई है, जो मुझे इतनी कम सज़ा दे रहे हैं ?—"

जेल में सुभाष का जीवन अत्यन्त आनन्द के साथ व्यतीत हुआ। देशबन्धु ने सुभाष से नीतिशास्त्र तथा वेदान्त की शिक्षा ली।

कठोर कारागार की वे दीवारें, उन वीरों के दर्शन पाकर पवित्र हो गईं।

सुभाष जब जेल से छूटे तो उनके कानों में बाढ़-पीड़ितों की करुण-ध्वनि गूँज उठी।

अक्टूबर सन् १९२२ में उत्तरी बंगाल में भीषण बाढ़ आई, जिससे जनता त्राहि-त्राहि कर उठी। कितने ही ग्राम जल-मग्न हो गये। कितने ही प्राणियों ने अतल जलराशि में डूबकर अपने प्राण गँवाये।

तुरन्त ही युवकों ने एक बाढ़-पीड़ित कमेटी की स्थापना की। सुभाष कमेटी के अध्यक्ष बने।

जब सुभाष बाढ़ पीड़ित क्षेत्रों का निरीक्षण करने आये तो अपने देशवासियों की दुर्दशा देखकर रो पड़े।

बाढ़ की भयंकरता दिन प्रति दिन बढ़ती ही जाती थी। सुभाष तथा उनके सहकारी, बड़ी-बड़ी नौकाओं पर घूम-घूमकर लोगों की प्राण-रक्षा किया करके थे और नंगों तथा भूखों को वस्त्र एवं अन्न की व्यवस्था किया करते थे।

नित्य की भाँति सुभाष एक बड़ी-सी नौका पर घूम रहे थे। उन्होंने पानी में डूबा हुआ एक मकान देखा। उसके मुँड़ेरे पर खड़ी हुई पाँच छः वर्ष की एक बालिका चिल्ला रही थी, सहायतार्थ। और बाढ़ की भीषण लहरें धीरे-धीरे मकान को अपने पेट में खींचे लिये जा रही थीं।

सुभाष ने वह दृश्य देखा। माँझी को आज्ञा दी कि वह नाव उस मकान के पास ले चले।

तुरत ही नाव वहाँ पहुँच गई। सुभाष ने आगे बढ़कर उस बालिका को अपनी गोद में उठा लिया।

अगर पाँच मिनट की भी देर हो जाती तो वह उस मकान के मुँड़ेरे पर से चिल्लाती-चिल्लाती, मकान के साथ ही स्वयं भीअगम जलराशि में विलीन हो जाती।

वह बालिका फूट-फूटकर रो रही थी। सुभाष ने उसे धीरज बँधाना चाहा तो वह और भी जोरों से रो पड़ी।

"मेरा भैया!..." रोते-रोते बोली वह—"देवता, तुम मेरे भैया को ला दो....बिना उनके मैं बच कर क्या करूँगी?..."

"तुम्हारा भैया!—" चौंक पड़े सुभाष—'कहाँ है तुम्हारा भैया?"

"वह अभी थोड़ी देर पहले यहाँ डूब चुका है—" लड़की ने पानी की ओर इशारा करके कहा—"वह मुझे छोड़कर चला गया....मेरे अच्छे देवता! तुम उसे वापस ला दो..." बालिका सुभाष का हाथ पकड़कर करुण स्वर में रो उठी—रोती रही।

सुभाष की आँखों में करुणा उतर आई।

वे अपना कुर्त्ता उतारकर पानी में कूदने को हुए कि माँझी ने उनका हाथ पकड़ लिया। कहा—"नीचे न कूदो बाबू! पानी न जाने कितना गहरा है...."

"यह एक बालक के जीवन का प्रश्न है—" सुभाष बोले—"इसके लिये बड़े से बड़ा खतरा उठाया जा सकता है...."

"परन्तु यहाँ चारो ओर मकान ही मकान डूबे पड़े हैं...यदि आपने डुबकी लगाई और पानी के बहाव से किसी मकान के अन्दर चले गये तो फिर निकल न सकेंगे...." सुभाष के एक साथी ने कहा।

"मुझे परवाह नहीं...." सुभाष दृढ़ स्वर में बोले।

और धम्म से अगम जल-राशि में कूद पड़े वे ।

जिस स्थान पर बालिका ने अपने भैया का डूबना बताया था, उस स्थान पर डुबकी लगाई उन्होंने ।

साँस रोककर उनके साथी उनका वह अगम साहस देख रहे थे, और उनके शीघ्र उतराने की प्रार्थना कर रहे थे ।

सुभाष न उतराये तो लोगों की चिन्ता बढ़ी परन्तु किसी का भी साहस पानी में कूदने का नहीं पड़ रहा था । माँझी ने भी उतरने से इनकार कर दिया ।

इतने में ही पानी के ऊपर कुलबुलाहट हुई और सुभाष उतराये ।

परन्तु वे सफल नहीं हुए थे ।

"कुछ पता न लगा ?" बोले वे ।

वह बालिका और ज़ोरों से रोने लगी । सुभाष का कलेजा चीर दिया उस बालिका के रुदन-स्वर ने ।

"रोओ मत तुम !—" सुभाष ने कहा—"मैं एक बार फिर भीतर जाकर देखता हूँ..."

"अब आप मत जाइये...." उनके साथी कहते ही रह गये परन्तु उन्होंने पुनः डुबकी लगा दी ।

इस बार पहले से भी अधिक देर लगी परन्तु सुभाष इस बार सफलीभूत होकर लौटे । उन्होंने बालक के शव को नाव में लिटा दिया ।

बालिका, बालक के शरीर पर गिर कर पछाड़ें खाने लगी । बालक की अवस्था आठ-दस साल की रही होगी ।

सुभाष ने बालक की नाड़ी की परीक्षा की तो पता चला कि अभी जीवित है । तुरन्त ही उसका प्रारम्भिक उपचार किया गया परन्तु उसे होश न आ सका ।

सुभाष बालक और बालिका को अपने घर लाये ।

आठ दिन बाद वह बालक पूर्ण स्वस्थ हो गया ।

जाते समय उसने सुभाष का पैर पकड़ लिया और बोला—"देवता ! तुमने मेरे शरीर की रक्षा की है...यदि कभी यह शरीर त्याग-कर तुम्हारे लिये कुछ कर सका तो मैं पीछे न हटूँगा...."

सुभाष ने उस बालक के छोटे मुख से निकले हुए ये महान शब्द सुने और कुछ सोचने लगे।

"तुम्हारा नाम क्या है बच्चे ?—" पूछा सुभाष ने।

"मेरा नाम बसन्त कुमार मल्लिक है देवता !—" बालक ने कहा।

"और तुम्हारी बहन का ?..." सुभाष ने पुनः पूछा।

"इसका नाम नीरा मल्लिक है...." बालक ने उत्तर दिया।

"अब कहाँ जाओगे तुम लोग ?—"

"जहाँ भाग्य ले जाय देवता !—" बालक बोला—"हम ग़रीब हैं जहाँ ठौर मिला, वहीं पड़ रहेंगे..."

"भिक्षा माँगने का तुम्हारा विचार है क्या ?—"

"नहीं-नहीं...." बालक तेज़ी के साथ बोला—"भिक्षाटन से बढ़-कर घृणित कार्य संसार में कोई है ही नहीं..."

चुपचाप सुन रहे थे सुभाष उस बालक की बातें।

"दूसरों के सामने हाथ पसार कर, मैं अपनी निर्बलता को प्रोत्साहन न दूँगा...और आपने जो अतुलनीय भिक्षा हमें दे दी है देवता, उसके रहते मुझे किसी के सहारे की आवश्यकता न पड़ेगी...."

"मैंने तुम्हें कौन-सी भिक्षा दी है बसन्त !...."

"आपने मुझे जीवनदान दिया है देवता !—" बालक कृतज्ञतापूर्ण वाणी में बोला—"यह शरीर रहेगा तो हम अपना पेट पाल ही लेंगे...."

कहकर वह अपनी बहन का हाथ पकड़े चल पड़ा।

सुभाष उसकी ओर तब तक देखते रहे, जब तक वह आँखों से ओझल न हो गया।

मांडले जेल की पवित्र दीवारें, जिन्होंने एक दिन लोकमान्य तिलक तथा लाला लाजपतराय को अपनी गोद में शरण दिया था, दीवाने सुभाष के लिये भव्य आकर्षण बन गईं।

सुभाष का स्वास्थ्य क्षीण होता गया, परन्तु उनकी अन्तरात्मा सदैव स्वतन्त्रता की पुकार सुनने में तल्लीन रही।

कभी-कभी उनके कानों में, आज़ादी के दीवाने किसी शायर की पंक्तियाँ चंचल हो उठती थीं—

सारी खुदाई छोड़ कर सारा ज़माना छोड़ कर।
चैन ग़र लेगा तो जंज़ीरे गुलामी तोड़ कर॥

सुभाष बाबू की अस्वस्थता दिन प्रति दिन बढ़ती ही गई। उन्हें ज्वर आने लगा। वज़न चालीस पौण्ड घट गया। राजयक्ष्मा के स्पष्ट चिन्ह दृष्टिगोचर हुए।

परन्तु जेल अधिकारियों के यातनापूर्ण कार्य उत्तरोत्तर बढ़ते ही गये। बन्दियों की आत्मा को कुचलने के लिये सरकार के इन वफ़ादार कुत्तों ने कुछ उठा नहीं रखा।

दुर्गापूजा का अवसर निकट था। समग्र बंगाली समाज, उत्सव तथा आनन्द के साथ जगज्जननी मातेश्वरी शक्ति का पूजन करने के लिये उत्साह के साथ तैयारी करने में संलग्न था।

इस पवित्र अवसर के लिये सुभाष बाबू ने जेल अधिकारियों से कुछ रुपयों की स्वीकृति माँगी, ताकि वे भी भक्ति सहित अपना पर्व मना सकें। मगर सरकार के टुकड़े पर जीवित रहनेवाले उन पशुओं ने सुभाष की उचित माँग ठुकरा दी।

विक्षुब्ध तथा अपमानित सुभाष ने आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। २० फरवरी सन् १९२६ से सुभाष का वह अनशन प्रारम्भ हुआ, जिससे देश का कोना-कोना हिल उठा।

पत्र सम्पादकों ने आलोचनात्मक टिप्पणियाँ लिख लिखकर सरकार

को खूब लथेड़ा। कलकत्ता तथा रंगून में सभायें हुई। रोषपूर्ण भाषण दिये गए। कलकत्ते के सारे शहर में व्यापक हड़ताल रही।

केन्द्रीय असेम्बली में, सुभाष के अनशन पर विचार करके काम रोको प्रस्ताव रखा गया।

प्रस्ताव पर बोलते हुए श्री टी० सी० गोस्वामी ने कहा—"अनशन का केवल यही कारण नहीं है कि बन्दियों को दुर्गा पूजा की सुविधायें नहीं दी गईं, वरन् इस माँग के साथ-साथ उनकी कई और माँगें भी ठुकराई गई थीं...श्री सुभाषचन्द्र बोस का जीवन ख़तरे में है। यदि उनकी मृत्यु हो जाय, तो सरकार तथा गृह सचिव भले ही सन्तोष की एक ठडी साँस लें, लेकिन बंगाल तथा सम्पूर्ण भारत की जो महान क्षति होगी, उसकी पूर्ति कौन करेगा? वर्तमान समय में सुभाष जैसे चरित्र-शाली नवयुवक भारत में कितने हैं?"

लाला लाजपतराय ने अपने वक्तव्य में कहा था—"यदि श्री सुभाष जैसे चरित्रवान तथा प्रसिद्ध व्यक्ति को अनशन करने के लिये विवश होना पड़ा है, तो स्थिति कितनी भयंकर है, इस बात का अनुमान सरलता से लगाया जा सकता है...मैं स्वयं मांडले जेल में ६ महीने तक रह चुका हूँ। मुझे कोई समाचार पत्र नहीं मिलता था और एकदम सड़ी तरकारी खाने को दी गई थी।"

श्री गोस्वामी का काम रोको प्रस्ताव बहुमत से पास हो गया। इसी बीच सुभाष बाबू को तार भेज कर देश के बड़े-बड़े नेताओं ने अनशन त्याग देने की प्रार्थना की।

३ मार्च सन् १९२६ को कलकत्ते में श्रीनिवास शास्त्री ने कहा था—"सुभाष बाबू के त्याग की प्रशंसा करना सूरज को दीपक दिखाना है। मुझे उनके त्याग की गाथा एक साहसपूर्ण तथा करुणाजनक काव्य की तरह मालूम पड़ता है। चाहे हम विभिन्न राजनीतिक विचार रखते हों

मगर जहाँ राजनीतिक स्वत्व की रक्षा का प्रश्न उठता है, वहाँ हम सबकी एक ही आवाज है..."

देश भर में व्यापक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ—और सुभाष बाबू ने नेताओं की प्रार्थना से बाध्य होकर ४ मार्च सन् १९२६ को, १२ दिन के पश्चात् अनशन तोड़ दिया।

श्री सुभाषचन्द्र बोस की नज़रबन्दी पर 'हाउस आफ कामन्स' में भी प्रबल वादा-विवाद हुआ। मिस्टर जान्सटन और अरनेस्ट थर्टल ने सुभाष बाबू का पक्ष लेकर खूब बहस की।

२७ दिसम्बर सन् १९२६ को जब गौहाटी में कांग्रेस का इकतालीसवाँ अधिवेशन हुआ, तो श्रीहार्निमेन ने सुभाष बाबू की मुक्ति का ज़ोरदार शब्दों में समर्थन किया।

"कितने आश्चर्य की बात है—" श्री हार्निमैन ने कहा था—"कि सुभाषचन्द्र बोस को न्यायालय के सामने कभी खड़ा ही नहीं किया गया। न उनको उनके अपराध ही बताये गये और न उन्हें कभी ऐसा अवसर ही दिया गया कि वे अपने पक्ष में प्रमाण दे सकें। न तो उनको न्यायालय ने कोई सजा ही दी है...मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि इन्साफ का खात्मा हो चुका है..."

इन्हीं दिनों गोरों के प्रबल हिमायती "स्टेट्समैन, इङ्गलिश मैन, कैथलिक हेराल्ड आफ़ इण्डिया" आदि पत्रों ने सुभाष बाबू के विरुद्ध मनमाना विष-वमन किया।

स्टेट्समैन ने तो यहाँ तक लिख दिया—"सुभाषचन्द्र बोस ही तमाम आतंकवादी आन्दोलन के संचालक रहे हैं।"

सुभाष बाबू ने इनमें से प्रत्येक पत्र के ऊपर ५० पचास हज़ार रुपयों के हर्ज़ाने का दावा किया।

सुभाष बाबू को राजयक्ष्मा हो गया था, ऊपर से अनशन ने उनकी रही सही शक्ति भी क्षीण कर दी थी।

फल यह हुआ कि वे अप्रेल १९२७ में इतने जर्ज़र हो गये कि उनके लिये अपने से उठना बैठना भी असम्भव हो गया।

उनके भाई डाक्टर सुनीलचन्द्र बोस तथा अन्य सरकारी मेडिकल आफ़िसरों ने सुभाष बाबू की जाँच की और सबने एकमत होकर सुभाष बाबू के स्वास्थ्य को चिन्ताजनक बताया।

मिस्टर मोबार्ली ने बंगाल सरकार की ओर से यह आयोजना पेश की कि स्वास्थ्य सुधारने के लिये सुभाष बाबू को स्विट्ज़रलैण्ड जाना चाहिये।

मगर इसके लिये दो शरायत थीं। पहली शर्त यह थी कि जब तक क्रिमिनल ला एमेण्डमेण्ट ऐक्ट का ख़ात्मा न हो जाय, तब तक सुभाष बाबू भारत नहीं लौट सकेंगे—और दूसरी शर्त यह थी कि सुभाष बाबू जिस जहाज़ से यात्रा करेंगे, वह सीधे योरप को जायगा और सुभाष बाबू कलकत्ता या किसी अन्य भारतीय बन्दरगाह पर न उतर सकेंगे।

कितनी अपमानपूर्ण शरायत थीं। भला कौन विचारशील व्यक्ति इस बात को स्वीकार करेगा?

सुभाष बाबू ने पैरों की एक ही ठोकर से सरकार का यह दम्भ-पूर्ण प्रस्ताव दूर ढकेल दिया। सरकार की आशाओं पर तुषारपात हुआ।

वह तो यह चाहती थी कि उधर सुभाष बाबू यूरोप जाँय और इधर वह क्रिमिनल ला एमेण्डमेण्ट ऐक्ट को चिरस्थायी बना दे—ताकि गोरी सरकार के प्रबल शत्रु, भारत के सिह सुभाष बाबू कभी अपनी मातृभूमि को न लौट सकें।

इस विषय में सुभाष बाबू ने जेल से जो पत्र अपने बड़े भाई श्री शरदचन्द्र बोस को लिखा था, वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

वह यों है—

इन्सीन सेन्ट्रल जेल,
४ अप्रेल, १९२७ ई०

प्रिय भाई साहब !

आप यह जानने को उत्सुक होंगे कि मैं मिस्टर मोबार्ली के मेरे स्विट्ज़रलैण्ड जाने के प्रस्ताव के विषय में क्या सोचता हूँ ?

नहीं जानता कि कभी वह समय आयेगा भी या नहीं, जब कि मैं आपके सामने बैठकर अपने हृद्गत विचार व्यक्त कर सकूँगा—इसीलिये मैंने अपने विचारों को प्रदर्शित करने के लिये इस पत्र का सहारा लिया है।

छोटे दादा डाक्टर सुनील ने मेरे बारे में जो रिपोर्ट दी और जो सिफ़ारिशें कीं, वह मुझसे पूछकर नहीं की। यदि वे मुझसे सलाह लेते, तो मैं कभी भी उन्हें ऐसी सिफ़ारिश करने को न कहता, क्योंकि मैं जानता हूँ कि ऐसी सिफ़ारिशें करना, ब्रिटिश सत्ता के समक्ष घुटने टेककर भिक्षा माँगना है, ब्रिटेन के सामने अपनी पवित्र भूमि भारत का अपमान करना है।

इस बात के लिये मैं कभी तैयार नहीं कि मेरे व्यक्तिगत लाभ की लालसा से समग्र भारत देश का अनादर हो। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि सरकार को छोटे दादा की रिपोर्ट पर विश्वास नहीं है, क्योंकि सरकारी घोषणा से यह बात स्पष्ट है कि मैं इस समय बहुत सख्त बीमार नहीं हूँ। पता नहीं कि सरकार किस हालत में मुझे 'सख्त बीमार' मानने को तैयार होगी ? क्या जब मेरी अवस्था एकदम चिन्ताजनक हो जायगी, और मेरे जीवन की मंज़िल मौत के एकदम समीप पहुँच जायगी तब मुझे सख्त बीमार समझा जायगा ?

बंगाल सरकार यह चाहती है कि मैं क्रिमिनल ला एमेण्डमेण्ट ऐक्ट के समाप्त होने तक विदेशों में ही रहूँ। यह क़ानून जनवरी १९३० में समाप्त होगा। लेकिन इस बात का क्या विश्वास है कि इस क़ानून की अवधि और न बढ़ा दी जायगी ?

हो सकता है कि १९२९ के अन्त तक यह क़ानून सदा के लिये स्थायी बना दिया जाय और मैं जीवन भर के लिये अपने प्यारे देश से निर्वासित हो जाऊँ।

जब मैंने यह पढ़ा कि मुझे यह शर्त माननी होगी कि मैं हिन्दुस्तान, बर्मा तथा लंका को न लौटूँगा, तो बार-बार मैंने अपने दृष्टिकोण से इस बात पर विचार किया। क्या मैं ब्रिटिश सरकार के अस्तित्व के लिये इतना ख़तरनाक हूँ कि केवल बंगाल प्रान्त से मेरा निर्वासन काफ़ी नहीं है?

सरकार यह भली प्रकार जानती है कि मैं लगभग ढाई साल से घर से दूर रहा हूँ और इस बीच अपने माता-पिता, स्नेही-सम्बन्धियों से नहीं मिल सका हूँ।

अब यदि मैं योरोप जाऊँ, तो कम से कम ढाई तीन साल और लग जायँगे और मुझे अपने लोगों से मिलने का कोई अवसर न प्राप्त हो सकेगा। यह बात मेरे लिये तो चिन्ता का कारण है ही, साथ ही जो मुझे प्यार करते हैं, उनकी भी चिन्ता द्विगुणित हो उठेगी।

पाश्चात्य व्यक्तियों के लिये यह समझना असम्भव है कि पूर्व के लोग अपने सगे सम्बन्धियों से कितना अधिक सम्पर्क एवं ममता रखते हैं?

केवल पश्चिमीय मस्तिष्क ही इस बात की कल्पना कर सकता है कि मैंने शादी नहीं की है, अतः मेरा कोई परिवार नहीं है और मैं स्नेह-बन्धन से मुक्त हूँ। सरकार यह बिल्कुल ही भूल गई है कि उसने मुझे पिछले ढाई वर्षों से कितने कष्ट में डाल रखा है? दुखी मैं हूँ, न कि वह। इतने समय तक अकारण ही उसने मुझे बन्द कर रखा है।

मुझसे केवल यह कहा गया था कि मैं अस्त्र-शस्त्रों को संगठित करने, विस्फोटक पदार्थों के बनाने तथा पुलिस आफ़िसरों के मारने का दोषी हूँ।

मेरी गिरफ्तारी के बाद बंगाल सरकार ने मेरे आश्रितों अथवा मेरे निर्वाह के लिये कोई आर्थिक व्यवस्था नहीं की और जब मैंने वायसराय के पास अपील की, तो उसको बीच में ही बंगाल सरकार ने रोक लिया।

इतने से ही सन्तोष न करके सरकार मुझे तीन वर्ष तक और मातृ-भूमि से दूर रखना चाहती है और यह भी चाहती है कि मैं योरोप जाकर वहाँ का सारा खर्च स्वयं बरदाश्त करूँ।

क्या यह न्यायोचित प्रस्ताव है? यदि सरकार और कोई नैतिक उत्तरदायित्व अपने सिर पर लेने को तैयार नहीं है, तो उसे कम से कम मुझे उसी शारीरिक अवस्था में मुक्त करना चाहिये, जैसी अवस्था मेरी १९२४ में थी। यदि जेल में मेरा स्वास्थ्य खराब हुआ, तो सरकार इसके लिये उत्तरदायी है। और उसे ही सब खर्च बरदाश्त करना चाहिये।

मैं यह जानता हूँ कि योरोप न जाने का मेरा यह हठ शायद मेरे लिये मृत्यु का आवाहन कर दे—परन्तु देश से सदैव के लिये निर्वासित होने के बदले, अपनी मातृभूमि के पवित्र वातावरण में प्राणत्याग करना मुझे अधिक आनन्द-दायक है।

कृपया माता-पिता को धैर्य देते रहें, क्योंकि स्वतन्त्रता जैसी अमूल्य निधि प्राप्त करने से पहले अभी हमें कितनी ही आहुतियाँ देनी हैं।

हमारे विचार मर नहीं सकते—हमारे आदर्श, देश की भावी सन्तति के समक्ष अनुकरणीय उदाहरण रखेंगे।

आपका परम स्नेही—

—सुभाष!

सरकार भी यह भली प्रकार समझ रही थी, कि सुभाष बाबू की अवस्था अत्यन्त चिन्ताजनक है। अतः वह उन्हें अल्मोड़ा जेल भेजना चाहती थी। परन्तु बगाल के गवर्नर के सजन मेजर हिंग्स्टन आई० एम० एस० तथा लेफ्टिनेण्ट कर्नल सैन्डिस आई० एम० एस०

ने सुभाष बाबू की परीक्षा करके, जो दयनीय रिपोर्ट दी, उससे बंगाल सरकार भी विचलित हो उठी।

और उसने यही उचित समझा कि सुभाष बाबू को रिहा कर दिया जाय, ताकि वे बिना किसी प्रतिबन्ध के चाहे जहाँ जाकर अपना स्वास्थ्य सुधारें।

बंगाल सरकार का यह वक्तव्य २७ मई सन् १९२७ को प्रकाशित हुआ था।

श्री शरद्चन्द्र बोस को, जो उस समय दार्जिलिंग में थे, सरकार का तार मिला कि सुभाष बाबू मुक्त कर दिये गये हैं, अतः वे आकर उन्हें लिवा जाँय।

शरद् बाबू जब सुभाष बाबू से मिले, तो वे उस रक्तमांसहीन हड्डियों के पुतले को पहचान ही न सके। छोटे भाई की दुर्दशा देखकर शरद् बाबू रो पड़े।

परन्तु सुभाष बाबू ने उन्हें समझाया। कहा—"बड़े दादा! जो कुछ होनी होती है, वह होकर ही रहती है...आप देख रहे हैं न, गोरे कुत्तों ने मेरा मांस नोच-नोचकर खा डाला है और केवल सूखी हड्डियाँ छोड़ दी हैं...यह हड्डियाँ भी वे चबा जाते, मगर देश का उन्हें डर था..."

उसी समय सुभाष बाबू ने अपने देश वासियों के लिये एक दिव्य सन्देश दिया—"अब मैं फिर अपने घर पहुँच गया हूँ। अब मेरा पहला कर्तव्य यह होगा कि मैं शीघ्र ही अपना स्वास्थ्य सुधारने की उचित व्यवस्था करूँ, ताकि स्वास्थ्य लाभ कर चुकने पर पुनः अपना पवित्र कार्य सुचारु रूप से चला सकूँ।"

सुभाष बाबू के उन्मुक्त होने से सारा भारत आनन्द से खिल उठा। कलकत्ता नगर जैसे अपना विलुप्त वैभव पाकर खुशी से इतरा पड़ा। भारत भर में उनके सम्मानार्थ सभायें हुईं, दूकानें तथा दफ्तर बन्द रहे। सुभाष बाबू के आरोग्य के लिये विशाल मन्दिरों में प्रार्थनायें की गईं।

अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी की बैठक उस समय बम्बई में हो रही थी, उसने भी सुभाष बाबू के छूटने पर हर्ष प्रकट किया और बधाई का तार भेजा। पण्डित मोतीलाल नेहरू आदि राष्ट्र के बड़े-बड़े नेताओं ने सुभाष बाबू के शीघ्र ही स्वस्थ हो जाने की कामना की। "फारवर्ड" ने अपना विशेषांक निकाल कर उसे बिना मूल्य वितरित किया। देश के कोने-कोने से लोग सुभाष बाबू के दर्शनार्थ आने लगे।

सुभाष बाबू की आत्म-शक्ति महान् थी। इसी कारण वे बहुत थोड़े दिनों में स्वस्थ हो गये। समग्र भारत ने उनके स्वास्थ्य-लाभ को आनन्द एवं आश्चर्य की दृष्टि से देखा। किसी को भी यह आशा न थी, कि सुभाष बाबू इतनी जल्दी अच्छे हो जायँगे।

"डेलीमेल" के बम्बई सम्वाददाता ने लिखा था—"गरम दलवालों के नवयुवक नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस, जो पिछले साल बीमारी के कारण रिहा कर दिये गये थे, इतनी जल्दी अच्छे हो गये, कि डर है वे महात्मा गांधी की जगह न ले लें..."

—मई, १९२८।

सुभाष बाबू स्वस्थ होकर पुनः कार्य में तल्लीन हो गये। वे तूफ़ान की तरह कार्य करते थे। अच्छे होकर उन्होंने पहले-पहल अकाल पीड़ितों की सहायता का कार्य हाथ में लिया, क्योंकि उस समय समग्र बंगाल भयानक अकाल ग्रस्त था।

२० मई सन् १९२८ को बम्बई के आपेरा हाउस में सुभाष बाबू ने भारत की राजनैतिक परिस्थिति, सभ्यता, संस्कृति तथा नवयुवकों के आदर्श पर एक मार्मिक भाषण दिया।

अपने भाषण में एक स्थान पर उन्होंने कहा—"ताजमहल को देखिये!...कितना सुन्दर लगता है?...पर इस सौन्दर्य की केवल मुसलमानों ने प्रशंसा नहीं की है। समग्र विश्व उसका प्रशंसक है!... बड़े-बड़े कवियों ने उसे 'पत्थरों के रूप में परिवर्तित अश्रु' की उपमायें

दी हैं...मैं तो यह कहता हूँ कि यदि मुगल शासक और कुछ न छोड़कर हमारे लिये केवल ताजमहल ही छोड़ जाते, तो भी हम उनके कृतज्ञ ही रहते...परन्तु आज ब्रिटिश सरकार को देखिये !...यदि उसकी सत्ता नष्ट हो जाय, तो अपने पीछे वह हमारे लिये क्या छोड़ जायगी?... छोड़ जायगी केवल ये अमानुषिक वातावरणवाले जेल—तथा हमारे हृदयों पर अपने बर्बरतापूर्ण शासन की एक अमिट छाप !......"

उन्हीं दिनों पं० जवाहरलाल नेहरू तथा श्री सुभाषचन्द्र बोस के प्रयत्न से 'भारतीय स्वतन्त्रता संघ' (Independence of India League) की स्थापना हुई। सुभाष बाबू ने इसकी एक शाखा का बंगाल में भी संघटन किया।

इसका कार्यक्रम यों था—

(१) आर्थिक असमानता को दूर करना।

(२) सबके लिये समान सुभीतों की व्यवस्था।

(३) रहन-सहन के स्तर को उच्च बनाना।

(४) मुख्य उद्योग धंधों का राष्ट्रीयकरण।

(५) मिल मालिकों तथा मज़दूरों के झगड़ों का पंचायत द्वारा फैसला।

(६) टैक्स लगाकर अथवा क़ानूनन व्यक्तिगत सम्पत्ति का नियन्त्रण !

(७) बेकारी तथा वृद्धावस्था की पेन्शन।

(८) लगान का एक-सा तरीक़ा।

(९) कृषकों के कर्ज को कम करना।

(१०) ज़मीन्दारी प्रथा का विनाश।

(११) छूआछूत को मिटाना।

(१२) महिलाओं में जागृति उत्पन्न करना।

नवयुवकों में पूर्ण स्वतन्त्रता की भावना लाने के लिये सुभाष बाबू

ने अकथ प्रयत्न किया। उन्हीं दिनों विदेशीय माल के बहिष्कार की प्रबल लहर उठी। सुभाष बाबू ने कितनी ही सभाओं में ओजस्वी भाषण दे-देकर जनता में जागृति फूँकी और विदेशीय सत्ता का बहिष्कार करने की प्रार्थना की।

सन् १९२८ में !

कांग्रेस का तैतालीसवाँ अधिवेशन कलकत्ते की विशाल नगरी में जिस समारोह के साथ मनाया गया, वह इतिहास की एक प्रसिद्ध घटना है।

उस साल के सभापति पंडित मोतीलाल नेहरू का ३६ सफेद घोड़ों की बग्गी में दो हज़ार स्वराज्य सैनिकों के साथ—चार पाँच लाख की भीड़ का जैसा शानदार जलूस निकला, वैसा आज तक कहीं देखने में नहीं आया।

भारत भर में कहीं भी, किसी समय भी, किसी राजा-महाराजा या गवर्नर-वायसराय, या शाहज़ादे-शाहंशाह का ऐसा जलूस नहीं निकला था।

जब राष्ट्रपति पं० मोतीलाल नेहरू की स्पेशल ट्रेन ९ बज कर ४५ मिनट पर हबड़ा स्टेशन पर पहुँची, तो १०१ तोपों की सलामी दी गई।

कलकत्ता कांग्रेस की शान और सुप्रबन्ध का समग्र श्रेय श्री सुभाषचन्द्र बोस को था। सुभाष बाबू स्वराज्य सैनिकों के सेनापति थे।

जब राष्ट्रपति का जलूस निकला, तो दो हज़ार स्वयसेवक ५० घुड़सवार तथा २०० सायकिल सवार राष्ट्रपति की गाड़ी के आगे-आगे थे। समग्र स्वयंसेवकों के शरीर पर खद्दर की खाकी सैनिक वर्दी थी। सभापति के एक मील लम्बे जलूस के आगे बैन्ड बज रहा था और उससे भी आगे मोटर पर सेनापति सुभाष चल रहे थे। उनके हृष्ट-पुष्ट शरीर पर के सैनिक वस्त्र उस समय की शोभा को द्विगुणित कर रहे थ।

सेनापति सुभाष और उनकी युवक सेना को देखकर निर्बल भारत की रगें फड़क उठीं। बूढ़ों के हृदय में भी एक बार क्रान्ति की लहर तड़-

फड़ाने लगीं। सुभाष बाबू हर इंच एक सेनापति दिखाई देते थे। उनमें दृढ़ आत्म-विश्वास तथा आत्म-गौरव की झलक थी और उनके मुख मंडल पर स्पष्टतः एक विजयी वीर के आत्म-सन्तोष की छाप थी।

वह एक दृश्य था! एक स्वप्न की झलक थी! भविष्य की एक आशा थी!

२८ दिसम्बर सन् १९२८ को पं० मोतीलाल नेहरू ने कांग्रेस का विजयी तिरंगा झंडा आकाश में फहराया।

सुभाष बाबू के सेनानी जय घोष कर उठे—सैकड़ों कंठों से निकला हुआ विजय घोष का वह गायन हवा में तैर उठा, जिससे गोरी सरकार के कानों के पर्दे फट गये।

विजय घोष घहरा दें।

स्वतन्त्रता के भीषण रण में, जन्मभूमि के विमल गगन में।
जीर्ण-शीर्ण युवकों के तन में।
आत्मत्याग की आग फूँककर, धवल ध्वजा फहरा दें।
विजय घोष घहरा दें।

वीर भावना हरित-भरित हो, बलि वेदी की अग्नि ज्वलित हो।
विरोधियों का दर्प दलित हो।
पराधीनता की बेड़ी से, माँ को मुक्त करा दें।
विजय घोष घहरा दें।

समराङ्गण में बहै रक्त नित, हो भीषण संग्राम देशहित।
शत्रुशक्ति हो जावे श्री-इति।
भारत भू में एक बार फिर, जीवन ज्योति जगा दें।
विजय घोष घहरा दें।

द्वेष दमन की लगन लगी हो, स्वतन्त्रता-रागिनी रगी हो।
नवजीवन की ज्योति जगी हो।

कर दें प्रलय, रक्त की लहरें, लहर लहर लहरा दें।
विजय घोष घहरा दें।
कीर्ति कौमुदी विमल धवल हो, भारत भू का साज नवल हो।
विकसित सब का हृदय कमल हो।
काली घटा हटा कर के, फिर 'कान्त' छटा छहरा दें।
विजय घोष घहरा दें॥

स्वयंसेवक सैनिकों का वह नाद सुनकर स्वयं पंडित मोतीलाल नेहरू भी विचलित हो उठे।

उन्होंने कह ही दिया—"मेरे नवयुवक सैनिकों! आज तुम्हारा विजय-घोष सुनकर मेरी शिथिल रगों में जवान खून दौड़ उठा है।...... तुम भारत की भावी सेना हो। अपने नस-नस में विद्रोह का संचार करो। मैं वृद्ध होते हुए भी कर्त्तव्य से हटनेवाला नहीं...तुम डटे रहो..."

कांग्रेस अधिवेशन की समाप्ति पर पं० मोतीलाल नेहरू ने सुभाष बाबू की प्रशंसा करते हुए कहा था—"सुभाष बोस मुझे अपने लड़के की तरह प्यारे हैं।"

कलकत्ता कांग्रेस के बाद सुभाष बाबू चुपचाप बैठे नहीं। इस समय तक भारतीय जनता के हृदय में उनके लिये बहुत उच्च स्थान बन गया था, अतः उनका उत्तरदायित्व भी बढ़ गया था। सरकार भयभीत थी, भारत में विदेशीय माल का प्रबल वहिष्कार देखकर।

महात्मा गाँधी ३ मार्च सन् १९२९ को कलकत्ते आये। और ४ मार्च को श्रद्धानन्द पार्क में विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई। ऐसा लगा, जैसे ब्रिटिश सरकार की नाक काट कर उस होली में डाल दी गई हो।

जली-भुनी सरकार ने उसी समय महात्मा गाँधी को गिरफ्तार कर लिया—और तुरन्त ही ज़मानत पर छोड़ भी दिया। महात्मा गाँधी रंगून चले गये।

६ मार्च को श्रद्धानन्द पार्क में विराट सभा आयोजित हुई। अध्यक्ष

पद से सुभाष बाबू ने कांग्रेस के मेम्बर बनाने, कांग्रेस फण्ड के लिये रुपया जमा करने तथा स्वयंसेवक भरती करने के लिये ज़ोरदार अपील की।

उन्होंने कहा—"हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रबल वेग को रोकने की चेष्टा करके सरकार अपनी बुद्धि का दिवाला निकाल रही है..."

कांग्रेस कौंसिल-प्रवेश के एकदम विरुद्ध थी—और इधर स्वराज्य पार्टी के प्रयत्न से बहुत से लोग कौंसिलों में प्रवेश कर चुके थे। परन्तु जब कांग्रेस ने तुरन्त कौंसिल छोड़ देने की आज्ञा दी, तो सुभाष बाबू ने एक अनुयायी भक्त की भाँति बंगाल कौंसिल को लात मार दी। सुभाष बाबू के अन्य साथियों ने भी ऐसा ही किया। उसी समय सुभाष बाबू ने कलकत्ता कार्पोरेशन की सदस्यता से भी त्यागपत्र दे दिया।

सन् १९२९ में लाहौर में जब कांग्रेस का चौवालीसवाँ अधिवेशन हुआ, तो सुभाष बाबू ने, महात्मा गाँधी के पूर्ण स्वाधीनता, कौंसिलों का बायकाट, कर न देना तथा सत्याग्रह वाले प्रस्ताव में एक संशोधन उपस्थित किया था—

जिसने सरकार को भी एक बार हिला दिया।

ब्रिटिश सरकार के शासन का विनाश करने के लिये मुक़ाबले की सरकार क़ायम करना ही उस संशोधन का उद्देश्य था।

(१) सत्याग्रह संग्राम शुरू हो।

(२) कर न दिया जाय।

(३) आम हड़ताल की जाय।

(४) नवजवानों, मज़दूरों, किसानों और दूसरे पीड़ितों का संगठन।

(५) सरकार द्वारा स्थापित कमेटियों, लोकल बोर्डों, तथा अदालतों का बायकाट।

(६) किसी भी चुनाव में भाग न लिया जाय।

(७) कौंसिलों, कमेटियों और बोर्डों के वर्तमान कांग्रेस-सदस्य त्यागपत्र दे दें।

(८) वकील तुरन्त वकालत छोड़ दें।

अगस्त सन् १९२९ में राजनीतिक बन्दी दिवस मनाया गया। सुभाष बाबू ने सरकारी दमन नीति की तीव्र आलोचना की।

फलतः उन पर राजद्रोह का जुर्म लगाया गया और २३ जनवरी सन् १९३० को उन्हें तथा उनके कुछ साथियों को १ साल सख़्त कैद की सज़ा हुई।

हाईकोर्ट उन्हें ज़मानत पर छोड़ना चाहती थी, परन्तु वे यह शर्त मानने को तैयार न हुए कि साल भर तक स्वतन्त्रता संग्राम में भाग न लेंगे। वे खुशी-खुशी जेल चले गये।

उन्होंने कहा—"सरकार हमारे शरीरों को ही कैद कर सकती है। परन्तु अन्तरात्मा की विद्रोहाग्नि तो अवसर पाकर धधक ही उठेगी...।"

अलीपुर जेल में आते ही सुभाष बाबू की भेंट अपने पुराने मित्र बसन्तकुमार मल्लिक से हुई। अब वह बालक १६, १७ वर्ष के युवक में परिणत हो गया था।

सुभाष बाबू को देखते ही वह उनके पास आया। अब उसमें बाल्य-सुलभ चपलता न थी, जैसा ८ वर्ष पूर्व सुभाष बाबू ने देखा था। अब उसमें गम्भीरता आ गई थी।

"तुम भी आ गये देवता!—" बसन्त ने कहा—"जैसे विधाता को यही मंजूर है कि हमारी आपकी मुलाकात सदैव किसी न किसी जेल में ही हो..."

"ठीक है—" सुभाष बाबू बोले—"मगर तुम इस बार यहाँ कैसे हो?..."

"गिरहकटी की सज़ा भुगत रहा हूँ"—

"क्या पिछली बार की तरह अब भी तुम पर झूठा अभियोग लगाया गया है!..." पूछा सुभाष बाबू ने।

"नहीं देवता!—" बसन्त ने सर नीचा करते हुए कहा—"अब तो मैं वास्तविक अपराधी बन गया हूँ..."

"मुझे आश्चर्य होता है यह सुनकर—" सुभाष बाबू ने कहा—"क्या तुम्हारी बाल्यावस्था का भोलापन, जवानी में अपराधी का रूप ले बैठा है?"

"क्या करूँ?—" बसन्त कहने लगा—"मैं पहले कितना अच्छा था, सोचता हूँ तो आँखों में आँसू आ जाते हैं...मगर पुलिस ने मुझे बिगाड़ दिया। चार बार मुझे निरपराध जेल भेजा, तो मैंने सोचा जब जीवन का अधिकांश भाग जेल में ही व्यतीत करना है, तो क्यों न वास्तविक अपराधी बन कर जेल जाऊँ?"

"तुमने अपनी आत्मा को बलपूर्वक कुचल डाला है युवक!...मुझे तुमसे ऐसी आशा न थी—" सुभाष बोले—"मेरे हृदय में वास्तविक अपराधी के प्रति उतनी ही घृणा है, जितनी अपनी आज़ादी छीननेवाली ब्रिटिश सरकार के प्रति..."

"......" सर नीचा किये हुए सुन रहा था बसन्त।

"यदि मैं उस समय जान सकता कि मैं एक अपराधी की प्राण-रक्षा कर रहा हूँ, तो तुम्हें पानी से बाहर निकालने के बदले और गहरे पानी में ढकेल देता और यदि तुम जीवित रहते, तो तुम्हारा गला टीप देता..."

"........."

"तुम अपनी मातृभूमि के लिये कलंक हो..." सुभाष के स्वर में तीव्रता थी। उन्होंने बसन्त की ओर देखा, तो चौंक पड़े।

बसन्त के दोनों गालों पर आँसू उतरा रहे थे। अपने प्राणरक्षक की वे कठोर बातें सुनकर, वह आत्मग्लानि में डूब रहा था। उसने आगे बढ़कर सुभाष बाबू के पैर पकड़ लिये।

"मुझे क्षमा करो देवता! इस जीवन को तुम्हीं ने बचाया है, तुम्हीं प्रकाश दिखाओ..."

सुभाष बाबू ने उसे उठाया, सान्त्वना दी।

"तुम्हारी बहन नीरा कहाँ है?—" पूछा उन्होंने।

"वह मजे में है देवता!—" बसन्त बोला—"उसकी शादी कर दी है मैंने। उसका पति सरकारी जासूस है। नाम है जनरजन राय।"

दूसरे दिन! सुभाष ने प्रातः काल देखा कि जेल के अधिकारी बसन्त-कुमार को अकारण ही पीट रहे हैं। वह युवक करुण स्वर में चिल्ला रहा था। सुभाष बाबू ने इस बात में हस्तक्षेप किया, तो जेल अधिकारियों की आज्ञा से उन पर भी पैशाचिक मार पड़ी।

सुभाष बाबू प्रबल मार का वेग न सह सकने के कारण बेहोश होकर गिर पड़े, परन्तु उन सरकारी कुत्तों ने उन्हें तब भी न छोड़ा। जब बसन्त ने अपने जीवनदाता की अपने लिये यह दुदशा देखी, तो वह दौड़ कर सुभाष बाबू के बेहोश शरीर के ऊपर हो रहा और उन नरपशुओं की भयंकर मार अपने शरीर पर सहन करने लगा।

११ अगस्त सन् १९३० को बंगाल काउन्सिल में सरकार से इस दुर्व्यवहार का कारण पूछा गया और साथ ही यह भी कहा गया कि इस मामले पर रिपोर्ट तैयार करने के लिये एक जाँच कमेटी नियुक्त हो। परन्तु सरकार ने फरमाया कि कैदियों ने अनुशासन भंग करने का प्रयत्न किय था। इस बात की जाँच के लिये कमेटी की आवश्यकता नहीं।

जेल से छूटने पर सुभाष बाबू पुनः कार्यरत हो गये। सरकार भी उनका स्वागत करने को तैयार बैठी थी।

१८ जनवरी सन् १९३१ को जब सुभाष बाबू मालदा से बहरामपुर की ओर आ रहे थे, तो उन्हें और आगे बढ़ने से रोक दिया गया। उन्हें दफ़ा १४४ के अन्तर्गत आगे न बढ़ने के लिये नोटिस दी गई। सुभाष बाबू ने वह आज्ञा मानने से इनकार कर दिया, और वे उसी स्थान पर क़ैद कर लिये गये। उसी स्थान पर उनका सरसरी मुक़दमा हुआ और सात दिन की सज़ा दी गई।

२५ जनवरी को वे पुनः मुक्त हुए।

२६ जनवरी को स्वतन्त्रता दिवस का समारोह होने वाला था।

सुभाष बाबू तथा उनके साथियों ने यह निश्चय किया कि "आक्टर-लोनी मानुमेण्ट" पर राष्ट्रीय ध्वजा फहराया जाय।

ऐसा करते हुए सुभाष बाबू के ऊपर पुलिस घुड़सवारों तथा सार्जण्टों की भीषण मार पड़ी।

× × × ×

१ अप्रेल सन् १९३१ में करांची में अखिल भारतीय राजनीतिक बन्दी सम्मेलन हुआ।

सुभाष बाबू ही उक्त सम्मेलन के सभापति थे।

उन्होंने अपने ओजस्वी भाषण में, जेलों में होनेवाले अत्याचारों की कथा कही और उनकी निन्दा की।

× × × ×

उन्हीं दिनों "गाँधी इर्विन पैक्ट" हुआ। इस समझौते के बावजूद भी जगह-जगह नौकरशाही का नग्न नृत्य होता रहा। बंगाल के हिजली और चटगाँव में सरकारी गुंडों ने मनमाना अत्याचार किया।

उस समय अपने देशवासियों के दुख से विक्षुब्ध हो वह भूखा शेर

सुभाष दहाड़ उठा था—"जो ब्रिटिश साम्राज्य एक दिन में बना है, वह एक रात में नष्ट भी होगा..."

११ नवम्बर सन् १९३१ को ढाका से ४ मील दूर तेजगाँव नामक स्थान में सुभाष बाबू पुनः गिरफ्तार कर लिये गये। वे उस समय ढाका में पुलिस अत्याचारों की जाँच करने जा रहे थे। गिरफ्तारी के थोड़े ही दिनों बाद वे छोड़ भी दिये गये।

× × × ×

२२ दिसम्बर सन् १९३१ को महाराष्ट्र नौजवान सभा का अधिवेशन हुआ। उसके सभापति श्रीसुभाषचन्द्र बोस ही थे। उन्होंने एक जोशीला भाषण दिया।

"सरकार की दृष्टि में मैं एक खतरनाक व्यक्ति हूँ। वह मुझे बहुत बड़ा क्रान्तिकारी समझती है, परन्तु वास्तव में मैं एक शान्ति-प्रिय व्यक्ति हूँ। इसमें तो सन्देह की ज़रा भी गुंजाइश नहीं कि आज हम आज़ादी की भूख से छटपटा रहे हैं और हमारी यह प्रबल भूख, अधूरी नहीं वरन् पूरी आज़ादी प्राप्त करने से ही शान्त हो सकेगी...अब हमें बिना पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त किये एक क्षण के लिये भी चैन नहीं है...दिल्ली के समझौते में नवयुवकों की नहीं सुनी गई...जब कि कांग्रेस और सरकार में अस्थायी संधि हो चुकी थी, तब सरकार हम पर मनमाने अत्याचार करती गई और सरकार की इस कारवाई को रोकने के लिये कांग्रेस के पास कोई चारा नहीं था...इसी मनमाने दमन ने युवकों के हृदयों में अग्नि प्रज्वलित की और वाध्य होकर युवकों ने क्रान्ति का सहारा लिया... आज हमारी सरकार हम पर नये-नये क़ानून लादती जा रही है और इससे यह स्पष्ट है कि जनता कि तनिक भी सहानुभूति न तो सरकार के साथ है और न तो उसके इन काले क़ानूनों के साथ।"

इस प्रकार सुभाष बाबू ने नागरिक स्वत्व संघ, युवक संघ तथा ट्रेड यूनियन आदि संस्थाओं के विभिन्न आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया।

उन दिनों गोरी नौकरशाही के प्रबल पृष्ठपोषक लार्ड विलिङ्गटन, अपने क्रूर व्यवहार द्वारा समग्र भारत के लिये भय का कारण बन गये थे। उन्होंने गाँधी इर्विन पैक्ट के विरुद्ध आचरण करने तथा उसे धूल-धूसरित बनाने में कोई कसर नहीं उठा रखी।

सरकार के ही षड़यन्त्र से उन दिनों बंगाल, युक्तप्रदेश तथा सीमा प्रान्त में आग की लहर दौड़ गई। और सरकार ने उस प्रबल अग्नि का शमन करने के लिये तीव्र दमन का सहारा लिया। अत्याचारों से सारा भारत प्रज्वलित हो उठा।

भारत के वायसराय तथा बंगाल के गवर्नर, सुभाष बाबू से पहले से ही रुष्ट थे। वे यह नहीं चाहते थे कि सुभाष बाबू इस तीव्र गति से सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह का संगठन करें। अतः सुभाष बाबू पुनः तृतीय-धारा के अन्तर्गत बन्दी बना लिये गये।

३ जनवरी सन् १९३२ को समग्र भारत ने क्षुब्ध होकर सुभाष बाबू की गिरफ्तारी का समाचार सुना। सरकार ने उन पर कोई निश्चित अपराध का आरोपण नहीं किया था। सरकारी विज्ञप्ति में केवल यही बात कही गई थी कि सुभाष बाबू प्रबल क्रान्तिकारी हैं और उन्होंने समग्र भारत में अँगरेज़ी सरकार के विरुद्ध आतंक फैलाया है। सुभाष बाबू की गणना "स्टेट प्रिज़नर्स" में की गई थी।

परन्तु उस ज़माने में इस श्रेणी के कैदियों को भी जो मृत्यु तुल्य कष्ट उठाने पड़ते थे, वह वर्णनातीत है।

सुभाष बाबू का स्वास्थ्य, पहले के भीषण बन्दीखानों में तो नष्ट हो ही चुका था—अब उनकी इस बन्दी ने उनके कुछ-कुछ सुधरते हुए स्वास्थ्य को एकदम नष्ट कर दिया।

समग्र भारत में अपने इस नरपुंगव के लिये विशेष चिन्ता फैली हुई थी। ज्यों-ज्यों जनता सुभाष बाबू के स्वास्थ्य की खराबी के विषय

में सुनती थी, उसका क्रोध गोराशाही शासन पर दिन प्रति दिन बढ़ता ही जाता था।

१५ नवम्बर सन् १९३२ को बंगाल काउन्सिल में श्री श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने सुभाष बोस तथा अन्य स्टेट प्रिजनर्स के स्वास्थ्य पर बहस करने के लिये प्रस्ताव उपस्थित किया।

श्री मुखर्जी ने कहा—"वीर सुभाष की चिन्ताजनक अवस्था का समाचार पाकर देशवासियों के हृदयों में विद्रोह-भावना जागृत हो उठी है और यह भावना किसी दिन प्रलयंकर अग्नि का रूप धारण कर सकती है..."

मिस्टर फ़ज़लुलहक़ ने श्रीमुखर्जी का समर्थन करते हुए वक्तव्य दिया था—"सरकार से ज़ोरदार अपील है कि वह स्टेट प्रिज़नर्स को बहुत जल्द, बिना शर्त रिहा करे।...यदि सरकार ऐसा करने को तत्पर नहीं है, तो कम से कम उसे यही करना चाहिये कि वह सुभाष बाबू को ऐसे स्थानों में जाने की सुविधा दे, जहाँ वे अपना ठीक इलाज करा सकें।"

सुभाष बाबू की बीमारी बहुत बढ़ चली। सरकार भी चिन्तित हो उठी, परन्तु उसे भारत के इस विद्रोही युवक का इतना भय था कि उसे उन्हें रिहा करने का साहस न हुआ। अन्त में उन्हें भुवाली भेजा गया। परन्तु यहाँ आकर भी सुभाष बाबू का स्वास्थ्य सुधरा नहीं। उन्हें ज्वर हमेशा लगा रहता था—पेट में कभी-कभी असह्य पीड़ा उठ आती थी, कुछ दिनों के बाद सुभाष बाबू को 'मेडिकल' जाँच के लिये लखनऊ भेजा गया। लखनऊ आने पर ज्वर का वेग बढ़ चला और छाती में दर्द भी होने लगा। इस समय तक सुभाष बाबू का वजन ५०॥ पौंड घट चुका था। लखनऊ में सुभाष बाबू का 'एक्सरे' लिया गया।

कर्नल वकले ने जाँच करने पर कहा कि फेफड़े में असाधारण झिल्ली पैदा हो गई है। भुवाली के मेडिकल बोर्ड तथा लखनऊ के सिविल सर्जन ने भी सुभाष बाबू को स्वीट्ज़रलैण्ड या फ्रांस जाने की सलाह दी।

अन्त में जब सरकार को यह भली भाँति मालूम हो गया कि सुभाष बाबू अधिक दिनों तक भारत में रहने पर जीवित नहीं रह सकते, तो उसने उन्हें योरप जाने की अनुमति दी, क्योंकि वह जानती थी कि उस विद्रोही के मरते ही समग्र भारत आग के शोले की तरह जल उठेगा और तब जो विप्लव होगा, वह सन् १८५७ से भी बढ़कर होगा।

सुभाष बाबू को, अपने योरोप भेजे जाने की बात सुनकर तनिक भी प्रसन्नता न हुई। वे तो अपनी मातृभूमि के पवित्र वातावरण में स्वच्छन्द पक्षी की भाँति उड़ना चाहते थे। फिर भी अपनी गिरती हुई तन्दुरुस्ती का ख्यालकर उन्होंने योरप जाना स्वीकार किया।

सुभाष बाबू के माता पिता, रायबहादुर जानकीनाथ बोस और प्रभावती देवी, एकदम वृद्ध हो चले थे, और इधर कुछ दिनों से उन दोनों व्यक्तियों का स्वास्थ्य भी अच्छा न था।

योरोप जाने के पहले सुभाष बाबू एक बार अपने सुयोग्य माता-पिता के दर्शन करना चाहते थे।

उनके माता-पिता की भी यही इच्छा थी कि वे अपने पुत्र को विलायत जाते समय भर आँख देखकर अपनी छाती शीतल कर लें।

अतः सरकार से प्रार्थना की गई कि वह सुभाष बाबू को अपने माता-पिता से कटक में मिलने की अनुमति दे।

परन्तु सरकार की आँखों में तो सुभाष बाबू भयानक क्रान्तिकारी थे और उसकी धारणा थी कि कटक भेजते समय सुभाष बाबू रास्ते से ही ग़ायब हो जायेंगे। उसने तो उनकी बीमारी को अब तक एक बहाना समझा था। अतएव निकम्मी सरकार ने इस विषय में ऐसा निष्ठुरता-पूर्ण उत्तर दिया कि मानवता का अन्त हो गया।

सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया था—"मेरी समझ में मिस्टर सुभाषचन्द्र बोस का अपने माता-पिता से मिलना बिल्कुल अनर्गल है। इस मुलाकात का कारण मेरी समझ में नहीं आता, सिवा इसके कि सुभाष बाबू

पुलिस की आँखों में धूल झोंककर भाग जाना चाहते हैं और छिपे रहकर सरकार के विरुद्ध पुनः षड़यन्त्र करना चाहते हैं...मुझे विश्वास है कि सुभाष बाबू के माता पिता अभी मर नहीं सकते...और साफ बात तो यह है कि सुभाष बाबू यदि योरोप न भी जाते और जेल में ही पड़े रहते, तब भी तो वे अपने माता पिता से नहीं मिल सकते थे। फिर वे योरोप जाते समय क्यों उनसे मुलाकात करना चाहते हैं?...इसके अतिरिक्त पुलिस के निरीक्षण में सुभाष बाबू को कटक भेजना असम्भव है और ऐसा करने में सरकार के लिये ख़तरा भी है..."

होम मेम्बर की इस लज्जाजनक उक्ति से यह स्पष्ट विदित है कि सरकार सुभाष बाबू के अस्तित्व से कितना डरती थी। सरकार को भय था कि कहीं वह बंगाल का शेर षड़यन्त्र करके सरकार का तख्त ही न उलट दे।

योरोप यात्रा के दो तीन दिन पहले तक भी जेल अधिकारियों ने उनके साथ अच्छा व्यवहार न किया। जेल अधिकारी उन्हें एक दिन पहले ही बम्बई भेज देना चाहते थे, परन्तु उस समय तक सुभाष बाबू का सामान भी तैयार न था। जब जेल अधिकारियों ने बहुत ज़िद की, तो उनके पशुत्व से क्षुब्ध होकर सुभाष बाबू ने योरोप जाने से इनकार कर दिया।

परन्तु उस समय डिप्टी कमिश्नर की बुद्धिमानी से मामला सुलझ गया और सुभाष बाबू ने योरोप जाना स्वीकार कर लिया।

इधर सुभाष बाबू लगातार १३ महीनों से बीमार थे। उनकी समस्त शक्ति क्षीण हो चुकी थी।

२३ फरवरी सन् १९३३ को उनके रुग्ण शरीर को लेकर एक जहाज बम्बई से विलायत के लिये चल पड़ा। बन्दरगाह पर सुभाष बाबू के बहुत से सम्बन्धी तथा उनसे श्रद्धा रखनेवाले हज़ारों युवक उपस्थित थे। परन्तु सरकार यह नहीं चाहती थी कि वे पुलिस की अनुपस्थिति में उनसे मिलें।

अतः सुभाष बाबू किसी से नहीं मिल सके। केवल उन्होंने अपने तीन भाइयों, श्री सुशील बोस, श्री अमिय बोस तथा श्री सुनील बोस से भेंट की।

जब तक जहाज बन्दरगाह में खड़ा था, तब तक सैकड़ों सशस्त्र सिपाही लम्बी बन्दूकें लिये पहरा देते रहे।

सरकार की शासन शक्ति संगीनों की नोक पर ही तो है, तभी तो ३॥ हाथ के एक मनुष्य के लिये सरकार को यह सब प्रबन्ध करना पड़ा।

जब जहाज चलने को हुआ, तो एक पुलिस आफ़िसर ने आकर सुभाष बाबू को सूचना दी कि तृतीय धारा की पाबन्दी उन पर से हटा ली गई है!

श्री सुभाषचन्द्र बोस के साथ प्रसिद्ध बंगाली डाक्टर सैलेन सेन भी यात्रा कर रहे थे। जहाज के डाक्टर ने भी सुभाष बाबू की परीक्षा की और उन्हें विश्वास दिलाया कि वे विलायत में जाकर बहुत जल्द अच्छे हो जाँयगे।

बम्बई के सुप्रसिद्ध डाक्टर श्री देशमुख तथा श्री साठे, सुभाष बाबू की स्वास्थ्य परीक्षा करना चाहते थे, परन्तु सरकार ने उन्हें अनुमति नहीं दी।

स्वदेश से विदा होते समय सुभाष बाबू की रुग्ण आँखों में आँसू आ गये।

वे परतन्त्रता के आँसू थे! वे विवशता के आँसू थे।

विदा के समय सुभाष बाबू ने अपने देश वासियों के लिये निम्न लिखित सन्देश दिया—"विलायत प्रस्थान करने से पहले मैं अपने समग्र मित्रों को धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने मेरी रुग्णावस्था का समाचार पाकर मेरे प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की है और सरकार द्वारा अपमानित होने पर भी यहाँ आने का कष्ट उठाया है।...मेरी भयानक बीमारी को देखते हुए भी सरकार चुप साधे बैठी रही। न तो उसने मुझे मुक्त ही किया और न तो किसी प्रकार की स्वतन्त्रता ही दी।...इस बहेलिये सरकार ने एक आज़ाद पंछी का पर काटकर उसे मौत के घाट रवाना कर दिया है।...

इतनी प्रार्थनायें करने पर भी इस व्याध का हृदय न पसीजा और मुझे अपने वृद्ध माँ बाप से मिलने की आज्ञा न मिली।...जहाज पर आ चुकने पर सरकार ने मेरे ऊपर से तृतीय धारा का दायित्व भी उठा लिया, ताकि विलायत में उसे मेरी चिकित्सा तथा रहन-सहन के लिये ज़िम्मेदार न होना पड़े और मैं ही सब खर्च बरदाश्त करूँ। मेरे भाई शरदचन्द्र बोस भी आजकल जेल में हैं, अतः मेरे घर की आर्थिक अवस्था भी अच्छी नहीं है। ऐसी आर्थिक कठिनाई में मैं शायद योरोप जा भी नहीं सकता, मगर मेरे कुछ मित्रों ने मेरे योरोप-प्रवास तथा चिकित्सा-प्रबन्ध का आर्थिक भार अपने ऊपर ले लिया है। इसके लिये मैं उनका सदैव कृतज्ञ रहूँगा। मैं नहीं कह सकता कि योरोप जा कर मैं अपनी पुरानी तन्दुरुस्ती फिर से हासिल कर सकूँगा या नहीं, परन्तु मैं अपने देशवासियों को विश्वास दिलाता हूँ कि दवा की अपेक्षा मुझे उनके आशीर्वाद तथा शुभ कामनाओं से जल्दी आराम पहुँचेगा...''

सुभाष बाबू का जहाज़ जब चल पड़ा, तो उपस्थित जनता ने गगन-भेदी नारे लगा कर उनके प्रति अपनी प्रगाढ़ भक्ति तथा अगाध श्रद्धा का परिचय दिया।

स्वतन्त्रता के पुजारी सुभाष बाबू अपनी मातृभूमि से दूर चले गये। कुछ दिनों तक वेनिस में रहने के पश्चात् उन्हें स्विट्ज़रलैण्ड जाना पड़ा।

यह साधारण बात है कि जब कोई सरकार किसी व्यक्ति को कैद करती है तो उसके भरण-पोषण तथा स्वास्थ्य रक्षा का भार वह अपने ऊपर ले लेती है। जब सुभाष बाबू को सरकार ने बन्दी बनाया था, तो उसका यह कर्त्तव्य था कि वह उनके स्वास्थ्य की समुचित देख-रेख और उनके कुटुम्ब के लिये पर्याप्त आर्थिक व्यवस्था करती।

सुभाष बाबू के स्वास्थ्य की रक्षा सरकार न कर सकी, तो उसे उचित था कि वह उनके अच्छे होने तक चिकित्सा सम्बन्धी सारे व्यय स्वयं करती, अथवा उन्हें भत्ता देती। जो निर्दयी सरकार निरीह व्यक्तियों पर

बम बरसाने के लिये लाखों रुपया व्यय कर सकती है तथा कितने ही युवकों को जेलखाने में डालकर उनके पीछे हज़ारों रुपया नष्ट कर सकती है—उसने सुभाष बाबू को भत्ता देना स्वीकार न किया। यह बेईमानी नहीं तो और क्या है?

श्री सुभाषचन्द्र बोस ने "मैनचेस्टर गार्जियन" में एक पत्र प्रकाशित कर ब्रिटिश पार्लियामेण्ट की कामन्स सभा के सदस्यों से अनुरोध किया कि वे सन् १८१८ के तीसरे रेगुलेशन तथा बंगाल आर्डिनेन्स के अनुसार नज़रबन्द किये गये शाही बन्दियों को जो भत्ता दिया जाता है, उनके विषय में कामन्स सभा में प्रश्न करें।

इस पत्र में उन्होंने लिखा था कि जो लोग इस तरह बिना अपराध प्रमाणित हुए ही नज़रबन्द हैं, उनमें से बहुतों को अलाउँस नहीं मिलता और जिनको मिलता भी है उनको बहुत कम। स्वयं उन्हें भी अलाउन्स के रूप में एक पाई भी नहीं दी गई।

अस्वस्थ रहने पर भी सुभाष बाबू ने विदेशों में भारत के लिये जो कुछ किया, वह वर्णनातीत है। योरोप के जिस किसी देश में वे गये, वहीं उनका स्वागत हुआ और उन्होंने, अभागे भारत के लिये जो कुछ उनसे बन सका, किया।

बड़े दिनों के अवसर पर रोम में पूर्वीय विद्यार्थी कांग्रेस हुई, जिसमें योरोप के भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों में पढ़नेवाले जापानी, चीनी तथा भारतीय छात्र सम्मिलित हुए। उनकी संख्या लगभग ६०० के थी।

इस अपूर्व सम्मेलन के अवसर पर रोम यूनिवर्सिटी के रेक्टर, पोप तथा अन्य व्यक्तियों ने अपनी शुभ कामनायें प्रदर्शित की थीं।

स्वयं सिन्योर मुसोलिनी ने आकर 'जूलियस सीज़र हाल' में विद्या-

र्थियों के समक्ष भाषण किया था। श्री सुभाषचन्द्र बोस भी उक्त अवसर ार वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने ही इस समारोह का उद्घाटन किया था। इस कांग्रेस के साथ ही तृतीय भारतीय सम्मेलन भी हुआ। सुभाष बाबू पूर्व सम्मति से सभापति मनोनीत हुए।

इस सम्मेलन में कितने ही महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए। श्री सेन गुप्ता तथा श्री विट्ठल भाई पटेल की मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया।

महात्मा गांधी जीवन पर्य्यन्त के लिये आनरेरी सभापति चुने गये और पं० जवाहरलाल नेहरू और श्री सुभाषचन्द्र बोस आनरेरी उप-सभापति निर्वाचित हुए।

विद्यार्थियों के समक्ष भाषण करते हुए सुभाष बाबू ने कहा—"यह आवश्यक नहीं कि भारत के समग्र विद्यार्थी एक ही विश्वविद्यालय में अध्ययन करें। उन्हें चाहिये कि वे योरोप के अन्य देशों के विश्वविद्यालयों में भी प्रवेश करें, क्योंकि वे भी उतने ही अच्छे हैं, जितने इङ्गलैण्ड के। भारतीय विद्यार्थी आन्दोलन का राष्ट्रीय आन्दोलन से गहन सम्पर्क है। इटली तथा जरमनी के विद्यार्थी आन्दोलनों को देखकर उन्हें भी अपनी शक्ति विस्तृत करनी चाहिये..."

रोम में कुछ दिनों तक रहने के बाद सुभाष बाबू पोलैण्ड में आये। वहाँ पर वे कितने ही प्रसिद्ध व्यक्तियों से मिले।

उस समय पोलैण्ड ने कुछ ही वर्ष पूर्व स्वतन्त्रता प्राप्त की थी, अतः वहाँ के निवासियों ने भारतीय आन्दोलन के प्रति पूर्ण सहानुभूति प्रदर्शित की। सुभाष बाबू के कुछ मित्रों ने उन्हें अपने यहाँ के ग्रामीण स्कूल दिखाये, जहाँ आधुनिक विज्ञान प्रणाली द्वारा शिक्षा दी जाती थी।

वारसा में सुभाष बाबू ने देखा कि पोलिश लोग भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के बड़े प्रेमी हैं। ओरियण्टल सोसायटी में सुभाष बाबू ने सारगर्भित भाषण दिया। उस देश के युवक तथा युवतियों ने सुभाष बाबू से भारतीय विद्यार्थी-आन्दोलन के विषय में बहुत से प्रश्न पूछे।

वारसा में सुभाष बाबू की भेंट श्री स्टैनिसला से हुई। ये संस्कृत के एक प्रसिद्ध विद्वान थे और भारतीय संस्कृति को अत्यन्त आदर की दृष्टि से देखते थे।

इसके बाद जेनेवा में कुछ दिनों तक सुभाष बाबू रहे। जेनेवा से वे नाइस (दक्षिण फ्रान्स) में आये। वहाँ समुद्र की सुखद जलवायु तथा सूर्य-रश्मियों से सुभाष बाबू के स्वास्थ्य पर आशातीत प्रभाव पड़ा। वहाँ से मिलन होते हुए सुभाष बाबू पुनः रोम आये।

मिलन में उन्होंने एक विराट सभा में "भारत और इटली" पर एक सारगर्भित भाषण दिया। उस सभा में इटली के प्रायः सभी विद्वान उपस्थित थे।

इसके बाद सुभाष बाबू पुनः जेनेवा आये और वहाँ पर कुछ दिनों तक रहने के बाद कार्ल्सबाद चले गये। कार्ल्सबाद, चेकोस्लोवाकिया का प्रसिद्ध स्थान है। यह स्थान चारों ओर से मुग्धकारी पहाड़ियों से घिरा हुआ है। वह यूरोप भर में अपने मुख्य प्राकृतिक झरनों के कारण विख्यात है। इन झरनों से गर्म जल प्रवाहित होता है, जो महान रोग-नाशक है। सुभाष बाबू भी यहाँ जल-चिकित्सा के लिये ही आये थे।

अगस्त सन् १९३३ में वे कार्ल्सबाद के पास फ्रेन्जेन्सबाद भी गये थे। कार्ल्सबाद औद्योगिक नगर है। वहाँ चीनी मिट्टी के कारखाने बहुतायत से हैं।

चेकोस्लोवाकिया की सरकार ने सुभाष बाबू के लिये यह व्यवस्था कर दी कि वे इन कारखानों में घूम-घूम कर काय प्रणाली देख सकें।

२९ सितम्बर सन् १९३३ को जेनेवा में भारत विषयक तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेन्स हुई थी। सभापति थे श्री एडमण्ड प्रिवट। अमेरिका, चीन, डेनमार्क, इङ्गलैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, हालैण्ड, हिन्दुस्तान तथा स्विट्ज़रलैण्ड के प्रतिनिधि कान्फ्रेन्स में आये थे। श्रीयुत दसाई तथा सुभाष बाबू ने भी इस कान्फ्रेन्स में भाषण दिया था।

सुभाष बाबू ने अपने भाषण में कहा था—"हिन्दुस्तान की वर्तमान दशा को समझने के पहले यह जानना ज़रूरी है कि भारत में कैसा कठोर दमन हुआ है ? जो जेल से छूट भी गये हैं, उन पर भी सरकार ने ऐसा प्रतिबन्ध लगा दिया है, कि उनका जेल में होना या बाहर रहना, दोनों बराबर है। हमारी इस समय की चुप्पी से यह न समझ लेना चाहिये कि इस दुर्दमनीय दमन से हम भयभीत हो गये हैं और हमने अपनी पराजय स्वीकार कर ली है...स्वतन्त्रता प्राप्ति की पुकार भारतवासियों के रग-रग में भरी हुई है और यह सम्भव नहीं कि हम इस विनाशकारी दमन से त्रस्त होकर अपने ध्येय से विचलित हो जाँय...भारत के अन्दर राष्ट्रीय कांग्रेस ही एक ऐसी संस्था है, जो जनता के सच्चे प्रतिनिधित्व का दावा कर सकती है। जब तक अभागा भारत अपने मौलिक मानवीय अधिकारों से वंचित रखा जाता है, तब तक यह सम्भव नहीं कि भारतवासियों के हृदय से क्रान्ति की लपटें बुझाई जा सकें...स्विट्ज़रलैण्ड अन्तर्राष्ट्रीयता का जन्म-केन्द्र है और इसी की प्रेरणा से अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का जन्म हुआ है...भारत वासियों में अन्तर्राष्ट्रीयता की प्रेरणा प्रबलरूप से विराज-मान है, और जब तक संसार के सभी राष्ट्र स्वतन्त्र नहीं हो जाते, तब तक अन्तर्राष्ट्रीय-संघ की उपयोगिता हमारे लिये कुछ भी नहीं है। भारत की स्वतन्त्रता की समस्या, केवल हमारी समस्या नहीं है, वह दुनिया की समस्या है। भारत में ब्रिटिश राज्य, ब्रिटिश साम्राज्यवाद का आधार है और ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नींव पर ही विश्व साम्राज्यवाद अवस्थित है...इसलिये भारत की स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्न करना, संसार की स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्न करना है।"

आष्ट्रिया में आने पर सुभाष बाबू ने उसकी राजनीतिक तथा आर्थिक स्थिति का विस्तृत अध्ययन किया।

आष्ट्रिया की तत्कालीन परिस्थिति, योरप की दृष्टि में उसका महत्व, आष्ट्रिया हंगरी का प्रश्न, हीमवेर, नात्सी, कृषक पार्टी तथा समाजवादी

आदि दलों की स्थिति पर सुभाष बाबू ने भारतीय पत्रों में पर्याप्त प्रकाश डाला था।

वियना में एक बार आष्ट्रिया तथा भारतवासियों की एक सभा हुई थी। इसमें श्री सुभाषचन्द्र बोस भी उपस्थित थे। सभा में एक समिति की स्थापना हुई, जिसका नाम "इण्डिअन सेण्ट्रल यूरोपियन सोसायटी" रखा गया। इस सोसायटी का उद्देश्य, भारत तथा आष्ट्रिया में व्यापारिक तथा व्यवहारिक सम्बन्ध को अभिवृद्धि करना था।

एक साल बाद जब फिर सुभाष बाबू वियना गये, तो श्री सुनीति-कुमार चटर्जी, कुमारी इन्दिरा नेहरू तथा डाक्टर अटल आदि भारतीयों ने इस सभा में भाग लिया था।

वियना में श्री सुभाषचन्द्र बोस ने सभी प्रमुख तथा प्रसिद्ध व्यक्तियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया था।

वियना के एक सुप्रसिद्ध पत्र ने सुभाष बाबू के विषय में जो कुछ लिखा था, वह यों है—

"कलकत्ते के भूतपूर्व मेयर वियना में !

आज कल एक प्रतिष्ठित भारतीय अतिथि वियना के एक मकान में ठहरा हुआ है। रहन-सहन यूरोपियन होने पर भी वह हिन्दू ही है। वह भारत के स्वतन्त्रता संग्राम का वीर योद्धा है। उसके नाम से ब्रिटिश सरकार थरथर काँपती है। श्री सुभाषचन्द्र बोस है उनका नाम। श्री सुभाष ने कलकत्ता और कैम्ब्रिज के विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाई है और कैम्ब्रिज से "डाक्टर आफ़ फ़िलासफ़ी" की पदवी प्राप्त की है। वे ऐसी सुन्दर अंग्रेजी बोलते हैं, जैसे वह इनकी अपनी मातृभाषा हो। अपने देश की स्वतन्त्रता के लिये युद्ध करते समय श्री सुभाषचन्द्र बोस को आठ बार जेल-यात्रा करनी पड़ी है। इससे ये अत्यन्त अस्वस्थ हो गये हैं। उनके वियना आने का कारण उनकी अस्वस्थता ही है। यहाँ ठहर कर वे यहाँ के डाक्टरों से इलाज करायेंगे। ईश्वर उन्हें शीघ्र स्वस्थ करे।"

सुभाष बाबू के माता-पिता बहुत दिनों से अस्वस्थ थे। इधर जब से सुभाष बाबू विलायत गये थे, तब से उनके पिता की अवस्था दिन प्रति दिन गिरती ही जाती थी।

और एक दिन वृद्धावस्था द्वारा जर्जर उनके शिथिल शरीर पर मृत्यु की भीषण विभीषिका आ पड़ी। उनकी हालत चिन्ताजनक हो गई। सुभाष बाबू को केबिलग्राम द्वारा सूचना दी गई। यह समाचार पाकर सुभाष बाबू को महान दुख पहुँचा और साथ ही सरकार की निर्दयता पर उन्हें क्रोध भी आया। अपने स्वास्थ्य की परवाह न करके सुभाष बाबू अपने पिता के अन्तिम दर्शन प्राप्त करने के लिये चल पड़े।

४ दिसम्बर सन् १९३४ को एक हवाई जहाज सुभाष को लेकर दम-दम हवाई अड्डे पर उतरा। जनता लाखों की संख्या में हवाई अड्डे पर उपस्थित थी। अपने प्यारे नेता को देखकर उसने जयघोष से आकाश गुँजा दिया।

परन्तु ज्योंही सुभाष बाबू ने हवाई ज़हाज से उतर कर मातृभूमि के पावन वक्ष पर चरण रखा, त्योंही दो पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट आ पहुँचे। सरकार ने तब भी उनका पीछा न छोड़ा—और सुभाष बाबू पुलिस की बन्द कार में अपने घर पहुँचाये गये।

घर पहुँचते ही सुभाष ने अपनी माता के चरण छुए और पिता के कमरे में आये।

रायबहादुर जानकीनाथ बोस मृत्यु शैय्या पर पड़े थे। प्राण-पखेरू शीघ्र उड़ जाने को तड़फड़ा रहे थे—परन्तु आत्मा, अपने वीर पुत्र का अन्तिम दर्शन करने को अटकी हुई थी।

सुभाष के नेत्रों से अश्रुधारा फूट पड़ी। वह वीर सुभाष, जिसने कभी अपने कष्टों पर आँसू नहीं बहाया था—पत्थर का वह टुकड़ा, जो ब्रिटिश

सरकार की ठोकरें खाकर भी पथ से न हटा था—बंगाल का वह शेर, जिसकी दहाड़ सुनकर गोराशाही की रूह तक काँप उठती थी—

वही !

वही सुभाष !

आज अपने जन्मदाता का अन्त होते देखकर रो पड़े बच्चों की तरह।

एक बार आँखें खोलकर रायबहादुर ने सुभाष बाबू की ओर देखा—कुछ कहना चाहा, परन्तु मृत्यु के हाथों ने रोक दिया—

और दो मिनट बाद हाड़ माँस का वह बोलता हुआ पंछी, पिंजड़े से मुक्त होकर, अपने बन्धन तुड़ाकर, अनन्त आकाश की ओर उड़ भागा।

सुभाष रोते हुए बाहर आये। तो उन्होंने देखा कि उनका मकान चारों ओर से सशस्त्र पुलिसों के पहरे में रख दिया गया है।

सुभाष को देखते ही दो पुलिस आफिसर उनके पास आये और जल्लाद सरकार का एक परवाना उन्हें दिया। उसमें उन्हें आज्ञा दी गई थी कि वे एलगिन रोड वाले अपने मकान की चहारदीवारी से बाहर नहीं जा सकते। परिवार के लोगों के अतिरिक्त अन्य किसी भी व्यक्ति से नहीं मिल सकते और न तो पत्र व्यवहार ही कर सकते हैं। और अपनी सारी डाक पुलिस आफिसर को दिखाने के बाद बाहर भेज सकते हैं अन्यथा नहीं।

सरकारी आज्ञा पत्र में यह भी कहा गया था कि यदि सुभाष बाबू इन आज्ञाओं का उलंघन करेंगे तो उन्हें सात साल तक की सज़ा और काफी जुरमाना होगा।

सरकार की इस निकृष्ट आज्ञा में कितनी अमानुषिकता तथा पशुत्व भरा था ?

उस समय सुभाष बाबू अपने पूज्य पिता की मृत्यु पर आँसू बहा रहे थे—और सरकार के आर्डिनेन्स की तलवार उनके सर पर लटक रही थी।

दो एक दिनों बाद सरकार ने एक और क्रूर आज्ञा प्रेषित की, जिसमें उन्हें आदेश दिया गया था कि वे एक सप्ताह के भीतर ही योरोप चले जाँय, अन्यथा उन्हें पुनः गिरफ्तार कर लिया जायगा।

इस पर सुभाष बाबू ने सरकार से एक महीने का अवकाश माँगा, जिससे कि वे अपने पिता का श्राद्ध आदि कर सकें।

सुभाष बाबू जब तक योरोप में थे, तब तक उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि वे एकदम स्वस्थ हो गये हैं, लेकिन उनकी यह धारणा अस्थायी थी। भारत आने पर सुभाष बाबू की अवस्था दिन प्रति दिन खराब होती गई।

पहली जनवरी सन् १९३५ को वे अपने बड़े भाई श्रीशरद्चन्द्र बोस से मिले। उस दिन उनके पिता का श्राद्ध था और कई लोग घर पर आये थे—परन्तु सुभाष बाबू इतने कमज़ोर हो रहे थे कि वे आगन्तुकों को केवल 'नमस्कार' भर कर सके।

ऐसी अवस्था में उनका योरोप जाना अनिवार्य हो गया।

१० जनवरी सन् १९३५ को वे विक्टोरिया नामक जहाज़ द्वारा वियना के लिये रवाना हो गये। वहाँ उनके आपरेशन का सब प्रबन्ध हो चुका था।

पिछली बार जब सुभाष बाबू विलायत गये थे, तो यद्यपि उनकी दिनचर्या अत्यन्त व्यस्त थी, फिर भी जो कुछ थोड़ा अवकाश उन्हें मिल सका था, उसका उपयोग कर सुभाष बाबू ने एक अमूल्य पुस्तक की रचना की थी।

उसका नाम था—"The Indian Struggle" यह पुस्तक अँगरेजी में थी—पृष्ठ संख्या लगभग ३५० के थी। पुस्तक में भारत के स्वातन्त्र्य संग्राम की विषद विवेचना थी।

जब सुभाष बाबू विलायत से लौटकर कराँची उतरे थे, तो उसकी

एक हस्तलिखित प्रति उनके पास थी। वहाँ पर सरकार ने उनकी तलाशी ली और उक्त पुस्तक की हस्तलिपि ज़ब्त कर ली।

सौभाग्यवश उस पुस्तक की टाइप की हुई एक दूसरी प्रति इङ्गलैण्ड के विशार्ट कम्पनी के पास थी, जिसे उसने सुभाष बाबू से प्रकाशनार्थ ले लिया था। शीघ्र ही विशार्ट कम्पनी ने वह पुस्तक प्रकाशित की और देखते-देखते इङ्गलैण्ड और अमेरिका में उक्त पुस्तक की धूम मच गई। पुस्तक की प्रशंसा सुप्रसिद्ध विद्वानों ने मुक्त कठ से की। रोम्याँ रोलाँ ने सुभाष बाबू को लिखा था—"आपकी पुस्तक के अध्ययन से भारत की परिस्थिति के विषय में पूर्णतः ज्ञान प्राप्त हो जाता है..."

जार्ज लैन्सबरी ने सुभाष बाबू को बधाई देते हुए लिखा था—"आपकी पुस्तत में ध्यान से पढ़ रहा हूँ। विश्व साहित्य की यह अमूल्य वस्तु है......बहुत सुन्दर है यह पुस्तक। ऐसी अद्वितीय रचना के लिये आप बधाई के पात्र हैं..."

उक्त पुस्तक में भारत की अपनी कहानी के अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

परन्तु भयभीत सरकार को ऐसा लगा कि उक्त पुस्तक से शायद इङ्गलैण्ड और अमेरिका वाले भी सरकार के विरुद्ध न हो जाँय। अतः उसने शीघ्र ही पुस्तक के ज़ब्ती की आज्ञा निकाली—और देखते-देखते वह अमूल्य पुस्तक सरकार की निर्दयता का शिकार हो जब्त हो गई।

इस पुस्तक की ज़ब्ती का विरोध बड़े-बड़े विद्वानों ने किया। अर्ल रसेल, बर्नार्ड शा, एच० जी० वेल्स आदि विद्वानों ने सरकार की इस आज्ञा के विरुद्ध अपने विचार प्रकट किये। भारतीय असेम्बली तथा पार्लियामेण्ट में भी इस पुस्तक की ज़ब्ती से खूब आन्दोलन हुआ।

लेकिन सरकार की ओर से सर होर ने अपना वही पूर्व परिचित उत्तर दिया—"इस पुस्तक से क्रान्ति को प्रोत्साहन मिलेगा, जो ब्रिटिश शासन के लिये अहितकर होगा..."

पहली बार विलायत जाकर सुभाष बाबू ने विलायत में कांग्रेस का खूब प्रचार किया था। इस बार भी वे वहाँ जाकर चुपचाप बैठे नहीं। ज़रा सी तबियत ठीक होते ही वे पुनः कार्यों में तल्लीन हो गये।

जहाँ भी वे गये, वहाँ उन्होंने अपने देश को विदेशियों की दृष्टि में ऊँचा उठाया। उन्होंने भारत के विरुद्ध विदेशों में होने वाले मिथ्या सरकारी प्रचार का खंडन किया—भारत की वास्तविक राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थिति से संसार के सभ्य लोगों को परिचित कराया—

लोगों को यह भी बताया कि स्वराज्य-संग्राम का महत्व क्या है? और दर्शन, साहित्य, कला एवं संस्कृति में भारत कितना अग्रणी है, यह भी विदेशियों के समक्ष उन्होंने प्रदर्शित किया।

सुभाष बाबू जर्मनी की राजधानी बर्लिन गये, तो बर्लिन के मेयर ने कलकत्ते के भूतपूर्व मेयर सुभाष बाबू के लिये एक सन्देशा भेजा, जिसमें सुभाष बाबू के बर्लिन पाधारने पर हार्दिक हर्ष प्रकट किया गया था।

बर्लिन के मेयर ने लिखा था—"हम लोग बर्लिन में कलकत्ते के मेयर सुभाष बाबू का स्वागत करते हुए अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रकट करते हैं। हमें यह जानकर परम सन्तोष हुआ है कि कलकत्ता उन्नति कर रहा है..."

३ फरवरी सन् १९३६ को श्री सुभाषचन्द्र बोस पेरिस होते हुए डबलिन पहुंचे। आयरलैण्ड में आपका समारोह के साथ स्वागत हुआ। 'आयरिश प्रजातन्त्र' के प्रधान श्री डी० वेलेरा तथा 'आइरिश भारत स्वतन्त्रता संघ' की प्रधान मैडम मैकब्राइड ने आपकी अभ्यर्थना की।

श्री डी० वेलेरा के मुख पत्र "आयरिश प्रेस" ने सुभाष बाबू की डबलिन यात्रा के सम्बन्ध में आकर्षक शीर्षक देकर समाचार छापा। "निर्वासित भारतीय राजदूत का मिशन" शीर्षक में उसने सुभाष बाबू की बड़ी प्रशंसा की और उनके सम्बन्ध की बहुत सी ज्ञातव्य बातों पर प्रकाश डाला।

आयरिश ब्राडकास्टिङ्ग कारपोरेशन ने सुभाष बाबू को भारत पर भाषण देने के लिये आमन्त्रित किया। आयरलैण्ड के महान् व्यापारियों ने आपसे कई सभाओं में भाषण करने का अनुरोध किया। श्री डी० वेलेरा ने सुभाष बाबू का स्वागत करते हुए, उनसे गवर्नमेण्ट हाउस के प्राइवेट कमरे में आध घंटे तक मनोरंजक रूप में बात-चीत की और भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम के प्रति अपनी आन्तरिक सहानुभूति प्रदर्शित की।

सुभाष बाबू ने कहा कि भारतीयों को आयरिश आन्दोलन से बहुत बड़ी प्रेरणा प्राप्त हुई है। लन्दन में बैठा 'जानबुल' सुभाष बाबू की गति-विधि पर गृद्ध दृष्टि लगाये था। उसे भय था कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के ये दो प्रबल विध्वंसक न जाने क्या षड्यन्त्र रच रहे हैं? डी० वेलेरा और सुभाष बाबू का वार्तालाप सुनने के लिये 'जानबुल' ने खुफियों का एक दल सुभाष बाबू के पीछे लगा दिया था—परन्तु वीर सुभाष को इसकी परवाह ही क्या थी?

सुभाष बाबू लन्दन जाना चाहते थे—और इसके लिये उन्होंने सरकार से प्रार्थना की कि वह उन्हें एक पासपोर्ट लदंन जाने के लिये प्रदान करे। बड़े-बड़े लोगों ने सुभाष बाबू की इस बात का समर्थन किया था।

परन्तु जिस विद्रोही शेर, ने समग्र योरोप में घूम-घूमकर, ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नग्न चित्र लोगों के सामने खींचकर अभागे भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये तड़पती हुई दशा का करुण वर्णन किया था—उसे सरकार इङ्गलैण्ड जाने की क्यों अनुमति देती? उसे तो स्वय अपनी प्रजा पर भी विश्वास नहीं था। वह जानती थी कि विद्रोही सुभाष की वाणी में जादू है, जो स्वयं उसकी प्रजा को भी विद्रोहिणी बना देगा।

अतः कटु आलोचनाओं के बावजूद भी सुभाष बाबू इङ्गलैण्ड जाने के लिये पासपोर्ट नहीं प्राप्त कर सके।

अब तक सुभाष बाबू का स्वास्थ्य ठीक हो चला था। उनकी अन्तरात्मा भारत-भूमि का दर्शन करने को तड़फड़ा रही थी।

उन्होंने सरकार से अपने भारत लौटने की अनुमति माँगी। परन्तु काले हृदय और गोरी चमड़ीवाली सरकार ने उन्हें साफ़-साफ़ उत्तर दे दिया—"यदि भारत में रहना चाहते हो तो जेल में रहो।"

अब सुभाष बाबू के सामने दो समस्यायें थीं—या तो वे जीवन भर खानाबदोश बनकर संसार भर की खाक छानते फिरें—या भारत में आकर जेल के सींखचों में बन्द रहकर अपने देशवासियों की करुण पुकारें सुनें।

सुभाष बाबू ने खानाबदोशी के स्थान पर, स्वदेश में रहकर जेल में प्राण त्याग करना ही उत्तम समझा। अतएव वे अपनी उस अल्पकालिक स्वतन्त्रता पर लात मारकर भारत को चल पड़े।

सरकार ने यह सुना। सुभाष बाबू का भारत आगमन सुनकर वह एक बार काँप उठी।

८ अप्रैल सन् १९३६!

बम्बई में जनसमूह उमड़ पड़ा था, अपने निर्वासित नेता का स्वागत करने के लिये। सुभाष बाबू को देखते ही जनता ने गगन-भेदी नारे लगाकर उनका स्वागत किया।

सुभाष बाबू ने सबसे पहले महात्मा गांधी एवं जवाहर लाल नेहरू का कुशल क्षेम पूछा।

जहाज से नीचे पैर रखते ही, पुलिस कमिश्नर ने गिरफ्तारी का वारंट दिखाकर सुभाष बाबू को तुरन्त गिरफ्तार कर लिया। उस समय सुभाष बाबू ने व्यग्र जनता के समक्ष यह सन्देश दिया।

"स्वातन्त्र्य संग्राम की पताका सदैव ऊँची रखो। अपने मार्ग में पड़े हुए तुच्छ कंकड़ों का ख्याल न करो..."

पुलिस ने सुभाष बाबू को आर्थर रोड जेल पहुँचा दिया। सुभाष

बाबू की गिरफ्तारी पर देश भर में क्षोभ छा गया—और प्रमुख शहरों में हड़ताल हो गई।

उस साल कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में था—राष्ट्रपति थे पं० जवाहरलाल नेहरू।

सुभाष बाबू ने बहुत प्रयत्न किया कि वे भी उक्त अधिवेशन में सम्मिलित हो सकें, परन्तु सरकारी ज़िद की तलवार ने उनकी अभिलाषा का गला काट दिया।

कांग्रेस कार्यसमिति ने उनकी गिरफ्तारी का विरोध करते हुए निम्न-लिखित प्रस्ताव पास किया था—"यह घटना इस बात की प्रबल प्रमाण है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने शान्तिपूर्ण राजनीतिक तथा व्यक्तिगत जीवन को नष्ट करने के लिये दमन के हथियारों का प्रयोग बन्द नहीं किया..."

उस साल महात्मा गांधी कांग्रेस से अलग हो गये थे, अतः उन्होंने किसी भी विषय पर अपना कोई विचार प्रगट नहीं किया—

परन्तु राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरू के गम्भीर गर्जन से लखनऊ कांग्रेस का वृहत् पंडाल गूँज उठा—राष्ट्रपति ने कहा—"हम आराम नहीं कर सकते, क्योंकि आराम करना, उन लोगों को धोखा देना है, जो चले गये और जाते-जाते आज़ादी की जलती हुई मशाल हमारे हाथों में पकड़ा गये। यह धोखा देना है, उस काम को जिसे हमने अपनाया है और उस प्रतिज्ञा को, जो हमने की है। यह धोखा देना है उन करोड़ों को, जिनकी व्यग्र आँखें रात दिन हमारी ओर लगी हुई हैं और जो अपने आराम को त्याग कर हमारे पीछे चलने को तत्पर हैं...भारत के राष्ट्रवाद में, भारत की आज़ादी में और ब्रिटिश साम्राज्यवाद में मेल मिलाप की कोई गुंजाइश नहीं। और अगर हम साम्राज्यवाद के फन्दे में फँसे रहेंगे, तो हमारा नाम और हमारी हैसियत चाहे जो रहे, तथा चाहे जितनी राजनीतिक शक्ति हमें मिल जाय, परन्तु वास्तव में हम परतन्त्रता के

बन्धन में बँधे ही रहेंगे, पीछे घसीटने वाली ताकतों से हमारा सम्बन्ध बना ही रहेगा और पूँजीवाद का आर्थिक स्वार्थ हमें दबाता रहेगा। आम जनता की बरबादी इसी तरह जारी ही रहेगी और हमारा कोई ज़रूरी सामाजिक मसला हल नहीं हो सकेगा...सच्ची राजनीतिक आज़ादी भी हमें कभी न मिल सकेगी...मुझे विश्वास है कि भारत के वर्तमान प्रश्न को हल करने के लिये समाजवाद ही श्रेष्ठ है। समाजवाद ही भारतीयों की गरीबी, बेकारी तथा गिरी हुई दशा एवं गुलामी दूर कर सकता है... मैं हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिये कोशिश इसलिये करता हूँ कि मेरे अन्तराल का 'पुरुष' इस विदेशी शासन को बरदाश्त नहीं कर सकता... मैं स्वराज्य प्राप्ति के लिये प्रयत्न इसलिये करता हूँ कि सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है.. मैं चाहता हूँ कि कांग्रेस समाजवादी संस्था बन जावे और तब अपने ध्येय की पूर्ति के लिये आगे पग उठावे..."

सुभाष बाबू के चिकित्सक डा० रुडोल्फ़ डेमेल ने कहा था कि यदि स्वास्थ्य की ठीक से रक्षा न की गई, तो उनकी पुरानी बीमारी फिर से उभड़ सकती है।

सरकार जानती थी कि पुनः नजरबन्दी से सुभाष बाबू का स्वास्थ्य अवश्य खराब हो जायगा, परन्तु उसे इस बात की क्या चिन्ता थी। उसे तो चिन्ता यह थी कि यदि सुभाष बाबू जेल के सींखचों से बाहर रहे, तो वे क्रान्ति को अवश्य प्रोत्साहन देंगे। और तब सरकार का अन्यायपूर्ण शासन नष्ट हुए बिना न रहेगा। अतः उसने सुभाष बाबू को बन्दी बनाये रखने में ही अपना लाभ सोचा।

कुछ दिनों के बाद सुभाष बाबू यरवदा जेल भेज दिये गये। यहाँ आते ही सुभाष बाबू की अवस्था पुनः गिरने लगी।

अप्रैल का महीना था। गर्मी अपने यौवन पर थी। जेल की सुदृढ़ दीवारें तप्त तवे सी गर्म हो जाती थीं।

सुभाष बाबू अपना जीर्ण शरीर लिये हुये पड़े रहते थे, जेल की दीवारों के भीतर। उनको जेल की उष्णता असह्य थी। इसके अतिरिक्त उन्हें रात्रि में एक बन्द कोठरी में ताले के अन्दर रखा जाता था, जिसमें कहीं से हवा जाने का भी रास्ता न था।

इस प्रकार सुभाष बाबू उस अस्वस्थकर वातावरण में रह कर, अपने पुराने रोग का क्रमशः उभड़ना देख रहे थे। कुछ दिनों के बाद सुभाष बाबू की चिन्ताजनक अवस्था का ख्याल कर सरकार ने उन्हें कुर्सियाङ्ग भेज दिया। कुर्सियाङ्ग में, अपने ही भाई के मकान में वे नज़र-बन्द के रूप में रखे गये। परन्तु उनका रोग बढ़ता ही गया।

उन्हें ज्वर रहता था—अपच थी और हृद्शूल से कभी-कभी वे अत्यन्त बेचैन हो उठते थे।

जब असेम्बली में सुभाष बाबू के स्वास्थ्य को लेकर भीषण चर्चा चली, तो बाध्य होकर सरकार ने नीलरतन तथा मेजर ड्रमण्ड को सुभाष बाबू की परीक्षा के लिये भेजा। उक्त डाक्टरों के रिपोर्ट से, सुभाष बाबू को एक्स रे परीक्षा के लिये कलकत्ता मेडिकल कालेज में लाया गया।

सुभाष बाबू के प्रति सरकार के इस बर्बरतापूर्ण व्यवहार से समग्र भारत क्रोधित था।

राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरू की आज्ञानुसार समग्र भारत में १० मई सन् १९३६ को सुभाष दिवस मनाया गया। देश भर में सभायें हुईं। और सरकार के दमन नीति की तीव्र निन्दा की गई।

जनता ने सरकार के इस व्यवहार पर अपना रोष प्रकट किया, जो

उसने श्री सुभाषचन्द्र बोस को उन पर बिना अभियोग प्रमाणित किये बन्दी बना रखा था।

राष्ट्रपति पंडित जवाहरलाल नेहरू ने प्रयाग की सभा में एक ओजस्वी भाषण देते हुए कहा था—"श्रीयुत सुभाषचन्द्र बोस की गिरफ्तारी ने एक सिद्धान्त का रूप धारण कर लिया है और इस सम्बन्ध में हम तब तक चुप नहीं रह सकते, जब तक कि हम सरकार से अपने इस अपमान का बदला न ले लें...सुभाष बाबू को अकारण जेल में बन्द रखना, समग्र राष्ट्र का अपमान करना है। मैं समझता हूँ कि सरकार ऐसा निन्दनीय कार्य करके हमारी आत्माओं में विद्रोह का संचार कर रही है...आतक-वाद की सृष्टि स्वयं सरकार कर रही है, न कि सुभाष बाबू! हम सरकार को बता देना चाहते हैं कि हमारे रगों का खून, सदियों तक ठंडा रहने के बाद अब उबाल लेने लगा है और यदि हम प्रतिशोध लेने के लिये प्रत्याक्रमण करें, तो इस बात की सारी जिम्मेदारी इस निकम्मी सरकार पर ही होगी..."

सुभाष बाबू की बन्दी को लेकर राष्ट्र भर में इतनी हलचल मची, इतना आन्दोलन हुआ, सरकार की इतनी भर्त्सना की गई, मगर उसके कान, देश की पुकार न सुन सके। उसने सब कुछ सुनकर भी देश-वासियों के प्रबल पुकार की उपेक्षा की, उसने कोई स्पष्ट उत्तर देने का कष्ट न किया। सदैव टाल-मटोल करती रही वह!

आश्चर्य की बात तो यह थी कि सरकार न तो सुभाष बाबू पर मुकदमा चला कर उनके अपराध ही प्रमाणित करती थी और न तो वह उन्हें मुक्त ही करना चाहती थी।

इङ्गलैण्ड के सुप्रसिद्ध पत्र "मैनचेस्टर गार्जियन" ने भारतीय सरकार की दुर्नीति पर एक विचारपूर्ण टिप्पणी लिखी थी—"हम भाषण और विचारों की स्वतन्त्रता के विषय में अपनी उदार नीति का ढोल विश्व भर मे पीटते फिरते हैं। तब भी हमारे साम्राज्य के अन्तर्गत कितने ही राष्ट्र

ऐसे हैं, जिन्हें उक्त सुविधा प्राप्त नहीं है। क्या मिस्टर सुभाषचन्द्र बोस के साथ भारतीय सरकार जो दुर्व्यवहार कर रही है, वह अँगरेज़ी न्याय के अनुकूल है?...अथवा यह वही वस्तु है, जिसके लिये अँगरेज लोग विदेशियों की सभ्यता पर कटाक्ष करते हैं..."

विश्व भर से आवाजें आ रही थीं—"सुभाष बोस को रिहा करो—"

सारा संसार ही सुभाष बाबू को जेल से बाहर खड़े हुए देखने को उत्सुक था। समग्र विश्व की यह माँग थी कि सुभाष बाबू तुरन्त छोड़ दिये जाँय।

अब सरकार को भी यह भली प्रकार विदित हो गया था कि यदि वह शीघ्र ही सुभाष बाबू को आज़ाद नहीं कर देती, तो सारे संसार में उसकी तीव्र निन्दा होने लगेगी।

अतः उसने सुभाष बाबू को १७ मार्च सन् १९३७ को बिना किसी शर्त के छोड़ दिया। १७ मास के कठोर बन्धन के बाद सुभाष बाबू ने आज़ादी की किरण देखी।

घर पहुँचने पर प्रमुख कांग्रेसी नेताओं ने सुभाष बाबू का स्वागत किया। सुभाष बाबू अत्यन्त शिथिल हो गये थे। वजन भी बहुत घट गया था। शाम को सदैव शरीर अतिशय गर्म हो जाया करता था।

सुभाष बाबू की यह रिहाई, सरकार की कोई उदारता नहीं प्रगट करती थी। वरन् सरकार ने कांग्रेस के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर ही सुभाष बाबू को रिहा किया था।

सरकार क्यों न भयभीत होती? उस समय सरकार की दुर्नीति तथा अड़ङ्गों के बावजूद भी भारत के अधिकांश प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डल स्थापित हो चुके थे और देश की समग्र भूमि पर कांग्रेस का शासन था।

अब सरकार नये विधान को चालू करने के ख्याल से कुछ नरम बनना चाहती थी। कुछ दिनों बाद कलकत्ते के श्रद्धानन्द पार्क में समग्र

बंगाल की ओर से सुभाष बाबू को अभिनन्दन पत्र दिया गया। इस अभिनन्दन पत्र का उत्तर उन्होंने अत्यन्त मार्मिक तथा भावपूर्ण शब्दों में दिया।

सुभाष बाबू ने कहा—"अपने देश की किसी खास समस्या का हल चाहे जो कुछ भी हो, किन्तु कुछ बातें ऐसी हैं, जो सभी के लिये आवश्यक हैं...हमें यह अनुभव करना चाहिये कि आज सारा संसार एकाकार हो रहा है और हमारे देश भारतवर्ष का भाग्य संसार के अन्य देशों के साथ जुड़ा हुआ है। आज संसार की क्या स्थिति है और कल क्या होगी? इस बात पर पूर्ण ध्यान देकर, तब राष्ट्रीय आन्दोलन का संचालन करना चाहिये...साम्राज्यवाद चाहे जिस रूप में हो, वह नागरिकों की स्वतन्त्रता तथा शान्ति के लिये बाधक है। अतएव स्वतन्त्रता और शान्ति के रक्षार्थ हमें साम्राज्यवाद का तीव्र विरोध करना आवश्यक है...भारतवर्ष एक राष्ट्र है और यदि हम यह चाहते हैं कि देश वासियों का शीघ्र ही उद्धार हो जाय, तो समस्त भारतीय जनता को भेद-भाव त्याग कर, जाँत-पाँत—ऊँच-नीच की भावना का विस्मरणकर, एक राष्ट्रीय झंडे के नीचे एकत्रित होना चाहिये...हमें अपना आन्दोलन इस प्रकार चलाना चाहिये कि हम मज़दूरों, किसानों, दलितों तथा मध्यम वर्ग की पूर्ण सहानुभूति प्राप्त कर सकें और सब मिलकर साम्राज्यवाद के विरुद्ध ज़िहाद करें...इस समय सब से आवश्यक यह है कि हमारे भूखे और गुलाम देश वासियों के आर्थिक एवं राजनैतिक विकास के लिये, कांग्रेस की अधीनता में सभी साम्राज्य विरोधिनी शक्तियों का एकत्रीकरण कर सम्मिलित मोर्चा क़ायम किया जाय और हमारे संघर्ष का मार्ग अहिंसात्मक रहे। आज मैं इस परिस्थिति में नहीं हूँ कि भविष्य का कार्यक्रम बता सकूँ, परन्तु यह बिल्कुल स्पष्ट है कि आगे मैं अपने समय और शक्ति का अधिकांश भाग अखिल भारतीय कार्यों में लगाना चाहता हूँ। क्षेत्र चाहे राजनैतिक हो अथवा सामाजिक—परन्तु हमारी

मुक्ति तो उस संघर्ष पर निर्भर है, जो सारे भारत की एकता के बल पर, साम्राज्यवाद की शोषण नीति का मुकाबला करने के लिये चलाया जायगा..."

अन्त में भाषण समाप्त करते हुए सुभाष बाबू ने कहा—"आप लोगों ने मेरे प्रति अपनी जिस हार्दिक सहानुभूति का परिचय दिया है, उसके बदले मेरे पास ऐसा कुछ नहीं है, जो मैं आपको दे सकूँ। हाँ! इस घटना की पवित्र स्मृति सदैव मेरे हृदय में सुरक्षित रहेगी और संकट के समय आपकी यह सहानुभूति मेरे लिये ईश्वरीय प्रेरणा का काम करेगी...मैं पुनः अपने अटल संकल्प को दुहराता हूँ कि जननी जन्मभूमि की सेवा में, उसकी राजनैतिक तथा आर्थिक मुक्ति के लिये मेरे पास जो कुछ है, तन मन धन, सब समर्पण है..."

कुछ दिनों के बाद सुभाष बाबू अपने डाक्टर श्री धर्मवीर की देख-रेख में अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिये डलहौसी चले गए।

अपने राजनैतिक जीवन में कई बार सुभाष बाबू ने महात्मा गाँधी की आलोचना की थी। अपनी पुस्तक "भारतीय युद्ध" में भी उन्होंने यही दिखाया था कि महात्मा गाँधी की धार्मिक प्रवृत्ति के ही कारण कांग्रेस को असफलता मिल रही है।

परन्तु आश्चर्य कि इस बार जेल से छूटते ही सुभाष बाबू के विचारों में महान् परिवर्तन हो गया। वे अहिंसा के प्रबल पुजारी बन गये। बङ्ग प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सभापति की हैसियत से सुभाष बाबू ने बङ्गाल की सभी कांग्रेस कमेटियों को निम्नलिखित सन्देश भेजा था—"कांग्रेस शान्तिपूर्ण उपायों से स्वराज्य की प्राप्ति चाहती है। कांग्रेस संस्थायें जनता में सदैव अहिंसा का प्रचार करती रहती हैं। देश में इसका प्रभाव अत्यन्त सन्तोषजनक हुआ है। परन्तु शोक है कि पिछले समय में बङ्गाल में कुछ हिंसात्मक घटनायें हो चुकी हैं। इन घटनाओं के कारण सरकार को भी जनता पर अपनी हिंसात्मक प्रवृत्ति दिखाने का

पूर्ण अवसर मिल गया। हमें अपने अहिंसा-प्रचार का कार्य करते रहना चाहिये। हमारा यह कर्त्तव्य है कि भविष्य में हिंसात्मक कार्यों की सम्भावना को दूर करने के लिये यथाशक्ति प्रयत्नशील रहें।"

सुभाष बाबू का स्वास्थ्य सुधरा नहीं। डाक्टरों ने उन्हें पुनः योरोप जाने की राय दी।

इस बार उन्हें इङ्गलैण्ड जाने का पासपोर्ट भी सरलतापूर्वक मिल गया। सुभाष बाबू के आगमन पर ब्रिटिश साम्राज्य की वह वैभवपूर्ण राजधानी लंदन—'इन्कलाब जिन्दाबाद' के गगनभेदी नारों से गूँज उठी। सैकड़ों भारतीयों ने उनका विक्टोरिया स्टेशन पर स्वागत किया।

भारतीय विद्यार्थी संघ की ओर से भी उनका अभिनन्दन किया गया।

लन्दन पहुँचते ही ब्रिटिश पत्रकारों ने उन्हें घेर लिया।

सुभाष बाबू ने अपने वक्तव्य में उनसे कहा—"जब तक सारे विधान को फिर से दुहराया नहीं जाता, तब तक कांग्रेस अपना मंत्रिमंडल होते हुए भी कोई बहुत बड़ा कार्य करने में असमर्थ है!"

सुभाष बाबू लन्दन में एटली, लैंसबरी, लार्ड स्नेल आदि से मिले। लन्दन की जनता अब तक असत्य प्रचार के कारण सुभाष बाबू को प्रबल विद्रोही तथा अंगरेजों का खूनी समझती थी—परन्तु सुभाष बाबू की सौम्य आकृति देखकर, लन्दन की जनता सोचने लगी—क्या यही है अंगरेजों का विनाशकारी शत्रु?—क्या यही है ब्रिटिश साम्राज्य का विध्वंसक—वह विद्रोही सुभाष!

कई महीने तक विलायत में रहने के बाद, जब सुभाष की तबियत कुछ सुधर गई तो उनकी अन्तरात्मा अपने देश में चलकर वहाँ के निवासियों का दुःख-दर्द दूर करने के लिए तड़पड़ा उठी!

फलतः वे थोड़े ही दिनों में भारत लौट आए !

देशवासियों ने सुभाष बाबू के अपूर्व त्याग तथा देशभक्ति का बदला, उनको अपना राष्ट्रपति बनाकर चुकाया !

उस साल कांग्रेस का ५१ वाँ अधिवेशन, सूरत ज़िले के हरिपुरा नामक गाँव में हुआ था।

सुभाष बाबू ने राष्ट्रपति का गौरवपूर्ण पद अपने अपूर्व त्याग, प्रबल देश-भक्ति और अमूल्य जन सेवा के प्रचण्ड उत्साह से प्राप्त किया था।

उस समय भारतवर्ष जिस क्रान्ति-मार्ग पर अग्रसर हो रहा था, उसके संचालन के लिये सुभाष बाबू जैसे क्रियाशील नेता को ही राष्ट्रपति का पद-ग्रहण करना आवश्यक था।

समग्र देश में कांग्रेस मंत्रि-मण्डल के पद-त्याग से जो वैधानिक संकट उपस्थित हो गया था और जिसके कारण भारत का उज्ज्वल भविष्य अन्धकारपूर्ण दिखाई देने लगा था, उन सबका सामना करने के लिए सुभाष बाबू जैसे नायक की ही आवश्यता थी !

राष्ट्रपति के पद से श्री सुभाषचन्द्र बोस ने जो सारगर्भित वक्तृता दी थी, उसका कुछ अंश यों है—"मित्रो, आज हमारी अवस्था अत्यन्त चिन्ताजनक है ! कांग्रेस के भीतर अहिंसा और उग्र पक्षों में ऐसा मतभेद हो गया है कि उसकी उपेक्षा करना व्यर्थ है ! आज ब्रिटिश साम्राज्यवाद हमें चुनौती दे रहा है। ऐसे विपत्ति काल में हमारा कर्त्तव्य क्या है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। हमें दृढ़ता के साथ खड़े होकर इस तूफान का सामना करना चाहिए और अपने निर्दयी शासकों की दुर्नीति को असफल बनाते रहना चाहिए। स्वतन्त्रता-युद्ध के लिए आज कांग्रेस ही उत्तरदायी साधन है। उसमें उग्र पन्थी भी हो सकते हैं और अहिंसावादी भी। परन्तु दोनों को कांग्रेस की छत्रछाया में खड़े होकर साम्राज्य-विरोधिनी शक्तियों का एकत्रीकरण करना चाहिए। अन्त में मैं यह कहकर आप सबका आन्तरिक भाव प्रकट करूँगा कि महात्मा गांधी दीर्घजीवी हों,

और हमारा देश बहुत दिनों तक उनके नेतृत्व में अपने स्वातन्त्र्य प्राप्ति के ध्येय की ओर आगे बढ़ता रहे—यही समस्त भारत की हार्दिक कामना है !....भारत माहात्मा गाँधी को खोना नहीं चाहता, खास कर ऐसे समय में जब कि सब लोगों में ऐक्य स्थापित करने के लिए हमें उनकी आवश्यकता है। क्या अपने युद्ध को कटुता और घृणा से बचाए रखने के लिए हम उन्हें चाहते हैं, स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए हम उन्हें चाहते हैं ? नहीं-नहीं, मनुष्य मात्र के हित के लिए हम उन्हें चाहते हैं। हमारा युद्ध केवल ब्रिटेश साम्राज्यवाद से नहीं है, वह संसार भर के साम्राज्यवाद से है, जिसका आधार ब्रिटिश साम्राज्यवाद ही है। अतः हम केवल भारत ही के लिए नहीं वरन् मनुष्य-मात्र के हित के लिए लड़ रहे हैं ! भारत की स्वाधीनता का अर्थ है, समस्त मानव-जाति का भय से मुक्त हो जाना !"

हरिपुरा कांग्रेस के बाद सुभाष बाबू अपने पन्द्रह साथियों के साथ टीपरा नामक जिले का दौरा करने गए।

टीपरा के अधिकांश मुसलमान कांग्रेसी विचार के थे, इसलिए सुभाष बाबू के वहाँ जाने पर उन राष्ट्रीय मुसलमानों ने अपूर्व उत्साह और समारोह के साथ उनका स्वागत किया।

इस बात से मुस्लिम लीग वालों को बड़ी जलन हुई और इन लोगों ने सुभाष बाबू के स्वागत में विघ्न डालने का प्रयत्न किया। सुभाष बाबू के स्वागत के लिए जनता की अपार भीड़ एकत्रित थी और उसके पीछे केवल कुछ शरारती मुस्लिम लीगी काले झण्डे लिये खड़े थे।

सबेरे ब्राह्मणबरिया की ओर से सुभाष बाबू का स्वागत हुआ और जलूस निकला। जब जलूस स्टेशन रोड से आगे बढ़ा, तब मुस्लिम लीग-वालों की एक भीड़ ने ईंट पत्थर फेंकना आरम्भ कर दिया, जिससे पन्द्रह आदमी घायल हो गए। सुभाष बाबू को भी हलकी चोटें आयीं।

एक सभा में भाषण करते हुए सुभाष बाबू ने कहा—

"मैं देखता हूँ कि भारत के कुछ प्रान्तों में स्थिति इतनी गम्भीर हो गई है कि उसके लिए चेतावनी देना आवश्यक हो गया है ! मैं इस प्रकार के कार्यों से सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तियों को यह साफ-साफ बता देना चाहता हूँ कि यह ईंट पत्थर हम लोगों को अपने पवित्र पथ से विचलित न कर सकेंगे। मेरा अनुमान है कि ज्यों-ज्यों जनता की शक्ति नित्यप्रति बढ़ रही है, त्यों-त्यों मुस्लिम लीग वाले हताश होते जा रहे हैं, और वे एक प्रकार से पागल हो उठे हैं। किन्तु हम लोगों को उनके रोष का सामना शान्ति से, उनके गुण्डेपन का सामना अपनी सहनशीलता से और उनकी घृणा का सामना अपने प्रेम से करने का ही संकल्प कर लेना चाहिए। ऐसा करने से ही हम लोग अपने सत्य तथा अहिंसा धर्म के प्रति अपने को सच्चा प्रमाणित कर सकेंगे—"

हरिपुरा कांग्रेस के बाद राष्ट्रपति सुभाष बाबू ने जिस मनोयोगपूर्वक स्वातन्त्र्य संग्राम का संचालन किया, उससे समस्त देश की श्रद्धा उनके प्रति द्विगुणित हो उठी।

एक दिन के लिये भी सुभाष बाबू को विश्राम नहीं था। बड़े-बड़े नेता भी उनकी कर्मनिष्ठा देखकर अवाक् थे। सुभाष बाबू संघ-शासन-योजना के पक्षपाती नहीं थे।

उन्होंने स्पष्ट स्वर में कहा—"मैं जानता हूँ कि कार्यसमिति के अधिकांश सदस्य इस घृणित योजना के पक्षपाती हैं परन्तु मेरे विचार से वे भूल पर हैं..."

जलपाईगुड़ी में होने वाले राजनैतिक सम्मेलन में सुभाष बाबू ने अपनी नवीन योजना देश के समक्ष रखी।

उन्होंने कहा—"आगामी कांग्रेस के अधिवेशन में हमें यह घोषित कर देना चाहिये कि हम इस संघ शासन योजना से सन्तुष्ट नहीं हो सकते . यदि सरकार हमें ६ महीने के भीतर पूर्ण स्वाधीनता नहीं प्रदान करती तो उसके विरुद्ध हम सभी शक्तियों का एकत्रीकरण करके भयानक स्वातन्त्र्य संग्राम की करेंगे...और हमारा नारा होगा—अंग्रेजो ! भारत छोड़ दो..."

कांग्रेस का आगामी अधिवेशन त्रिपुरी में होना निश्चित था। नये राष्ट्रपति के चुनाव के लिये तैयारियाँ होने लगीं। उग्र कांग्रेसजनों ने इस बार भी राष्ट्रपति पद के लिये सुभाष बाबू का ही नाम घोषित किया।

उधर गाँधीजी का महान् बल पाकर डाक्टर पट्टाभि सीतारमैया भी खड़े हो गये थे।

कांग्रेस के इतिहास में यह संघर्ष, एक अभूतपूर्व घटना थी। दोनों ओर से चुनाव संग्राम के लिये वृहद् आन्दोलन हुए। राष्ट्रपति के चुनाव में बहुत बड़ी-बड़ी शक्तियाँ सुभाष बाबू के विपक्ष में कार्य कर रही थीं। कांग्रेस कार्यसमिति के सात सदस्यों ने, सरदार विट्ठल भाई पटेल के नेतृत्व में सुभाष बाबू के विरुद्ध अपनी पूरी शक्ति लगा दी थी।

पंडित जवाहरलाल नेहरू भी सुभाष बाबू के खड़े होने के विपक्ष में थे। सुभाष बाबू के राष्ट्रपति होने में महान् आशंका उठ खड़ी हुई थी। समग्र देश भयभीत दृष्टि से अपने नेताओं का वह संग्राम देख रहा था।

२९ जनवरी सन् १९३९ ई० के दिन हर प्रान्त में राष्ट्रपति के चुनाव के लिये वोट पड़े। ३३०७ प्रतिनिधियों ने इस चुनाव में भाग लिया था, जिसमें से ३३० सदस्य तटस्थ रहे। शेष २९७७ प्रतिनिधियों में से किसी ने सुभाष बाबू को वोट दिया और किसी ने डाक्टर पट्टाभि सीतारमैया को।

नीचे की तालिका मे यह स्पष्ट हो जायगा कि किस स्थान पर कितने वोट सुभाष बाबू को मिले और कितने डाक्टर पट्टाभि को।

स्थान	सुभाष	पट्टाभि	स्थान	सुभाष	पट्टाभि
अजमेर	२०	६	आसाम	३४	२२
बंगाल	४०४	७९	बर्मा	८	६
दिल्ली	१०	५	कर्नाटक	१०६	४१
केरल	८०	१८	पंजाब	१८२	८६
तामिलनाड	११०	१०२	युक्तप्रान्त	२६९	१८५
बम्बई	१२	१४	महाकोशल	६७	६८
महाराष्ट्र	७७	८६	नागपुर	१२	१७
सीमाप्रान्त	१८	२३	सिन्ध	१३	१२
बरार	११	२१	उड़ीसा	४४	९९
बिहार	७०	१९७	आन्ध्र	२८	१८१
गुजरात	५	१००			
	८१७	६५१		७६३	७१७

बहुमत से सुभाष बाबू विजयी हुए। कांग्रेसजनों ने बाध्य होकर राष्ट्रपति का पद सुभाष बाबू को समर्पित किया।

सुभाष बाबू की विजय से देश के बड़े-बड़े नेताओं को यह स्पष्ट विदित हो गया कि भारतवासी अपने स्वातन्त्र्य-संग्राम का संचालन क्रन्ति के प्रबल पुजारी सुभाष बाबू द्वारा कराना चाहते हैं।

इस समय सुभाष बाबू की महान् विजय से महात्मा गांधी जैसे आदर्श व्यक्ति भी विक्षुब्ध हो उठे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में अपनी आन्तरिक व्यथा प्रकट की—"डाक्टर पट्टाभि सीतारमैया की हार मेरी हार है...."

आगे चलकर उन्होंने कांग्रेस कार्यसमिति से कहा कि इसके वर्तमान सदस्य त्यागपत्र दे दें और सुभाष बाबू अपनी नीति मानने वाले सदस्यों द्वारा कार्यसमिति का निर्माण करें।

गांधी जी ने, अपनी इस हार से विक्षुब्ध होकर अपने महान् व्यक्तित्व की बाज़ी लगा दी थी। सुभाष बाबू के चुनाव ने कार्यसमिति के सदस्यों में खलबली डाल दी।

फल यह हुआ कि २२ फरवरी सन् १९३९ के दिन कांग्रेस कार्य-समिति के १३ सदस्यों ने त्यागपत्र दे दिया। सरदार विट्ठल भाई पटेल, मौलाना अब्दुल कलाम आज़ाद, डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद आदि भी उन त्यागपत्र-दाताओं में से थे।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने यद्यपि त्यागपत्र नहीं दिया था फिर भी उस समय जो वितंडावाद उपस्थित हो गया था, वह उन्हें नापसंद था।

कांग्रेस कार्यसमिति के त्यागपत्र दे देने से सुभाष बाबू चिंतित हो उठे। वे जानते थे कि कांग्रेस के महान् कर्णधारों को, उनका राष्ट्रपति होना, स्वीकार नहीं है। परंतु वे क्या करते? भारत की जनता ने अपनी अटूट श्रद्धा और भक्ति का जो भव्य प्रदर्शन किया था और उनके गले में जो विजय की माला पहनाई थी, उसे सुभाष बाबू निकाल कर फेंक भी तो नहीं सकते थे।

कांग्रेस के अन्तर्गत दिनोंदिन मनोमालिन्य बढ़ता जा रहा था और उधर त्रिपुरी कांग्रेस भी नज़दीक आ गया था।

सुभाष बाबू महान् मानसिक चिन्ता में व्यस्त थे। इस चिन्ता ने उनके जर्जर स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव डाला और वे रोग-शय्या पर पड़ गये।

सुभाष बाबू ने सोचा था कि कांग्रेस अधिवेशन का समय आते-आते उनका स्वास्थ्य ठीक हो जायगा परन्तु बात एकदम आशा के विप-रीत हुई।

वे इतना ज्यादा बीमार पड़ गये कि बोलना तक मुश्किल हो गया। अन्त में उन्होंने बीमारी की ही अवस्था में त्रिपुरी जाने का विचार

किया। डाक्टरों ने उनके इस निश्चय पर असहमति प्रकट की। स्वयं महात्मा गाँधी ने भी उनसे त्रिपुरी न जाने का अनुरोध किया। मगर देश भक्ति को हृदय में धारण किये हुए वीर सुभाष कब मानने वाले थे।

५ मार्च सन् १९३९ को बम्बई मेल से सुभाष बाबू कलकत्ते से चल पड़े।

घर से हवड़ा स्टेशन तक सुभाष बाबू को ऐम्बुलेन्स कार में लाया गया। इसी से उनकी बीमारी की चिन्ताजनक अवस्था प्रकट हो जाती है।

ट्रेन में सुभाष बाबू के लिए रोगियों का एक डब्बा अलग से जोड़ा गया था। उनके साथ डाक्टर तथा घर के अन्य लोग भी थे।

६ मार्च १९३९ को दिन में वे जबलपुर स्टेशन पर पहुँचे। वहाँ पर स्वागताध्यक्ष तथा अन्य नेताओं ने राष्ट्रपति का स्वागत किया।

स्टेशन से सुभाष बाबू पुनः ऐम्बुलेन्स कार पर त्रिपुरी गये। वहाँ पहुँचने पर आपको १०३ डिग्री ज्वर था। शिविर में पहुँचते ही सरदार पटेल आदि नेताओं ने आपकी अभ्यर्थना की और शोकित हृदय से आपकी तबियत का हाल पूछा।

१० मार्च सन् १९३९ ई० के प्रातःकाल ५२ सुसज्जित हाथियों का बड़ा शानदार जलूस निकला, जो ४ मील घूमकर विष्णुदत्त नगर में समाप्त हुआ।

अस्वस्थता के कारण राष्ट्रपति सुभाष बाबू उस जलूस में सम्मिलित नहीं हो सके।

रथ पर उनका बड़ा-सा फोटो रखा हुआ था। प्रत्येक हाथी पर कांग्रेस के पुराने अध्यक्षों का चित्र था।

त्रिपुरी में कांग्रेस का ५२ वाँ अधिवेशन १० मार्च सन् १९३९ को प्रारम्भ हुआ।

राष्ट्रपति के निर्वाचन के कारण जो मतभेद उपस्थित हो गया था, वह यहाँ पर और भी तीव्रतर हो गया।

राष्ट्रपति के रोग शैय्या पर पड़े रहने के कारण वातावरण और भी भयावह प्रतीत होता था। सुभाष बाबू इतने अशक्त हो रहे थे कि स्वयं मुँह से दो-चार शब्द बोल भी नहीं सकते थे।

उनके अभिभाषण को अंग्रेज़ी में श्री शरत्चन्द्र बोस ने पढ़कर सुनाया और हिन्दी में आचार्य नरेन्द्रदेव ने।

सुभाष बाबू ने अपने अभिभाषण में कहा था—"अब हमें संघ योजना की ओर आँखें लगाये चुपचाप बैठे न रहना चाहिये बल्कि अपने स्वराज्य का दावा ब्रिटिश सरकार के सामने उपस्थित करके, यदि निश्चित अवधि के भीतर उससे सन्तोषजनक उत्तर न मिले तो सारे भारत में सत्याग्रह प्रारम्भ कर देना चाहिये...और देशी राज्यों की प्रजा, अपनी स्वतन्त्रता अथवा उत्तरदायी शासन के सम्बन्ध में जो आन्दोलन कर रही है, उसका नेतृत्व अब कांग्रेस कार्यसमिति के हाथों में देना चाहिये..."

११ मार्च सन् १९३९ को सुभाष बाबू की अवस्था अत्यन्त चिन्ता-जनक हो गई। ज्वर १०५ डिग्री हो गया।

सभी नेता तथा कितने ही डाक्टर और सिविलसर्जन सुभाष बाबू के शिविर में आ पहुँचे।

सिविल सर्जन तथा डाक्टर गिल्डर ने सुभाष बाबू की परीक्षा की और उनसे तुरन्त जबलपुर अस्पताल जाने का अनुरोध किया परन्तु यह बात उन्होंने स्वीकार न की।

पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य नेताओं ने सुभाष बाबू को बहुत समझाया—

तो उन्होंने कहा—"मैं यहाँ, जबलपुर के अस्पताल में जाने के लिये नहीं आया हूँ...दूसरी जगह जाने के बजाय, यदि इस पवित्र स्थान पर, अपने पूज्य नेताओं की गोद में मेरी मृत्यु भी हो जाय तो मुझसे बढ़कर भाग्यशाली कौन होगा?"

राष्ट्रपति श्री सुभाषचन्द्र बोस की अस्वस्थता के कारण त्रिपुरी में विघटित कार्यसमिति का पुनर्निर्वाचन न हो सका।

राष्ट्रपति का स्वास्थ्य महीनों तक चिन्ताजनक रहा, इसके बाद धीरे-धीरे सुधरने लगा।

इधर कार्यसमिति का प्रश्न भी अत्यन्त विकट हो चला था। न कार्यसमिति का निर्वाचन होता था और न कांग्रेस का कार्य ही हो पाता था।

इस विषय में राष्ट्रपति तथा महात्मा गाँधी के बीच बराबर पत्र-व्यवहार हो रहा था।

लोग समझने लगे थे कि महात्मा गांधी और सुभाष बाबू में सहयोग होना दुष्कर है। कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र-राय ने, गाँधी जी और सुभाष बाबू से प्रार्थना की थी कि आप दोनों आपसी मतभेद के निवारणार्थ एक बार अवश्य मिलें।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने भी सुभाष बाबू से मिलकर इसके लिये अनुरोध किया था।

फलतः २७ और २८ अप्रैल को कलकत्ते में महात्मा गांधी और सुभाष बाबू का मिलन हुआ।

सुभाष बाबू यह चाहते थे कि कांग्रेस कार्यसमिति के पुनर्सङ्गठन के लिये महात्मा गाँधी ही नाम पेश करें।

परन्तु महात्मा गांधी ने कहा—"मैं जानता हूँ कि हमारे और आप के तथा अन्य कांग्रेसजनों के मध्य सैद्धान्तिक मतभेद है। ऐसी परिस्थिति में मैं यह नहीं चाहता कि अपनी ओर से सदस्यों का नाम प्रस्तावित करके आप पर बलपूर्वक दबाव डालूँ। आप अपनी इच्छानुसार कार्य-समिति का निर्वाचन करने के लिये स्वतन्त्र हैं...."

महात्मा गांधी का यह उत्तर सुनकर सुभाष बाबू को चिंता हुई। कांग्रेस में बढ़ती हुई फूट की मात्रा वे स्पष्ट देख रहे थे और वे नहीं

चाहते थे कि केवल उन्हीं के कारण, इतने दिनों का वह विशाल संघटन धूल में मिल जाय। अतः सुभाष बाबू ने बहुत सोच-विचार के बाद पदत्याग करना ही निश्चय किया।

२९ अप्रेल १९३९ को कलकत्ते में कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई, जिसमें सुभाष बाबू ने पद-त्याग कर दिया। पं० जवाहरलाल नेहरू आदि नेताओं ने उनसे बहुत अनुरोध किया परन्तु सुभाष बाबू अपना त्याग-पत्र वापस लेने को प्रस्तुत न हुए।

घटनाचक्र ने जो मार्ग पकड़ा, उससे सभी देश-प्रेमी दुखी हुए बिना नहीं रह सके। आशा की जाती थी कि सुभाष बाबू और महात्मा गांधी मिलकर इस झगड़े का अंत कर देंगे और कार्य सुचारु रूप से चलने लगेगा परन्तु गांधी सुभाष मिलन से भी यह समस्या सुलझ न सकी, उलटे और भी उलझ गई।

इस विषय में हिन्दी के सुप्रसिद्ध दैनिक 'आज' के सम्पादक ने टिप्पणी लिखकर अपना खेद प्रकट किया था।

माननीय सम्पादक ने लिखा था—"हमारे आदरणीय, पुराने और पूज्य नेताओं को उदारता से काम लेना चाहिये था। गांधीजी राष्ट्र के हृदय में जिस ऊँचे स्थान पर हैं, उनकी मर्यादा की रक्षा इस बात में थी कि उनके दल के कहे जाने वाले लोग उदारहृदय से काम लेते...ऐसा नहीं हुआ, इसी का खेद है। जो हुआ वह न केवल अहितकर हुआ वरन् पुराने नेताओं और गांधीजी के पद के लिये हानिकारक भी हुआ!"

अन्त में कार्यसमिति को सुभाष बाबू का त्यागपत्र स्वीकार करना पड़ा। उसी के बाद नई कार्यसमिति का निर्वाचन हुआ।

अपना नाम लिये जाने पर पंडित जवाहरलाल नेहरू ने नई कार्यसमिति में रहने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि मैं कार्यसमिति से बाहर रह कर ही अधिक कार्य कर सकूँगा।

६ मई सन् १९३९ को कलकत्ते के हाजरा पार्क में एक विशाल सभा हुई। सभापति थे कलकत्ते के मेयर!

सभा में सुभाष बाबू ने कहा—"मैं राष्ट्रपति तभी बना रह सकता था, जब पुरानी कार्य-समिति को बिना किसी परिवर्तन के फिर से नियुक्त करना स्वीकार किया जाता। मगर मुझ पर पाबन्दियाँ लगाई गईं, जो मुझे मंजूर न थीं...और न तो मैं यही चाहता था कि काठ का पुतला बन कर कार्यसमिति के हाथों का खिलौना बनूँ।"

इसके बाद सुभाष बाबू ने उग्र पंथियों की एक संस्था, फारवर्ड ब्लाक नाम से स्थापित करने की घोषणा की।

इस संस्था का उद्देश्य था, शीघ्र से शीघ्र सरकार से पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना। इसके लिये सुभाष बाबू ने एक लाख रुपये इकत्रित करने की अपील की! तुरन्त ही एक चन्दा-संग्रह-कर्त्री कमेटी बनाई गई।

उसके कुछ ही दिनों बाद नेशनल हेरल्ड में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने लिखा था—"सुभाष बाबू की अनेक बातों से मैं सहमत न था किन्तु मुझे यह विश्वास था कि वे त्रिपुरी के निर्णयों को मानते हुए कांग्रेस का कार्य सुचारुरूप से चलाने की भरसक कोशिश कर रहे थे। दोनों पक्षों में समझौता क्यों नहीं हो सकता था यह बात मेरी समझ में न आई। विरोध हुआ, जिसके लिये कोई न्यायसंगत कारण नहीं था। और सुभाष बाबू को पद त्याग करना पड़ा। मुझे इससे बहुत खेद हुआ, क्योंकि सुभाष बाबू के पदत्याग से मतभेद की खाईं और गहरी हो गई। पुरानी कार्यसमिति के सदस्यों से मेरा मन बहुत पहले से नहीं मिलता था किन्तु व्यापक हित की दृष्टि से मैं उसका सदस्य बना हुआ था। कलकत्ते की बैठक के बाद मैंने बाहर रहना ही ठीक

समझा, यद्यपि कार्यसमिति का विरोध या उससे असहयोग करने का मेरा इरादा न था...”

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पंडित जवाहरलाल नेहरू, कांग्रेस के कट्टर हिमायती होते हुए भी, सुभाष बाबू के कार्य-क्रम को पसन्द करते थे।

इसके बाद पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अग्रगामी दल (फ़ारवर्ड ब्लाक) के सम्बन्ध में लिखा था—“सुभाष बाबू ने जो अग्रगामी दल बनाया है, वह हाल की घटनाओं का परिणाम है; किन्तु इतना होते हुए भी वह वांछनीय नहीं कहा जा सकता। अभी तक जो कुछ मालूम हो सका है, यह दल उन विरोधियों को लेकर बनाया जा रहा है, जिनमें एकता स्थापित करनेवाली केवल एक ही बात है—अर्थात कांग्रेस का संचालन करने वाले व्यक्तियों का विरोध करना ! इसका द्वार सबके लिये खुला है और इसमें कोई रुकावट नहीं है, जिससे अवांछनीय लोगों का इसमें सम्मिलित होने से रोकना सम्भव हो सके। कांग्रेस में जो ऐसे लोग घुस आये हैं, उनका नियन्त्रण करना तो कांग्रेस की असीम शक्ति के लिये सम्भव है परन्तु अग्रगामी दल में, निश्चित सिद्धान्तों और विचारधारा के अभाव से, उन्हें रोक सकना असम्भव हो जायगा। मुमकिन है कि इस दल में फासिस्ट और साम्प्रदायिक प्रवृत्ति के लोग भी सम्मिलित हो जाँय और कांग्रेस को हानि पहुँचाते हुए, अपने उद्देश्यों की पूर्ति का प्रयत्न करें। यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाय तो सुभाष बाबू उसका सामना किस तरह करेंगे ?”

इससे प्रकट है कि यद्यपि पंडित जवाहरलाल नेहरू अग्रगामी दल के विरोधी नहीं थे, फिर भी सुभाष बाबू की कार्य-प्रणाली उन्हें विशेष लाभप्रद नहीं प्रतीत होती थी—उन्हें यह आशंका थी कि आगे चलकर कहीं इस दल से कांग्रेस को कोई हानि न पहुँचे ?

२७ मई सन् १९३९ तक सुभाष बाबू की तबियत विशेष सुधर न

सकी। डाक्टरों ने उनसे मिलने की मनाही कर दी थी परन्तु कर्त्तव्य-शील सुभाष बाबू को पलंग पर पड़े रहना स्वीकार न था। वे अग्रगामी दल के प्रचारार्थ समग्र भारत का दौरा करते रहे।

१ जुलाई की कांग्रेस कमेटी की बैठक में, सत्याग्रह पर रोक लगाने तथा मंत्रिमंडल और प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों के सम्बन्ध में दो प्रस्ताव पास हुए थे।

सुभाष बाबू ने एक लम्बा वक्तव्य निकालकर समग्र जनता से अपील की कि वे उन प्रस्तावों के विरुद्ध प्रदर्शन करें। इस विरोध-प्रदर्शन के लिये ९ जुलाई सन् १९३९ का दिन निश्चित किया गया।

पहले तो मानवेन्द्रनाथ राय सुभाष बाबू के पक्ष में थे। परन्तु उनकी यह विरोध-प्रदर्शन की नीति उन्हें पसन्द न आई। श्री राय ने पंडित जवाहरलाल नेहरू के पास एक तार भेजकर उनसे प्रार्थना की कि वे सुभाष बाबू को विरोध-प्रदर्शन न करने के लिये समझावें। राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने कहा कि कांग्रेस कमेटी के निर्णय के विरुद्ध कोई भी प्रदर्शन न्यायसंगत नहीं!

राजेन्द्र बाबू के इस कथन पर सुभाष बाबू ने एक तगड़ा वक्तव्य दिया।

उन्होंने कहा—"कांग्रेसजनों का बहुमत अपनी ओर करने के लिये जो हमारा वैधानिक और लोकतन्त्रात्मक अधिकार है, वह राजेन्द्र बाबू अपने वक्तव्य में हमसे छीन रहे हैं। सार्वजनिक प्रचार ही एक ऐसा मार्ग है, जिससे बहुमत अपनी ओर किया जा सकता है...सार्वजनिक विरोध-सभायें करना, प्रचार का सबसे न्यायपूर्ण ढंग है। क्या राजेन्द्र बाबू यह चाहते हैं कि कांग्रेस या भारतीय कांग्रेस कमेटी में एक बार जो प्रस्ताव पास हो जाय, उसको बदलने का कोई प्रयत्न न करना चाहिये? अगर हम राजेन्द्र बाबू की यह सलाह मान लें तो कांग्रेस के प्रस्तावों के विरुद्ध हमारा मुँह हमेशा के लिये बन्द हो जायगा...हम राजेन्द्र बाब

से प्रार्थना करते हैं कि अनुशासन के नाम पर कांग्रेस के अन्दर लोकतंत्र को धक्का न पहुँचावें १९१९ के बाद जितने सत्याग्रह संग्राम हुए हैं, उनकी वे जाँच करें और हमें बताने की कृपा करें कि उनमें कितनी बार प्रांतीय कांग्रेस कमेटी की अनुमति पहले प्राप्त कर ली गई थी। दूसरे प्रस्ताव में, प्रांतीय मंत्रिमंडलों पर नज़र रखने का, प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों का अधिकार छीना गया है। इन प्रस्तावों से जो भयानक परिस्थिति उत्पन्न हो गई है, उसके विरोध में कांग्रेसजनों का सहयोग प्राप्त करना हमारा परम कर्त्तव्य है, हम आशा करते हैं कि राजेन्द्र बाबू हमारा दृष्टिकोण मान लेंगे और देश भर के कांग्रेसजन ९ जुलाई का दिन सफलता पूर्वक मनाने में हमारा साथ देंगे...."

यह बात स्पष्ट है कि सुभाष बाबू को कांग्रेस कमेटी का वह प्रस्ताव स्वीकार नहीं था, जिसमें कहा गया था कि बिना प्रांतीय कांग्रेस कमेटी की अनुमति के, कोई भी व्यक्ति सत्याग्रह संग्राम में भाग नहीं ले सकता।

आचार्य नरेन्द्रदेव ने अपने एक वक्तव्य में कहा था—"कांग्रेस कमेटियों और पदाधिकारियों को इस विरोध प्रदर्शन में भाग नहीं लेना चाहिये। पर कांग्रेसजन, व्यक्तिगतरूप से, कांग्रेस की नीति के विरुद्ध मत प्रदर्शन कर सकते हैं।"

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने इस विरोध प्रदर्शन को उच्छृङ्खलता कहते हुए अपना वक्तव्य दिया—"कांग्रेस का निर्माण हमने अतुल्य प्रेम, परिश्रम और त्याग से किया है। उसके संगठन के विरुद्ध कोई भी प्रदर्शन, कांग्रेस के लिये खुली चुनौती है। यदि हमने यही मार्ग अपनाया तो हमारी संस्था नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी, साम्राज्यवाद विरोधी हमारा युद्ध पीछे पड़ जायगा और जन-वर्ग की वृहत् लड़ाई, पार्टीबन्दी तथा दलगत संघर्षों में परिवर्तित हो जायगी। इस प्रकार हम उस संकट का मुकाबला करने तथा राष्ट्रीय माँग के कांग्रेस के निश्चय को, कार्यान्वित करने के लिये अपनी तैयारी कर रहे हैं..."

सुभाष बाबू के इस कार्य के विरुद्ध, देश के सभी नेता थे—परन्तु सुभाष बाबू हार माननेवाले प्राणी न थे। उन्होंने बम्बई में श्री जिना और श्री अम्बेडकर से भी भेंट की। बम्बई में सुभाष बाबू ने अग्रगामी दल के दफ्तर का उद्घाटन किया, उस उसय उन्हें १० हजार रुपये की थैली भेंट की गयी।

बम्बई से सुभाष बाबू जबलपुर आये। वहाँ उन्होंने महाकोशल युवक सम्मेलन के सभापति का पद ग्रहण किया।

यद्यपि देश के बड़े-बड़े नेता अपनी पूरी शक्ति से सुभाष बाबू का विरोध कर रहे थे परंतु सुभाष बाबू की वाणी में ऐसी आकर्षण शक्ति थी कि जहाँ कहीं वे गये, वहाँ के लोगों पर जादू का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा।

अग्रगामी दल की कार्यकारिणी समिति का भी संगठन शीघ्र हो गया। सुभाष बाबू अध्यक्ष और सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर उपाध्यक्ष बनाये गये। प्रधान मंत्री लाला शंकरलाल हुए और सहायक मंत्री हुए श्री विश्वम्भरदयालु त्रिपाठी तथा श्री के० एफ० नरीमैन। श्री नाथालाल डी० पारिख कोषाध्यक्ष बनाये गये।

सदस्य निर्वाचित हुए—सर्वश्री अकबरशाह, वकील नौशेरा, डाक्टर सत्यपाल एम० एल० ए०, रामकृष्ण, आर० एस० रुइकर, एन० दत्त मजूमदार, सेठ दामोदर स्वरूप, इंदुलाल याज्ञिक और अब्दुल रहमान एम० एल० ए०।

भारतीय सिविल सर्विस से त्यागपत्र दिये हुए, श्री एच० वी० कामथ प्रचार-मंत्री नियुक्त हुए।

महात्मा गांधी ने समग्र भारतीय जनता को आदेश देते हुए कहा—"जिन सभाओं में विरोध प्रदर्शन हों, वहाँ राष्ट्रीय झण्डा न फहराया जाय और न तो राष्ट्रीय गीत 'वन्देमातरम्' ही गाया जाय...."

अंत में ९ जुलाई का दिन आ ही गया। कांग्रेस के बड़े-बड़े कार्यकर्त्ता

उत्सुकतापूर्वक इस बात की प्रतीक्षा कर रहे थे कि देखें, सुभाष बाबू का विरोध प्रदर्शन कैसे सफलीभूत होता है; क्योंकि उनका विश्वास था कि देश की सारी जनता कांग्रेस के साथ है।

परंतु उनका यह विश्वास ९ जुलाई को निराधार प्रमाणित हो गया कि भारतीय जनता अब केवल अहिंसा की माला लिये चुपचाप खड़ी नहीं रहना चाहती—वह क्रान्ति चाहती है—क्रान्ति! और इसके लिये उसने सुभाष बाबू जैसा विद्रोही नेता चुना है।

उस दिन देश भर में विरोध-प्रदर्शिनी सभायें हुईं। सुभाष बाबू की सफलता ने देश भर में जोश की लहर लहरा दी। कांग्रेस की ओर से यह घोषणा की गई कि जिन कांग्रेसजनों ने प्रदर्शन में भाग लिया था, उनके विरुद्ध अनुशासन भंग की कार्रवाई की जायगी।

इस पर सुभाष बाबू ने कहा—"मैं अनुशासन की कार्रवाई से डरता नहीं। अग्रगामी दल, फिर कांग्रेस को क्रान्ति के मार्ग पर ले आयेगा..."

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा—"जिन पदाधिकारियों को कांग्रेस के प्रस्तावों का विरोध करना था, उन्हें पहले अपने पदों से त्यागपत्र दे देना चाहिये था...फिर भी ९ जुलाई को जिन्होंने विरोध-प्रदर्शन में सहयोग दिया, उनको अनुशासन भंग के लिये दण्ड देना, मेरे विचार से ठीक नहीं।"

पंडित जवाहरलाल नेहरू के वक्तव्य से यह प्रकट होता है कि वे सुभाष बाबू, नरीमैन आदि नेताओं के विरुद्ध अनुशासन-भंग की कार्रवाई करने के विपक्ष में थे।

११ जुलाई सन् १९३९ ई० के दिन वर्धा में अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक हुई। देश के बड़े-बड़े नेता तथा सुभाष बाबू आदि भी उपस्थित थे।

सुभाष बाबू के विरुद्ध अनुशासन-भंग की कार्रवाई की गई और फलतः सुभाष बाबू को अगस्त १९३९ ई० से तीन वर्ष के लिये कांग्रेस

से निष्कासन का दंड दिया गया। इन तीन वर्षों के अंदर वे किसी भी कार्यसमिति के सदस्य नहीं हो सकते थे।

कार्यसमिति का निर्णय सुनकर सुभाष बाबू ने केवल इतना ही कहा—"बस, इतनी ही सज़ा!"

सुभाष बाबू के निष्कासन-दण्ड पर पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा—"मैं अधिक कुछ कहना नहीं चाहता पर मुझे बहुत ही खेद है...."

सुभाष बाबू के बड़े भाई श्रीशरद्चन्द्र बोस ने व्यंगपूर्ण स्वर में कहा—"मैं कार्यसमिति को उसकी राजनीतिक समझदारी के लिये बधाई देता हूँ!"

भूतपूर्व मंत्री श्री नौशेर अली ने कहा—"कार्यसमिति इस हद तक जायगी, ऐसा बंगालवालों का अनुमान न था। यह अहिंसा नहीं है, असहिष्णुता है..."

श्री सुरेशचन्द्र बनर्जी ने कहा—"इससे सुभाष बाबू को कुछ भी हानि न होगी...."

"मुझे सुभाष बाबू के लिए खेद है परन्तु उन्होंने स्वयं अपने ऊपर संकट का आवाहन किया"—श्री रफ़ी अहमद क़िदवई ने कहा।

'आज' के विद्वान सम्पादक ने लिखा—"कार्यसमिति ने जो किया है, वह उचित ही किया है। पर हम यह अवश्य कहेंगे कि दण्ड अत्यन्त कठोर है...इतना कठोर कि उसमें प्रतिहिंसा की गंध आती है..."

अभिप्राय यह है कि उस समय कांग्रेस के सभी नेताओं ने दबी ज़बान से कांग्रेस कार्यसमिति के निर्णय पर असन्तोष प्रकट किया था।

श्री शिवप्रसाद गुप्त ने कहा—"कार्यसमिति अपने अदूरदर्शितापूर्ण कार्यों से, अपनी और कांग्रेस की हत्या कर रही है। वह समय निकट है, जब अपनी ज़िद और अपने अभिमान के कारण यह भी नष्ट होगी और साथ ही कांग्रेस को भी ले डूबेगी...'

१२ अगस्त सन् १९३९ को सुभाष बाबू ने एक वक्तव्य दिया—

"मैंने देश को वैध तरीकों और सुधारवाद की ओर बराबर न बढ़ते जाने की चेतावनी दी थी—कांग्रेस की क्रान्तिकारी मनोवृत्ति को नष्ट कर देने का उपक्रम करनेवाले प्रस्तावों का विरोध किया था तथा वाम पन्थियों के संगठन का प्रयत्न किया था और आने वाले संघर्ष के लिये तैयार रहने को देश से अपील की थी—बस, इसी अपराध के कारण मुझे यह दण्ड दिया गया...मुझे जो आज इस तरह दण्ड दिया गया है, उसकी मुझे चिन्ता नहीं है। मैं पहले से भी अधिक घनिष्ठता के साथ कांग्रेस की सेवा करूँगा। राष्ट्र के एक तुच्छ सेवक के नाते मैं अब भी कांग्रेस और देश का कार्य करता रहूँगा..."

२९ अगस्त १९३९ को सुभाष बाबू पटना आये। उनका समारोह पूर्वक स्वागत हुआ।

परन्तु कुछ कुत्सित मनोवृत्तिवाले, जो सुभाष बाबू को कांग्रेस का विरोधी समझते थे, अपनी चाल से बाज न आये। उन्होंने सुभाष बाबू को काले झंडे दिखाये—सभा पर ईंट, पत्थर तथा जूतों की वर्षा की।

सुभाष बाबू ने स्थिर दृष्टि से अपना वह अपमान देखा, जिसके लिये कुछ मूर्ख उत्तरदायी थे। सभा में इतनी खलबली मची कि सुभाष बाबू को सभा का कार्य स्थगित कर देना पड़ा।

इसके बाद सुभाष बाबू ने ज़िले भर का दौरा किया।

स्थान-स्थान पर जनता ने दिल खोलकर सुभाष बाबू का स्वागत किया और अभिनन्दन-पत्र समर्पित किये गये।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 'अग्रगामी-दल' के विषय में जो विचार प्रकट किये थे, उस पर बम्बई में बोलते हुए सुभाष बाबू ने कहा

था—"पंडित जवाहरलाल ने फार्वर्ड ब्लाक के सम्बन्ध में कुछ बातें कहीं हैं। यद्यपि अग्रगामी दल एक प्रगतिशील संस्था है और पिछले कई महीनों के अन्दर उसने काफ़ी उन्नति कर ली है फिर भी दुर्भाग्य से वह अभी तक नेहरूजी की सहानुभूति न पा सकी। मैं नहीं समझता कि अच्छे और बुरे से पंडित जवाहरलाल नेहरू का अभिप्राय क्या है और न मैं यही समझ पा रहा हूँ कि उन्होंने अग्रगामी दल को बुरा क्यों बताने की कृपा की है? इस दल के सम्बन्ध में और चाहे जो कुछ कहा जा सके, पर इतना तो स्वीकार करना ही होगा कि उसकी नीति और कार्यक्रम बिल्कुल निश्चित है। वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के सम्बन्ध में उसकी स्थिति एकदम स्पष्ट और असन्दिग्ध है। चाहे जो हो—इसमें तो सन्देह नहीं कि अग्रगामी दल में उस अन्तर्राष्ट्रीयता से कम ही बुराई है, जो हवा में किले बनाती है और जो हमें किसी भी लक्ष्य तक नहीं पहुँचाती..."

यह स्पष्ट था कि कांग्रेस, ब्रिटिश सरकार के प्रति एकाएक आन्दोलन का सृजन नहीं करना चाहती थी परन्तु अग्रगामी-दल तुरन्त संग्राम छेड़ देने के पक्ष में था।

उन दिनों द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो चुका था और हिटलर के नाम से समग्र योरोप काँप रहा था।

अग्रगामी दल वालों की राय में यह समय अपना संग्राम छेड़ने के लिये अत्यधिक उपयुक्त था। वे जानते थे कि हिटलर के आतंक के कारण ब्रिटिश सरकार भयभीत हो उठी है और यदि इस समय हमने स्वातंत्र्य आन्दोलन का आरोपण किया तो सरकार हमारे वेग को कदापि सम्हाल न सकेगी।

परन्तु कांग्रेस कोई भी कदम उठाने के पहले, तर्क द्वारा उसकी न्यायप्रियता समझने को बाध्य थी।

३० सितम्बर सन् १९३९ को सुभाष बाबू प्रयाग आये।

लगभग २ घण्टे तक उन्होंने पण्डित जवाहरलाल नेहरू से बातचीत की। प्रयाग में सुभाष बाबू का शानदार स्वागत हुआ। कई स्थान पर सभायें हुईं, जहाँ पर सुभाष बाबू ने अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर प्रकाश डालते हुए अपना दृष्टिकोण जनता के समक्ष रखा।

सुभाष बाबू ने कहा—"हमें ब्रिटिश सरकार की वर्तमान स्थिति से अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहिये। यदि हम उचित मार्ग पर अग्रसर हों तो वह दिन दूर नहीं जब कि हम अपने लिये पूर्ण स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे। इस विकट परिस्थिति में हमारे देश के युवकों का कर्त्तव्य यह है कि वे अपने पावन पथ से विचलित न हों और न तो देश को ही विचलित होने दें। हममें से कुछ लोग, जिन्हें स्थिति की पूर्ण जानकारी नहीं है, यह कहेंगे कि ब्रिटिश सरकार से थोड़ा-बहुत जो कुछ भी मिले, लेकर संतोष कर लें—परन्तु मेरा विचार है कि ऐसे समय हमें अपनी बुद्धि द्वारा एक ऐसा मार्ग निर्धारित करना चाहिये कि हम आंशिक स्वराज्य नहीं, पूर्ण स्वराज्य प्राप्त कर सकें। हम स्पष्ट शब्दों में यह व्यक्त कर देना चाहते हैं कि अब वर्तमान सरकार से दया की भिक्षा स्वरूप स्वराज्य नहीं माँगना चाहेंगे—हम अपने संगठन, क्रान्ति तथा देश भक्ति के बल पर स्वतन्त्रता प्राप्त करेंगे। अब वह दिन दूर नहीं है, जब कि घबड़ाई हुई गोरी सरकार स्वयं हमारे पैरों पड़कर हमसे शान्ति की भिक्षा माँगेगी और पुरस्कारस्वरूप हमें स्वराज्य प्राप्त करेगी..."

सुभाष बाबू देश भर में घूम-घूमकर क्रान्ति का जो सृजन कर रहे थे, उससे सरकार अत्यन्त भयभीत थी।

एक तो हिटलर का भयानक स्वप्न उसे यों ही सोने नहीं देता था, दूसरे सुभाष बाबू के जोशीले भाषणों का प्रभाव भारतीय जनता पर क्या पड़ेगा, यह सोचकर वह और भी चिन्तित थी।

इसके बाद जोरों से अफ़वाह उड़ी कि सुभाष बाबू को गिरफ्तार करने के लिये ब्रिटिश सरकार ने आदेश जारी किया है।

इस अफवाह का कारण था, अग्रगामी दल का अपना कार्य-क्रम निर्धारित करना।

अग्रगामी दल वालों ने निश्चय कर लिया था कि यदि कांग्रेस संग्राम शुरू करने में देर करे तो जनता को सूचित करके अग्रगामी दल ही संग्राम छेड़ देगा।

स्वयं सुभाष बाबू ने स्वतंत्रता-दिवस के दिन होने वाली सभाओं के लिये आदेश दिया था कि उनमें युद्ध विरोधी-भाषण दिये जाँय और ये सभायें कांग्रेस की होने वाली सभाओं से अलग हों।

१९ जनवरी सन् १९४० को सुभाष बाबू काशी आये और सार्वजनिक सभा में एक जोशीला भाषण दिया।

महात्मा गांधी ने २ फरवरी १९४० के 'हरिजन' में सुभाष बाबू के सम्बन्ध में लिखा था—"सुभाष बाबू आगे बढ़ने के लिये उतावले हो रहे हैं, इसी से वे यह भूल जाते हैं कि मेरे जैसे आदमी के हृदय में भी देश-प्रेम की वैसी ही प्रबल भावना रह सकती है जैसे कि उनके हृदय में है—भले ही हम सुधारवादी और नर्म वृत्ति के हों....मैं सुभाष बाबू से कह भी चुका हूँ कि वे युवक हैं और उनमें युवकों जैसा जोश होना ही चाहिये। उन्हें मैं या कोई और पकड़े नहीं रहना चाहता। उनकी परिणामदर्शी बुद्धि ही उन्हें रोक रही है और इस माने में वे भी मेरे जैसे सुधारवादी और नम्र विचार वाले कहे जा सकते हैं...जो लोग इस तरह के प्रश्न मुझसे पूछते हैं, उन्हें यह विश्वास रखना चाहिये कि हम दोनों में यह मतभेद रहते हुए भी, जब सुभाष बाबू अहिंसात्मक संग्राम का नेतृत्व करने लगेंगे तो वे मुझे अपना अनुसरण करते पायेंगे—उसी तरह, जिस तरह मैं उन्हें अपने पथ का अनुगमन करते देखूँगा, यदि मैं उनसे पहले सत्याग्रह शुरू कर दूँ—फिर भी मैं तो अभी यही आशा कर रहा हूँ कि अब और कोई संग्राम शुरू किये बिना ही हम लोग अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकेंगे..."

युद्ध के कारण चीज़ों का दाम बढ़ने और बंगाल सरकार की दमन-नीति का विरोध करने के लिये सुभाष बाबू ने २४ फरवरी सन् १९४० को समग्र बंगाल में 'दमन विरोधी दिवस' मनाने की घोषणा की।

सुभाष बाबू ने आवेश के साथ कहा कि यदि सरकार इसमें गतिरोध उत्पन्न करेगी तो बंगाल में तुरन्त आन्दोलन आरम्भ कर दिया जायगा और वह आगे चलकर राष्ट्रीय-संघर्ष का रूप धारण कर लेगा।

सुभाष बाबू ने अपने दूसरे वक्तव्य में कहा कि भारतीय कांग्रेस कार्यसमिति के मतभेद होने का अर्थ यह नहीं कि बंगाल के कांग्रेसी, गांधीजी या अन्य कांग्रेसी नेताओं का अपमान करें।

यह वक्तव्य उस समय दिया गया था, जब कि महात्मा गांधी कलकत्ता पधारे थे और कुछ उच्छृङ्खल व्यक्तियों ने उनकी सभा में हुल्लड़-बाज़ी मचाने का प्रयत्न किया था।

उस साल कांग्रेस का आगामी अधिवेशन रामगढ़ में होना निश्चित हुआ था। सभापति के पद के लिये दो नाम आये थे—मौलाना अबुल कलाम आज़ाद और मानवेन्द्रनाथ राय।

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद को गांधी का समर्थन प्राप्त था, अतः वे ही राष्ट्रपति निर्वाचित हुए।

मौलाना साहब को १८५४ वोट मिले थे और मानवेन्द्रनाथ राय को केवल १८३।

६, ७ और ८ मार्च को मिर्ज़ापुर के लालगंज नामक स्थान पर चतुर्थ ज़िला राजनीतिक सम्मेलन हुआ। सभापति थे श्री रफ़ीअहमद किदवई। उक्त अवसर पर सुभाष बाबू भी पधारे थे। उनका जो वृहत् स्वागत हुआ, वह आज भी ताजा है।

सुभाष बाबू के अपूर्व स्वागत का श्रेय स्वर्गीय यूसुफ़ इमाम बैरिस्टर को था जो मिर्ज़ापुर के अग्रणी नेता थे।

सभा में सुभाष बाबू ने भावपूर्ण भाषण दिया।

इसके बाद जब सुभाष बाबू अपने शिविर में आये तो एक कांग्रेसी कार्यकर्त्ता ने उन्हें सूचित किया कि एक हस्त-रेखा विशारद यहाँ आये हुए हैं और उनका हाथ देखना चाहते हैं।

सुभाष बाबू हँस पड़े। बोले—"मुझे कोई एतराज नहीं, आप उन्हें लिवा लाइये!"

हस्त-रेखा विशारद महोदय उनके सामने लाये गये। उन्होंने अपनी खुर्दबीन निकालकर उसकी सहायता से सुभाष बाबू का हाथ देखा।

गम्भीर स्वर में वे बोले—"आप शीघ्र ही जेल जाने वाले हैं, परन्तु अधिक दिनों तक जेल में रहेंगे नहीं। जेल से निकलने के पश्चात् आप भारत की स्वतन्त्रता के लिये एक आश्चर्यजनक कार्य करेंगे और उसी सिलसिले में आप राजा भी बनेंगे...."

सुभाष बाबू तथा अन्य लोग हँसने लगे तो उन हस्त-रेखा विशारद महोदय ने कहा—"आप चाहें जितना हँस लें परन्तु यदि यह प्राचीन विद्या सत्य है, जिसका कि मुझे पूर्ण विश्वास है तो आप लोग देख लीजियेगा कि यह बात सत्य होकर रहेगी..."

"आपकी यह भविष्य-वाणी कब तब सत्य होगी?"—किसी ने पूछा।

"तीन साल के अन्दर!—" विशारद महोदय ने कहा।

कौन जानता था कि मनुष्य के नश्वर मुख से निकली हुई वह वाणी, देव वाणी का रूप धारण कर लेगी और सुभाष बाबू के जीवन में सत्य घटनायें उपस्थित करेगी?

कांग्रेस का रामगढ़ अधिवेशन १९, २०, २१ मार्च १९४० को होने वाला था। कांग्रेस की ओर से नगर का निर्माण द्रुतगति से हो रहा था।

सुभाष बाबू ने तथा अग्रगामी दल के अन्य नेताओं ने, कांग्रेस

अधिवेशन के साथ-साथ, अपनी ओर से "समझौता विरोधी कान्फ्रेन्स" करने का निश्चय किया। फल यह हुआ कि कांग्रेस हाल की बगल में ही अग्रगामी दल का भी पंडाल बन गया।

कांग्रेसी नेताओं ने आश्चर्य के साथ सुभाष बाबू की ओर देखा। उनकी समझ में ही नहीं आ रहा था कि यह विद्रोही युवक क्या करना चाहता है?

उधर मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के सभापतित्व में कांग्रेस अधिवेशन प्रारम्भ हुआ और इधर श्री सुभाषचन्द्र बोस की अध्यक्षता में "समझौता विरोधी कान्फ्रेन्स।"

दोनों ओर खूब भीड़ थी। बड़ी चम-चख मची। कांग्रेस के इतिहास में यह एक नवीन घटना थी।

विश्वमित्र के सम्पादक ने इस विषय में जो अपने विचार व्यक्त किये थे, वह यों है—"रामगढ़ में श्री सुभाषचन्द्र बोस की समझौता विरोधी कान्फ्रेंस का भी तमाशा आखिर हो ही गया। श्री बोस अग्रगामी दल के नेता तो हैं ही, कान्फ्रेंस का कार्य प्रारम्भ करने में भी उन्होंने सचमुच अग्रगामी होने का परिचय दिया। कांग्रेस का अधिवेशन आरम्भ होने से पहले ही उन्होंने अपनी कान्फ्रेंस आरम्भ कर दी। कान्फ्रेंस में प्रवेश के लिये टिकट भी नहीं रखा गया था। परिणाम यह हुआ कि आरम्भ में कान्फ्रेंस में कई हज़ार आदमी जमा हो गये परन्तु जब कांग्रेस का समय नज़दीक आने लगा और लोगों ने देखा कि श्री बोस वही बेसुरा राग अलाप रहे हैं, तब वे वहाँ से उठकर जाने लगे और कुछ ही समय में कान्फ्रेंस का तमाशा उजड़ गया ...."

यह सत्य है कि उस समय देश के समग्र नेता तथा कांग्रेसी पत्र सुभाष बाबू के विरुद्ध थे उन्होंने व्यंगपूर्ण शब्दों द्वारा सुभाष बाबू के कार्यों पर असन्तोष भी प्रकट किया था।

इसके कुछ ही दिनों बाद, भाषणों द्वारा आतंक की सृष्टि करने,

जनता को आन्दोलन के लिये उत्तेजित करने तथा बंग-प्रान्तीय सत्याग्रह संग्राम के आधार होने के कारण सुभाष बाबू गिरफ्तार कर लिये गये।

उन्हें कुछ दिनों तक जेल में रखा गया, तत्पश्चात् वे अपने मकान पर ही नजरबन्द कर दिये गये। इनके मकान के चारो ओर फ़ौजी पहरा बैठा दिया गया।

कलकत्ते की बीडन स्ट्रीट में खड़ा हुआ एक पक्का दो मंजिला मकान और उसके दरवाज़े के सामने खड़ा हुआ एक कृशकाय युवक !

ऐसा प्रतीत होता था कि वह ग़रीब युवक भिक्षा की लालसा लेकर उस मकान के द्वार पर खड़ा था। द्वार बन्द था—

परन्तु उस युवक को पुकारने का साहस नहीं हो रहा था। वह कुछ सोचता हुआ-सा खड़ा था। दीनता उसके अंग-अंग से फूटी पड़ रही थी। कपड़े एकदम फटे-पुराने थे और उसका बदन जैसे केवल हड्डियों का ढाँचा भर था।

युवक ने एक बार इधर-उधर दृष्टि डाली और तब आगे बढ़कर साहसपूर्वक मकान का दरवाजा खट-खटाया।

एक-दो मिनट तक निस्तब्धता रही और तब मकान का दरवाजा खुला।

पचास-साठ साल की एक बुढ़िया थी—आकृति बड़ी क्रूरतापूर्ण थी उसकी।

बुढ़िया ने एक बार सर से पैर तक उस भिखारी युवक को देखा और तब क्रोधपूर्ण स्वर में पूछा—"क्या चाहता है रे तू ?"

"श्रीमती नीरा मल्लिक घर में हैं ?"—युवक ने पूछा।

"हैं तो !"—निर्मय स्वर में बुढ़िया बोली—"क्या करेगा तू !... क्या काम है ?..."

"उनसे जाकर कह दीजिये कि बसन्त आया है—" युवक ने नम्र स्वर में बुढ़िया से प्रार्थना की।

परन्तु बुढ़िया तो भाप की तरह उबल पड़ी।

बोली—"कौन बसन्त है तू ?....जा-जा ! ऐसे बसन्त-फसन्त तो आते ही रहते हैं। देवीजी नहीं मिलेंगी...भाग जा !..."

युवक जानता था कि यह बुढ़िया कोई नौकरानी है फिर भी उसका व्यवहार अत्यन्त अभद्रतापूर्ण था।

युवक का मुँह उतर गया। वह निराश होकर जाने के लिये घूमा।

"कौन है जी ?...कौन मुझे पूछ रहा था ?—" बीस साल की एक युवती ने अन्दर से आकर पूछा।

युवती के शरीर पर सौंदर्य लहरा रहा था और उस सौंदर्य को मूल्यवान वस्त्रों ने द्विगुणित कर रखा था।

"कोई बसन्त आया था तुमसे मिलने मालकिन !"—बुढ़िया ने कहा—"वह जा रहा है...बुला लूँ !...."

युवती ने उधर देखा, जिधर वह भिखारी युवक धीरे-धीरे चला जा रहा था।

"बसन्त भैया !" युवती ने पुकारा।

जाते-जाते चौंककर पलट पड़ा वह युवक।

और लौट कर युवती के सामने आ खड़ा हुआ।

"नीरा !...." शिथिल स्वर निकला उसके मुख से।

"बसन्त भैया !"—युवती ने कहा।

वह आश्चर्य के साथ उस युवक की ओर देख रही थी।

उफ ! उसका भैया आज ऐसी दशा को पहुँच गया है ?

नीरा की आँखों में आँसू उमड़ आये—बसन्त कुमार की दुर्दशा देखकर।

एक दिन था, जब कि वे दोनों भाई-बहन अपनी ग़रीबी में ही खुश थे और मजदूरी कर-करके अपना पेट चला रहे थे।

बसन्त किसी सेठ के यहाँ नौकर था और नीरा भी एक खुफ़िया पुलिस के इन्सपेक्टर के यहाँ नौकरी करती थी।

इन्सपेक्टर का नाम था जनरंजन राय।

वे अब तक अविवाहित थे।

नीरा का लावण्य देखा तो लट्टू हो गये।

नीरा अबोध थी। उसने जनरंजन को आत्म-समर्पण कर दिया।

कुछ दिनों तक यों प्रेम-व्यापार चला और अन्त में जनरंजन ने नीरा से सामाजिक रीति के अनुसार विवाह कर लिया।

जिस दिन नीरा दुलहिन बनकर जनरंजन के घर आई, उसी दिन उसने सुना कि उसका भाई सेठ के घर से रुपये चुराने के अपराध में पकड़ लिया गया है।

तब से उसे बसन्त का कोई पता न लगा।

आज वह कई सालों पर बसन्त कुमार की सूरत देख रही थी सो भी ऐसी करुणाजनक अवस्था में कि उसे रोना आ रहा था।

नीरा को किसी बात की कमी न थी परन्तु आज उसे अपने ऐश्वर्य पर न जाने क्यों घृणा हो आई।

जब नीरा झपटकर बसन्त कुमार के गले जा लगी तो बुढ़िया नौकरानी नाक सिकोड़ती हुई दूसरी ओर चली गई।

दोनों भाई-बहन, एक-दूसरे के गले लग कर, असहाय प्राणी की तरह रोते रहे।

तत्पश्चात् नीरा, बसन्त को लेकर अपने कमरे में आई।

उसके कमरे की सजावट देखकर बसंत की ग्लानि कुछ कम हुई।

"मुझे खुशी केवल इस बात की है—" बसन्त बोला—"कि तू सुखी है नीरा !"

"और तुमने अपनी यह क्या दशा बना रखी है बसन्त भैया !—" पूछा नीरा ने।

"ईश्वर यही चाहता था नीरा !..."

"तुम इतने दिनों तक कहाँ थे?...इस समय कहाँ से आ रहे हो?—"

"सुबह जेल से छूटा हूँ—" बसन्त बोला—"तुम्हारे पास आने की इच्छा न थी मगर बहन का प्रेम खींच ही लाया !"

"तुम जेल से आ रहे हो इस वक्त?—" नीरा आश्चर्यपूर्ण स्वर में बोली—"क्या मेरी शादी के बाद से अब तक तुम उसी चोरी की सज़ा भुगत रहे थे?—"

"नहीं नीरा, नहीं !—" विषादपूर्ण हँसी हँसकर बोला बसन्त—"तब से मैं आठ बार जेल गया-आया हूँ।"

"आठ बार !—" चीख़ पड़ी नीरा—"हे ईश्वर ! यह मैं क्या सुन रही हूँ?"

"नीरा ! जेल जीवन कोई बुरा नहीं—" बसन्त ने कहा—"अब तो मैं उसका अभ्यस्त हो गया हूँ।"

नीरा के मुख पर प्रेम का स्थान घृणा ने ले लिया था।

उफ !—उसका भाई चोर है, गिरहकट है।

"चुप रहो बसन्त भाई !—" गरजकर बोली नीरा—"तुम्हें ऐसा कहते हुए लज्जा नहीं आती?....तुम पुरुष होकर भी कापुरुषों का काम करते हो?....इतने नीच तो तुम पहले नहीं थे..."

बसन्त, नीरा के क्रोध से कुछ भी प्रभावित न हुआ।

चुपचाप सुनता रहा। अन्त में बोला—"पहले मैं ऐसा नहीं था

मीरा !...ठीक कहती हो तुम !....मगर तुम्हीं बताओ, हमारी इस दुर्दशा का कारण कौन है ?"

"स्वयं तुम हो और कौन ?—"

"मैं नहीं !...मेरी दुर्दशा का कारण वे अमीर हैं जो गरीबों के गले पर छूरियाँ चलाते हैं—वे धनवान हैं, जो हमारे रक्त-मांस से अपनी थैलियाँ भरते हैं—वे न्यायाधीश हैं, जो पैसे के गुलाम बनकर न्याय का गला घोंटते हैं—वे पुलिस के कुत्ते हैं जो दस रुपये की नौकरी करके बादशाह के नाती बने बैठे हैं..."

नीरा कुछ न बोली।

बसन्त आवेश में आ गया था।

"नीरा !—" बोला वह—"इन अमीरों को क्या अधिकार है कि एक ग़रीब की बहन की शादी होती रहे और उसे रुपयों की सख़्त जरूरत रहे—मगर उनकी थैली न खुले..."

बसन्त की इस बात से चौंक पड़ी नीरा।

"बसन्त भाई !—" उसने तीव्र स्वर में पूछा।

"कहो, क्या कहती हो ?"—शान्त था बसन्त।

"तो क्या तुमने सचमुच मेरी शादी के लिये उस सेठ के यहाँ से रुपये चुराये थे ?—"

"हाँ !...." बसन्त बोला—"माँगने से नहीं मिला तो ज़बर-दस्ती सही ...."

"तुम इतने पतित हो गये हो बसन्त भाई !—"

"अब भी तुम मुझे पतित कहती हो नीरा !—" आवेश से भर उठा बसन्त—"ज़रा दुनिया की ओर देखो...अपनी कीमती साड़ी के आँचल से अपना मुँह निकाल कर देखो !...तड़पते हुए, सिसकते हुए, मरते हुए ग़रीबों को देखो...अकाल से पीड़ित नर-कंकालों को देखो... एक दाने अनाज के कारण अपनी जवानी बेचने वाली लड़कियों को

देखो! मुरदों का मांस खाने वाले क्षुधित भिखमंगों को देखो...और तब देखो, रुपयों और अनाजों से भरी हुई सेठों की कोठियों की ओर .. और तब कहो मुझे पतित !...."

"चाहे जो कुछ भी हो मगर मनुष्य अपने नैतिक-पतन का स्वयं जिम्मेदार है—" नीरा ने कहा—"नहीं जानती थी कि तुम्हारे शरीर के अंदर इतनी पतित आत्मा है, नहीं तो उस भयानक बाढ़ के अंदर डूबे हुए तुम्हारे शरीर के लिये कभी उस देवता से प्रार्थना न करती। तुम डूब जाते भले ही....तुम मर जाते भले ही...तुम्हें बचा कर उस देवता ने भी अपने हाथ कलंकित कर लिये..."

बसंत का आवेश अब विलीन हो चुका था। आँखों से आँसुओं की धारा बह चली थी।

बहन के कटुवाक्य सुनकर भाई के नयन बह उठे थे।

एकाएक बसंत उठ खड़ा हुआ। उसकी आँखें तर थीं मगर मुद्रा गम्भीर थी।

बिना एक शब्द बोले हुए वह कमरे से बाहर हो गया।

नीरा उसके पीछे लपकी मगर तब तक बसंत कुमार मकान से निकलकर न जाने कहाँ ओझल हो गया था।

नीरा धम्म से पलंग पर आकर गिर पड़ी।

उसी समय उसके पति जनरंजन राय ने वहाँ प्रवेश किया।

जनरंजन २५-२६ वर्ष का युवक था। आकृति से क्रूरता की झलक कभी-कभी स्पष्ट दिखाई पड़ती थी।

नीरा को यद्यपि कोई अभाव न था परन्तु उसका वैवाहिक-जीवन सुखकर न था।

इसका कारण था, जनरंजन और नीरा के मानोभावों में महान् अन्तर!

जनरंजन था ब्रिटिश सरकार का पृष्ठपोषक और नीरा थी एक आदर्श पत्नी।

नीरा नहीं चाहती कि उसका पति जासूसी करके अनायास ही लोगों को दण्ड दिलवाता फिरे।

जब जनरंजन ब्रिटिश सरकार का गुण-गान करने लगता तो नीरा का हृदय तीव्र घृणा से भर उठता, अपने पति की गुलाम मनोवृत्ति देखकर।

"आज तुम बहुत चिन्तित हो ?—" पूछा जनरंजन ने।

"हाँ, बसंत भाई आये थे...." नीरा ने कहा—"मेरी बातों से रूठ कर चले गये। शायद सुबह से कुछ खाये भी नहीं थे। आज ही सुबह जेल से छूटे थे...."

"अच्छा हुआ चला गया वह !—" घृणायुक्त स्वर में बोला जनरंजन—"उस आवारे का यहाँ न आना ही अच्छा है। देखना, अपने गहने वगैरह बचा कर रखना—कहीं ऐसा न हो कि वह आकर ले भागे..."

नीरा को पति की ये बातें बहुत बुरी लगीं। वह स्वयं बसन्त से घृणा कर सकती थी मगर वह यह नहीं देख सकती थी कि दुनिया के अन्य लोग भी उसके भैया से घृणा करें, उन्हें आवारा कहें, चोर समझें।

"आज कल मैं बहुत व्यस्त हूँ"—जनरंजन बोला—"इन बेहूदों ने आन्दोलन शुरू कर दिया है। पता नहीं इनका दिमाग़ किस आसमान पर जा पहुँचा है...."

नीरा चुप रही।

भारत का वह भयानक शेर सींखचों के अन्दर बन्द था।

भारत सरकार ने सुभाष बाबू की सारी स्वतन्त्रता अपहरण कर ली थी। कहने को तो वे अपने ही मकान में नज़रबन्द थे परन्तु उन्हें तनिक भी सुविधायें प्राप्त न थी।

उनके मकान के चारो ओर सशस्त्र पुलिस नियत थी। दरवाज़े पर भी पहले पहरेदार थे। सरकार ने कितने ही जासूस छोड़ रखे थे, जो गुप्त रूप से सुभाष बाबू के मकान पर नियन्त्रण रखा करते थे।

सुभाष बाबू को घर से बाहर चहारदीवारी तक भी आने की आज्ञा न थी। वे किसी भी बाहरी आदमी से मिल नहीं सकते थे, चाहे वह उनका रिश्तेदार ही क्यों न हो।

वे किसी को पत्र भी न लिख सकते थे। बाहरी पत्र, सरकार द्वारा पढ़ लिये जाने के पश्चात् उन्हें मिला करते थे। उनमें से भी कितने पत्र, अनावश्यक तथा विरोधपूर्ण बता कर रोक लिये जाते थे।

जो चीज़ बाहर से मकान के अन्दर जाती थी या मकान से बाहर आती थी, उसका निरीक्षण किया जाता था।

सरकार ने विद्रोही सुभाष को पूर्णतया बन्धन में जकड़ रखा था।

पत्र-पत्रिकायें भी वे नहीं पढ़ सकते थे।

इस बार उन पर बहुत कड़ा नियंत्रण था।

सुभाष बाबू परेशान थे। समाचार-पत्र न पढ़ सकने के कारण वे यह नहीं जान सकते थे कि उनके मकान की चहारदीवारी के बाहर कौन-कौन-सी घटनायें हो रही हैं।

सुभाष बाबू अत्यन्त चिन्तित थे।

यही तो उनके कार्य करने का समय था परन्तु सरकार ने उन्हें बेड़ियाँ डाल रखी थीं।

रह-रहकर उनका मन बाहर की दशा देखने को उत्सुक हो उठता था।

उनके देश-वासियों पर इस समय क्या गुज़र रहा होगा। स्वातन्त्र्य आन्दोलन का क्या हाल है, सरकार का दमन किस पाशविक सीमा तक पहुँच चुका है?—आदि बातें सोचते-सोचते व्याकुल हो उठते थे सुभाष बाबू।

उनके अन्तराल का मानव, उनके हृदय की विद्वेषी भावनायें, उनकी स्वतन्त्रता-प्राप्ति की उद्दाम लालसा—ये सब बेचैनी से छटपटा रहे थे।

कभी-कभी सुभाष बाबू का हृदय प्रबल विद्रोह से भर उठता था। उनकी अन्तरात्मा चिल्ला उठती थी—

"सुभाष! उठो!...भागो! किसी पहरेदार की पिस्तौल छीन कर एक ओर से शासन सत्ताधारी गोरों पर दागना शुरू कर दो...तुम बंधन में बँधने के लिये नहीं बने हो...तुम्हें चालीस करोड़ मानवों की आज़ादी के लिये नेता बनकर लड़ना है...तुम्हें गोरी सरकार से विद्रोह करना है...तुम्हें अपनी शक्ति एकत्रित करके, भारत पर से विदेशियों की लाशें दूर हटानी है...उठो! जागो!...भागो!..."

कई महीने बीत गये इस प्रकार।

सुभाष बाबू न ठीक से खाते थे और न सोते थे।

दिन रात आज़ादी का प्रश्न उनके अन्तराल में विद्रोह-भावना की सृष्टि करता रहता था।

वे जानते थे कि इस समय ब्रिटिश सरकार के पग डगमगा उठे हैं और जर्मनी के शेर ने उसकी नींद हराम कर दी है।

यदि आज वे बाहर होते तो दौड़कर उस शेर से जा मिलते और कहते—

"भाई हिटलर! आओ, हम लोग कंधे से कंधा भिड़ा कर इन गोरों का नाश करें और उन्हें दिखा दें कि अब उनके राज्य में भी सूर्य अस्त होने लगा है...."

विचार धारायें कहाँ-कहाँ तक दौड़ लगाती थीं?

और बिचारे सुभाष बाबू हाथ मल-मलकर रह जाते थे।

एक दिन उन्होंने अपने भाई से सुना—

"जर्मनी और रूस में अनाक्रमण संधि हो गई है!"

"अनाक्रमण संधि !"—खुशी से चिल्ला पड़े सुभाष बाबू—"जर्मनी और रूस में अनाक्रमण संधि !...अब तो अंगरेजों का अवश्य नाश होगा..."

उसी दिन से सुभाष बाबू का हृदय उत्साहपूर्ण हो उठा।

उनकी अन्तरात्मा चिल्ला-चिल्लाकर जैसे आदेश देने लगी—

"सुभाष !...विद्रोही !...भागो !....रूस जाकर स्टालिन से मिलो... जर्मनी जाकर हिटलर से मिलो...सिसकती हुई आज़ादी जर्मनी और रूस में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है...वह भारत में आने को बेताब है..."

अब सुभाष बाबू में एक विचित्र परिवर्तन हो गया।

वे घर के लोगों से भी बहुत कम मिलने लगे। एक एकान्त कमरे में दिन भर बैठे-बैठे वे अपने आगामी कार्यक्रम पर विचार किया करते।

उन्होंने अपनी दाढ़ी बनवानी भी छोड़ दी। चश्मा लगाने की आदत भी कम करने लगे।

इस प्रकार कई महीने बीत गये।

२६ जनवरी १९४१ का दिन निकट आ गया। देश भर में स्थान-स्थान पर 'स्वतन्त्रता-दिवस' का उत्सव मनाने के लिये तैयारियाँ होने लगीं।

उस दिन कलकत्ते में बड़ी-बड़ी सभायें हुईं। जननायकों के उत्साह-पूर्ण भाषण हुए।

जासूस जनरंजन राय को रात-दिन दौड़ते ही बीता था। इंस्पेक्टर होने के कारण उसे तनिक भी अवकाश न मिलता था।

सन्ध्या से ही उसकी ड्यूटी सुभाष बाबू के मकान पर थी।

वह निश्चित समय पर अपनी ड्यूटी पर पहुँच गया। सुभाष बाबू के मकान के समीप अपने नियत स्थान पर वह कुर्सी पर जा बैठा।

रात हो गई थी। जनरंजन दिन भर का थका हुआ था। कुर्सी पर

बैठते ही उसे आलस्य मालूम हुई और वह मेज का ढासना लगाकर आराम से बैठ गया।

थकावट ने उसकी झपकती आँखों में नींद ला दी और वह प्रगाढ़ निद्रा के वशीभूत हो गया।

आधी रात बीत चुकी थी, जब किसी प्रकार का खटका सुनकर उसकी नींद उचट गई।

वह हड़बड़ा कर कुर्सी पर उठ बैठा। अपनी पिस्तौल उसने टटोली, जो यथास्थान थी।

सशंक भाव से उसने अपने चारो ओर देखा पर कुछ दिखाई न पड़ा।

हाँ! सड़क पर मन्थर-गति से जाता हुआ एक मुग़ल अवश्य दिखाई पड़ा।

मुग़ल की चाल से जनरंजन चौंका।

उसने उसे आवाज़ दी परन्तु वह रुका नहीं, बल्कि जनरंजन की आवाज सुनकर उसने अपनी चाल और तेज कर दी।

जनरजन का सन्देह बढ़ा। वह बाहर निकल आया। पिस्तौल निकाल कर हाथ में ले ली और कड़ककर बोला—

"ठहरो!...नहीं तो गोली मार दूँगा..."

सहमकर मुग़ल रुक गया।

जनरंजन मुग़ल के पास चला गया। उसके हाथ में भरी-भराई पिस्तौल तैयार थी। उसने ध्यानपूर्वक उस मुग़ल को देखा।

मुग़ल काफी लम्बा-तगड़ा था। पंजाबी जूते, पंजाबी पाजामा, लम्बा कुरता तथा मुग़लों जैसा साफा पहने था वह। मुँह पर आठ अँगुल की दाढ़ी तथा मूँछे थीं। चेहरे से रोब टपक रहा था।

"तुम इतनी रात को कहाँ से आ रहे हो जी?—" जनरंजन ने पूछा।

"तुमसे मतलब?....तुम कौन हो पूछने वाले...." मुग़ल ने क्रोधित स्वर में कहा।

उसे जनरंजन का वह व्यवहार अप्रिय लगा था।

"देखो जी !—" जनरंजन बोला—"मैं जासूस पुलिस का इन्स-पेक्टर हूँ। अगर तुम मेरी बातों का साफ़-साफ़ जवाब न दोगे तो मुझे मजबूर होकर तुम्हें रात भर के लिये रोक रखना पड़ेगा और सुबह तुम थाने भेज दिये जाओगे...."

"नहीं-नहीं जनाब ! –" पठान बोला—"मैंने आपको पहचाना नहीं....मैं आपको सब साफ़-साफ़ बता दे रहा हूँ...मैं इस वक्त अपने घर से आ रहा हूँ। मेरी बीवी की तबियत एक ब एक खराब हो गई है, इसीलिये मुझे डाक्टर के यहाँ इस आधी रात के वक्त जाने की ज़रूरत आ पड़ी !"

जनरंजन ने एक बार पुनः उस पठान की ओर देखा। उसकी उर्दू ज़बान बता रही थी कि वह वास्तव में पठान है !

"अच्छा, तुम जा सकते हो !—" जनरंजन ने कहा।

और वह पठान झुक कर सलाम करने के बाद, लम्बे पग बढ़ाता हुआ चला गया।

कुछ दूर जाने के बाद उस पठान ने सशंक भाव से पीछे की ओर ज़रा-सा घूम कर देखा, कदाचित् उसे अपना पीछा किये जाने का डर था।

परन्तु यह देख कर उसका भय दूर हुआ कि कोई भी उसका पीछा नहीं कर रहा था।

अब वह निश्चिन्ततापूर्वक आगे बढ़ा परन्तु उसकी रफ्तार पहले से भी तेज़ हो गई थी।

एक पतली सी सड़क पर, एक मकान के आगे आकर वह रुका और धीरे से दरवाजा खटखटाया।

दो-तीन बार दरवाज़ा खटखटाने पर तुरत ही मकान का द्वार खुल गया और एक दुबला-पतला नवयुवक वहाँ खड़ा दिखाई पड़ा।

"कौन है ?—" पठान को पहचान न सकने के कारण उस युवक ने पूछा।

"मैं हूँ !—" धीरे से पठान ने कहा।

पठान की गम्भीर वाणी सुन कर युवक चौंक-सा पड़ा।

और हड़बड़ा कर बोला—"अरे आप ?....अन्दर आइये !..."

युवक ने पठान को आदर के साथ अन्दर करके दरवाजा बन्द कर लिया।

"देखो मित्र !—" अन्दर आकर पठान शुद्ध हिन्दी में बोला—"मुझे अवकाश बहुत कम है। हो सकता है कि थोड़ी ही देर में मेरे पीछे पुलिस और जासूस दौड़ पड़ें !"

"आप निकल आये, यह बड़े साहस का काम किया आपने—" युवक बोला—"आप तो पहचाने ही नहीं जाते। मैं भी आपको पहले पहचान न सका।"

"रहने दो ये बातें !—" पठान ने कहा—"यह बताओ, मैंने जो सन्देशा भिजवाया था, वह प्रबन्ध तुमने कर रखा है ?"

"जी हाँ !—आपके नाप के अनेक प्रकार के सिले हुए कपड़े और भेष बदलने की आवश्यक वस्तुयें—मूँछ तथा दाढ़ी इत्यादि इकत्रित करके एक सूटकेट में रख ली है मैंने !"

"और कार ?—" पूछा पठान ने।

"वह भी तैयार है...."

"तो बस, तुम भी तैयार हो जाओ !—" पठान के स्वर में आदेश-सा था।

"मुझे कहाँ चलना होगा ?—" पूछा युवक ने।

"सिर्फ बर्दवान तक—" पठान ने कहा—"वहाँ से मैं पंजाब मेल पर सवार हूँगा और तुम अपनी कार लेकर वापस लौट आओगे !"

"बहुत अच्छा !...."

कहकर युवक तेजी के साथ एक कोठरी में गया और उसमें से एक सूटकेस ला कर पठान के सामने रख दिया।

"आप इसमें की सब वस्तुयें देख लें, तब तक मैं तैयार हो कर आता हूँ—" युवक ने कहा।

"बहुत जल्दी आना!—" पठान ने कहा।

"पाँच मिनट में!"—कहता हुआ युवक पुनः अन्दर चला गया।

पाँच-सात मिनट में जब वह पुनः लौटा तो यह देखकर उसके आश्चर्य का पारावार न रहा कि वह पठान कमरे से गायब है और उसकी जगह पर एक मौलवी साहब बैठे हुए कोई किताब पढ़ रहे हैं।

मौलवी साहब ने सर उठाया। युवक से बोले—"आओ मित्र! घबड़ाओ नहीं। यह तो तुम्हारे सूटकेस की वस्तुओं का प्रभाव है...."

युवक हँस पड़ा—"आप भी भेष-परिवर्तन में कमाल रखते हैं..."

इसके बाद युवक ने गैरेज में से अपनी कार निकाली। मौलवी साहब और वह, दोनों कार में जा बैठे। युवक ने कार स्टार्ट करनी चाही।

"रुको!—" मौलवी साहब ने कहा—"तुम्हारे पास कार के नम्बर की कोई नकली तख्ती है न?"

"हाँ, है तो!"

"तो असली तख्ती निकाल कर उसे लगा दो"—मौलवी साहब ने कहा—"हो सकता है कि हमारी कार का नम्बर नोट किया जाय..."

"अच्छी बात है!"

युवक ने शीघ्र ही व्यवस्था कर दी।

और तब वह छोटी-सी कार, उस युवक तथा सन्दिग्ध मौलवी साहब को लेकर पचास-साठ मील की रफ्तार से भाग चली।

बर्दवान आकर मौलवी साहब फ्रंटियर मेल पर सवार हुए और वह युवक अपनी कार लेकर लौट आया।

२७ जनवरी सन् १९४१ को सबेरे ही भारतवर्ष में बिजली की तरह

यह समाचार फैल गया कि स्वतन्त्रता-दिवस की रात्रि में, सरकारी पहरेदारों की आँखों में धूल झोंक कर और खुफ़िया-विभाग को चुनौती देकर, सुभाष बाबू अचानक लापता हो गये ।

उनके इस प्रकार लुप्त होने से सारे देश में तहलका मच गया। सरकार दाँत पीसने लगी । भारत का वह शेर, अब उसके शिकंजे से बाहर था और बाहर रहकर वह न जाने किस प्रलय की सृष्टि करे ?

सारे देश भर में सरकारी तार दौड़ गये । हर एक शहर की खुफ़िया पुलिस कमर कस कर उठ खड़ी हुई ।

परन्तु विद्रोही सुभाष को किसी की भी चिन्ता न थी ।

वे पंजाब मेल से दिल्ली में उतर पड़े । दो-एक दिन किसी गाँव में रहकर तब आगे जाने का उनका इरादा था।

इस समय भी वे मौलवी के ही वेश में थे ।

जब वे फाटक के बाहर निकलने लगे तो उन्होंने देखा कि टिकट चेकर के पास ही पुलिस इंस्पेक्टर और कई जासूस खड़े हैं तथा स्टेशन से बाहर निकलने वाले प्रत्येक व्यक्ति को ध्यानपूर्वक देख रहे हैं ।

"ओ मौलवी साहब !—" एक जासूस ने पुकारा ।

और हमारे मौलवी साहब इस तरह पर घूम पड़े, जैसे वे उनके पुकारने का इन्तज़ार ही करते रहे हों ।

मौलवी साहब इतमीनान के साथ पुलिस इंस्पेक्टर के सामने आ खड़े हुए और बोले—"आदाब अर्ज़ है हज़ूर ! इरशाद फ़रमाइये !..."

पुलिस इंस्पेक्टर समझ गया कि ऐसी उर्दू कोई बंगाली कभी नहीं बोल सकता ।

"आप कहाँ से आते हैं ?—" एक जासूस ने पूछा ।

"क्यों ?—" मौलवी साहब आश्चर्य से बोले—"इस तरह आपके पूछने का मक़सद क्या है ?...अपने घर से आ रहा हूँ और कहाँ से ?"

पुलिस इंस्पेक्टर हँस पड़ा ।

जासूस बोला—"जनाबमन आपका घर कहाँ है ?"

"वाह ! कैसा बेलुत्फ़ सवाल पूछा है आपने—" मौलवी साहब बोले—"कोई रिश्तेदारी करने की ग़रज़ हो तो यह सवाल कुछ मायने रख सकता है...वरना एक दम फ़जूल है यह !"

पुलिस इंस्पेक्टर और जासूस समझ गये कि यह कोई आधा पागल मौलवी है। भारत का वह विद्रोही शेर अर्द्ध-विक्षिप्त तो हो नहीं सकता !

"अब आप जा सकते हैं—" पुलिस इंस्पेक्टर ने कहा।

"लाख-लाख शुक्रिया हज़ूर !—" मौलवी साहब ने कहा—"हज़ूर को मुझसे कोई काम पड़े तो मुझे याद फ़रमायेंगे....मेरा दौलतख़ाना... न-न ग़रीबख़ाना शेरपुर इलाक़े में है..."

कहकर मौलवी साहब चलते बने।

शेर को पकड़ने का स्वप्न देखने वाले वे मूर्ख व्यक्ति टापते ही रह गये।

तीन दिन तक दिल्ली के एक गाँव में रहने के बाद सुभाष बाबू पेशावर जाने के लिये पुनः दिल्ली स्टेशन पर आये।

फ्रण्टियर मेल के एक डिब्बे में पाँव रखते ही वे चौंक पड़े। पास ही के एक बर्थ पर कलकत्ते का जासूस इन्सपेक्टर जनरंजन राय बैठा हुआ था।

कदाचित् सुभाष बाबू की खोज में वह भी परेशान हो रहा था।

जनरंजन की भी दृष्टि सुभाष बाबू पर पड़ी।

सुभाष बाबू अपना सूटकेस लिये डिब्बे के नीचे उतरने की कोशिश करने लगे।

शायद जनरंजन को मौलवी साहब पर कुछ शक हुआ, अतः उसने कहा—"आइये मौलाना साहब ! मैं आपको अपनी बगल में जगह दे दूँगा..."

सभ्यता के नाते सुभाष बाबू इनकार न कर सके। शायद इनकार करने पर जनरंजन का शक और बढ़ जाता।

वे ठाट के साथ आकर जनरंजन की बगल में बैठ गये।

"मिज़ाज मुबारक !—" मौलवी साहब ने पूछा।

"कृपा है—" जनरंजन ने कहा—"आप क्या दिल्ली के ही रहने वाले हैं ?"

"अजीब बेलुत्फ़ सवाल आज कल ट्रेनों में हो रहे हैं !—" मौलवी साहब ने कहा।

"क्यों, क्या बात है ?—"

"अरे जनाब ! अभी उस दिन जब मैं लाहौर से आता हुआ दिल्ली उतरा, तो कई पुलिसवाले मिलकर बेहूदा सवालात मुझसे करने लगे। आजकल का रवैया कुछ समझ में नहीं आता..."

"आपको इस सवाल से कुछ चिढ़ है क्या ?"

"चीढ़ नहीं है साहब ! आप शौक से पूछिये....मगर आप खुद समझ सकते हैं कि एक ही सवाल जब सैकड़ों आदमी पूछने लगते हैं तो ख़ामख़ाह तबियत परेशान हो उठती है....हाँ, पूछिये, क्या पूछते हैं ?... मेरा दौलतख़ाना, न न ग़रीबखाना शेरपुर इलाके में है। मेरा नाम मौलवी...मौलवी..."

"बस-बस !—" बीच में ही रोका जनरंजन ने—"आप तो बुरा मान गये..."

"वल्लाह ! मैं बुरा क्यों मानने लगा ?—" मौलवी साहब ने कहा—"अभी तो हमारा आपका साथ बहुत देर तक रहेगा..."

"कहाँ जाना है आपको ?—"

"लाहौर !..." मौलवी साहब बोले।

"मैं भी लाहौर ही चल रहा हूँ..." जनरंजन ने कहा।

"ठीक है, ठीक है...." आप भी तो शायद दिल्ली में ही रहते हैं..."

"नहीं मैं कलकत्ता रहता हूँ...." जनरंजन बोला—"मैं वहाँ पर एक डाक्टर हूँ...."

"वाह, क़िबला ! वाह !—" मौलवी साहब जोर से हँस पड़े—"मुझसे भी झूठ बोलने की क्या जरूरत आ पड़ी जनरंजन साहब !"

मौलवी के मुख से अपना नाम सुनकर जनरंजन को बड़ा विस्मय हुआ।

"मेरे मुँह से अपना इस्मशरीफ सुनकर आप बेहद घबरा उठे हैं—" मौलवी साहब बोले—"बात यह हुई कि अभी आपने अपना मनीबेग निकाला था तो उस पर मैंने साफ़-साफ़ पढ़ा था—"जनरंजन राय सी० आई० डी० इन्सपेक्टर !"

"क्षमा कीजियेगा—" जनरंजन ने कहा—"हमलोगों का काम ऐसा है कि अपने को छिपाना ही पड़ता है...."

"बजा फरमाते हैं आप !—" कहकर मौलवी साहब चुप हो रहे।

जनरंजन रह-रहकर ध्यानपूर्वक मौलवी साहब की आकृति को देखने लग जाता था।

धीरे-धीरे उसका सन्देह निश्चय में परिणत हो रहा था।

एक छोटे से स्टेशन पर उतर कर जनरंजन तार घर की ओर बढ़ा।

मौलवी साहब सशंकित हो उठे। जनरंजन को तार घर में घुसते देखकर ही उन्होंने समझ लिया कि जनरंजन को उनके सुभाष होने का निश्चय हो गया है।

जनरंजन ने लाहौर के पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट को तार दिया—

"लाहौर स्टेशन पर सौ सशस्त्र पुलिस के साथ आप फन्टियर मेल की प्रतीक्षा करें !"

इसके बाद जनरंजन निश्चिन्त होकर अपने डिब्बे में आ बैठा। सोचा उसने कि अब उसका शिकार बच कर कहाँ जायगा।

इधर मौलवी साहब आँखें बन्द किये न जाने क्या सोच रहे थे।

दो घंटों के बाद मुग़लपुरा स्टेशन आ गया। अगला स्टेशन ही लाहौर था, जहाँ लगभग २०० सशस्त्र पुलिस सुभाष बाबू की प्रतीक्षा में तैयार खड़ी थी।

मुग़लपुरा आते ही मौलवी साहब ने अपना सूटकेस उठाया और चलने लगे।

जनरंजन ने चौंककर पूछा—"अरे, आप तो लाहौर उतरने वाले थे न!"

"जी हाँ!—" मौलवी साहब ने कहा—"लाहौर तो अब आ गया। मुग़लपुरा और लहौर में फासिला ही क्या है?"

जनरंजन कुछ न बोला। मौलवी के उतर जाने पर वह भी उतर पड़ा और उनका पीछा किया।

मौलवी ने तिरछे देखकर समझ लिया की उनका पीछा किया जा रहा है।

स्टेशन से बाहर आकर मौलवी साहब एक होटल में घुस गये।

कुछ देर तक तो जनरंजन बाहर खड़ा रहा, इसके बाद पास ही खड़े हुए एक पुलिसमैन से पूछा—"थाना किधर है?"

"वह सामने है!—" पुलिसमैन ने कहा।

लपकता हुआ जनरंजन थाने में गया। वहाँ से सादी वर्दी में पचीस पुलिस लेकर होटल के दरवाज़े पर जा खड़ा हुआ।

जनरंजन अभी कुछ सोच ही रहा था कि होटल के भीतर से, फ्रेन्च दाढ़ी रखे हुए, कोई फ्रान्सीसी साहब निकला। साहब के बदन पर बढ़िया रेशमी सूट था—हाथ में सोने की घड़ी थी और सर पर मूल्यवान नाइट कैप थी।

"ओ साहब!...." जनरंजन ने रोका; क्योंकि उसका सन्देह इस साहब पर भी हो गया था।

"क्या है डैम ?—" साहब टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी में घुड़क कर बोला—"तुम किस माफ़िक हम को रोकने सकता ?....'

"आप का नाम ?—"

"डी० फारेस्टर—' साहब बोला—"मेरा नाम लेकर तुम क्या करने सकता ? हम गावा रहता है, फ्रान्सीसी साहब है, हम तुम्हारी जान मारने सकता है...."

कहता हुआ वह साहब चला गया। और निकट ही खड़ी एक टैक्सी किराये पर कर आँखों से ओझल हो गया।

जनरंजन को अपने बुद्धि पर बहुत बड़ा भरोसा था मगर सुभाष बाबू ने हर बार उसे धोखा दिया।

मुग़ल के वेश में, मौलवी के भेष में और फ्रान्सीसी साहब के भेष में, सुभाष बाबू ने, अंगरेज़ी सरकार के नमकहलाल नौकर जनरंजन के मुँह पर कालिख पोत दी और चल दिये।

लाहौर में बहुत दिनों तक सुभाष बाबू की खोज करने के पश्चात्, जनरंजन २५ जासूसों के साथ पेशावर की ओर बढ़ा।

जनरंजन सुभाष बाबू की गिरफ्तारी के लिये कटिबद्ध था। चाहे जिस तरह हो, उसे सुभाष बाबू को प्राप्त करना था, जीवित या मृतक !

उसके हेडक्वार्टर से तार आया था—

"बागी को पकड़ो, चाहे जिन्दा हालत में वा मुर्दा। अगर पकड़ सके तो काफ़ी इनाम मिलेगा और न पकड़ सके तो निकाल दिये जाओगे—"

यही कारण था कि वह घर-बार की सुध छोड़कर सुभाष बाबू की खोज में प्रयत्नशील था।

पेशावर पहुँचकर भी कई दिन तक वह असफल ही रहा।

परन्तु एक दिन!

जब कि वह अपने दल बल के साथ शहर में घूम रहा था, उसकी दृष्टि एक देहाती पठान पर पड़ी।

जनरंजन का हृदय सशंकित हो उठा।

वही है!

वही!

जनरंजन ने अपने साथियों को इशारा किया। सब उस पठान की ओर बढ़े।

जनरंजन ने अपनी पिस्तौल निकाल कर हाथ में ले ली—वह मरने-मारने को प्रस्तुत हो गया।

वह पठान भी कम चौकन्ना न था।

जनरंजन तथा उसके दल को अपनी ओर आते देखकर वह एक गली में घुस गया।

जासूस लोग भी दौड़ पड़े।

देखो वह पठान गली के उस पार दौड़ा जा रहा है।

सब लोगों ने उसे ललकारा। पठान और तेज भागा। जासूस लोग भी भर जोर दौड़े।

जनरंजन ने पिस्तौल भी दागी मगर वह पठान घायल न हुआ।

भागते-भागते मैदान आ पहुँचा। सड़क के दोनों ओर मकानों की संख्या बहुत कम थी, अतः अब उस पठान के छिपने की गुंजायश नहीं रह गई थी।

जनरंजन का उत्साह बढ़ चला।

उस पठान के सर पर से एक गोली भर्राती हुई निकल गई। पठान समझ गया कि अब उसकी खैर नहीं।

भागते-भागते एक बाग़ के दरवाज़े में वह पठान घुस गया।

बाग़ बहुत छोटा था। बीच में मिलिटरी के ढंग का एक बँगला बना हुआ था।

वह पठान सबकी नज़र बचा कर एक झुरमुट में छिप रहा।

पीछा करते-करते जनरंजन आदि भी आ पहुँचे और तेज़ी के साथ बाग के फाटक में घुस पड़े।

"वहीं ठहरो!—" किसी ने गरज कर कहा।

जनरंजन ने देखा, बँगले के बारामदे में मिलिटरी की पोशाक पहने एक युवक खड़ा था। शरीर हृष्ट-पुष्ट था। कमर की पेटी से रिवाल्वर लटक रहा था।

देखने में वह एयर फोर्स का कोई अफ़सर लगता था।

वह युवक पैर बढ़ाकर जनरंजन के समीप आ खड़ा हुआ।

तब दोनों ने नज़दीक से एक दूसरे को देखा।

"तुम!...युवक को भी आश्चर्य हुआ मगर साथ ही साथ घृणा भी—"तुम्हें यहाँ देख कर मुझे आश्चर्य होता है जनरंजन!..."

"इस समय बात करने का मौक़ा नहीं है—" जनरंजन बोला—"हम लोग एक फ़रार आसामी के पीछे हैं। वह भाग कर तुम्हारे इस बाग़ में छिप गया है। हमें उसकी खोज करने दो...."

"एयर फोर्स के आफ़िसर के बाग में फ़रार आसामी!—" हँस पड़ा युवक—"स्वप्न देख कर तो नहीं आ रहे हो जनरंजन!"

जनरंजन को ये सब बातें इस समय पसन्द न आईं।

वह क्रुद्ध स्वर में बोला—"देखो, मेरा रास्ता छोड़ दो, वर्ना मुझे ज़बरदस्ती तुम्हारे बाग़ की तलाशी लेनी पड़ेगी..."

"ज़बरदस्ती!...." युवक की भवें तन गईं। उसका हाथ अपने रिवाल्वर पर जा पड़ा।

बोला वह—"यह न भूलो जनरंजन, कि तुम एयर फोर्स के एक फ्लाइङ्ग आफ़िसर के सामने खड़े हो...मेरे सामने तुम्हारा कुछ भी मूल्य

नहीं। सीधे से चले जाओ यहाँ से, वरना तुम में से एक-एक को गोली मार दूँगा...."

और युवक ने अपना रिवाल्वर निकाल लिया।

जनरंजन और उसके साथी सर लटका कर चलते बने।

अब उस युवक के मुख पर मुस्कान के चिह्न परिलक्षित हुए।

वह उस स्थान पर आया, जहाँ वह पठान छिपा हुआ था।

"निकल आओ देवता!—" युवक बोला—"अब तुम्हारा रास्ता साफ़ है..."

पठान का हृदय धड़क रहा था—वह चुप रहा।

"तुमको छिपते हुए मैंने देख लिया था देवता!....बाहर आ जाओ—अब कोई डर नहीं..." युवक ने पुनः कहा।

और उसने पास जाकर उस पठान को बाहर निकाला।

पठान आश्चर्यचकित था, उस अपरिचित युवक के मुख से अपने लिये देवता सम्बोधन सुनकर।

"तुम मुझे पहचानते हो युवक!"—पठान ने पूछा।

"भला अपने देवता को भी कोई कभी भूल सकता है?" युवक हँसकर बोला—"तुम चाहे जहाँ, चाहे जिस भेष में रहो देवता! मगर मेरी आँखें तुम्हें ज़रूर पहचान लेंगी...तुमने बाढ़ से मेरे प्राण बचाये थे, वह उपकार कभी भूला नहीं जा सकता, महापुरुष!..."

अब सुभाष बाबू हँस पड़े।

तो बसन्तकुमार ने उन्हें पहचान लिया। जिसे कोई न पहचान सका, उसे उसने जान लिया।

सुभाष बाबू और बसन्त दोनों कमरे में आ गये।

"आज तुमने मेरी जान बचा ली बसन्त!..."

"आप तो अपनी जान स्वयं हथेली पर लिये फिरते हैं देवता!... इसमें मेरा उपकार क्या?—" बसन्त बोला।

"तो तुम आज कल एयर फ़ोर्स में हो ?"—पूछा सुभाष बाबू ने।

"जी हाँ !"—बसन्त ने कहा—"उस जीवन से मैं ऊब गया था देवता ! और जब स्वयं मेरी बहन ने मेरा तिरस्कार किया तो मैं उसे सहन न कर सका। मैंने एयर फ़ोर्स के कमीशन के लिये प्रार्थना-पत्र दिया और आज मैं फ्लाइङ्ग आफिसर के पद पर हूँ। हवाई-सेना का संचालन करता हूँ...."

"ठीक है !"—सुभाष बाबू बोले—"मगर क्या तुमने कभी यह भी सोचा है कि आज तुम जिसकी गुलामी कर रहे हो, उसी ने तुम्हारे देश को गुलाम बना रखा है ?"

"सोचा है देवता ! बहुत बार सोचा है...आज सरकार की गुलामी करके हमने यह कला प्राप्त की है और एक दिन अपने देश की गुलामी दूर करने के लिये यही कला सरकार के सीने पर बम-वर्षा करेगी।"

"शाबास ! शाबास !..."

सुभाष बाबू ने देखा कि अब वह पहले का आवारा बसन्त नहीं रह गया है। उसके मुख पर गम्भीरता और विचारों में प्रौढ़ता आ गई।

"हमने अपने देश की परिस्थिति का भी अध्ययन किया है देवता !" बसन्त बोला—"हमारे विचार देश के नेताओं के विचार से भिन्न हैं। मैं समझता हूँ कि भीख माँगने से आजादी नहीं मिलती....आजादी मिलती है, शस्त्र ग्रहण से....इस जमाने में सरकार ने हमारे हथियार छीनकर पंगु बना डाला है। सभी हथियारों पर लाइसेंस लगा दिया है—बहाना यह है कि हथियारों से शान्ति भंग होती है। ये बुजदिल गोरे यह क्यों नहीं कहते कि उन्हें सशस्त्र विद्रोह का डर है। वे समझते हैं कि हमारे हाथ में हथियार रहते, वश में नहीं कर सकते...."

"ठीक कहते हो तुम !..."

"मेरे विचार से आज प्रत्येक भारतीय को फौज़ में भर्ती हो जाना

चाहिये"—बसन्त ने कहा—"और जब वक्त आवे, तो सरकार की संगीन से सरकार के सीने में ही गोली दाग देनी चाहिये...'

"तुम उग्र विचारों के हो"—सुभाष बाबू बोले—"तुम हमारे बहुत काम आओगे...."

"अब आपका कहाँ जाने का विचार है ?—"

"मैं जल्द से जल्द हिन्दुस्तान की सीमा से बाहर हो जाना चाहता हूँ...क्या तुम कोई प्रबन्ध कर सकते हो ?—"

"हाँ !....कल एक काफ़िला काबुल को जा रहा है। आप पठान-वेश में उनके साथ जा सकते हैं। मैं सब प्रबन्ध कर दूँगा...."

और शीघ्र ही सुभाष बाबू पठानों के उस काफ़िले के साथ काबुल जा पहुँचे।

काबुल पहुँचकर उन्होंने रूसी दूतावास से सम्पर्क स्थापित किया और रूस के अधिनायक मार्शल स्टालिन के पास सन्देशा भेजा कि क्या वे उनसे मिलना स्वीकार करेंगे ?

स्वीकारात्मक उत्तर आते ही उन्होंने रूस जाने की तैयारी कर दी।

अपने पति के व्यवहार से नीरा मल्लिक असन्तुष्ट थी।

इधर कई महीनों से जनरंजन, सुभाष बाबू की खोज में इधर-उधर मारा-मारा फिर रहा था और नीरा घर में नौकरानी के साथ अकेले ही रहती थी।

उस दिन नौकरानी बाज़ार गई हुई थी और नीरा तकिये की एक खोली पर कसीदा काढ़ रही थी।

उसी समय दरवाज़े पर किसी कार के रुकने की आहट लगी और दो सेकेण्ड के बाद किसी ने दरवाज़ा खटखटाया।

नीरा दरवाज़ा खोलने के लिये उठ खड़ी हुई और नीचे जाकर दरवाज़े के किवाड़ खोल दिये।

बाहर जिस व्यक्ति पर उसकी दृष्टि पड़ी, वह था सैनिक-वेश धारण किये हुए एक रोबीला युवक।

पास ही मिलिटरी की एक कार खड़ी थी।

उस युवक को देखकर नीरा चौंक पड़ी।

"आप...तुम!" हड़बड़ाहट में वह ठीक से बोल न सकी—"बसन्त भैया, तुम!"

युवक धीरे से मुसकराया। बोला—"हाँ, मैं ही हूँ नीरा!....परन्तु मुझे विश्वास न था कि तुम मुझे पहचान सकोगी...क्योंकि पिछली बार तुमने मेरी जो भर्त्सना की थी, उससे मैं सोचता था कि तुम मुझे भूल जाने का प्रयत्न करोगी और शायद अब तक भूल भी गई होगी।"

"उस दिन के अपने व्यवहार पर मैं बाद को ग्लानि से भर गई थी बसन्त भाई! वास्तव में मुझसे उस दिन महान् त्रुटि हो गई थी..." नीरा ने कहा।

"चलो नीरा! अन्दर चलें—" युवक ने कहा।

दोनों कमरे में आये।

"तुम्हारी कोई त्रुटि नहीं थी नीरा!—" बसन्त बोला—"तुम्हारे वाक्यों ने ही मेरे मनुष्यत्व को जगाया और आज मैं क्या से क्या बन सका हूँ...तुम देख ही रही हो!"

"तुमने फिर अपनी कोई खबर नहीं भेजी भैया!—"

"मैं समझता था कि एक आवारे भाई के लिये बहन के हृदय में कदाचित अब स्थान न रह गया हो—" बसन्त बोला—"अब तो मैं

सैनिक हूँ। अब सांसारिक बन्धनों से विचलित न होना ही मेरा कर्त्तव्य है..."

"तुम भी विचित्र स्वभाव के हो बसंत भाई!—" नीरा हँसकर बोली—"जो बहन, अपने भाई को बाढ़ में डूबा हुआ देखकर, स्वयं भी अपनी जान देना चाहती हो, वह उसे कभी भूल सकती है?"

"वे बीती बातें हैं नीरा!...उस समय वह बहन एक निरीह बालिका थी और आज वह सरकार के एक वफ़ादार नौकर की पत्नी है!"

"मगर पत्नी और पति के मनोभावों में महान अन्तर है बसंत भाई!—"

"हो सकता है—" बसन्त ने कहा—"खैर, जाने दो इन बातों को। अब उनमें क्या रखा है?....हाँ, जनरंजन तो घर में न होंगे...."

"वे तो कई महीनों से लापता हैं—" नीरा बोली—"कोई पत्र भी नहीं लिखा..."

"वे आज कल एक शेर को पकड़ने की चेष्टा कर रहे हैं नीरा!—"

"शेर?—"

नीरा को आश्चर्य हुआ।

"हाँ, एक मानव-शेर!—" बसन्त हँसकर बोला—"जनरंजन आज कल हमारे देवता के पीछे पड़े हुए हैं..."

"कौन देवता?....वही, जिसने तुम्हारे प्राण बचाये थे?—"

"हाँ!—" बसन्त ने कहा।

"क्यों?....वे उनको क्यों पकड़ना चाहते हैं?—" नीरा ने साश्चर्य पूछा।

"वह देवता देश का बहुत बड़ा क्रान्तिकारी है नीरा!....सरकार का सबसे बड़ा शत्रु है वह!..."

"ईश्वर उस देवता को बचायें...."

कह कर नीरा उठी और अन्दर जाकर भोजन का प्रबन्ध करने लगी।

रात को खाना खाकर दोनों भाई-बहन पास-पास बैठे।

तो नीरा ने पूछा—"तुम आज कल छुट्टी पर हो बसन्त भैया !"

"हाँ !...एक महीने की छुट्टी मिली है—" बसन्त ने कहा—"छुट्टी के बाद मुझे सीधे सिंगापुर जाना पड़ेगा। मेरा तबादला वहीं हुआ है..."

"मैं भी इस एकाकी-जीवन से ऊब गई हूँ भैया ! मुझे भी कोई रास्ता बताओ—"नीरा ने कहा।

"क्यों ?...तुम तो अँगरेज़ी पढ़ रही थीं न ? सुना था, जनरंजन ने तुम्हारे लिये एक अध्यापिका रख दी थी..."

"वह पढ़ाई तो अब समाप्त हो गई बसन्त भाई ! और पारसाल मैंने मैट्रिक की प्राइवेट परीक्षा भी दे दी....उत्तीर्ण भी हो गई मैं...."

"हूँ !...." गम्भीर स्वर में बोला बसन्त—"मैं जब कमीशन में भर्ती हुआ तो अँगरेजी का अज्ञान मेरे मार्ग में सबसे बड़ा बाधक था। अन्त में मैंने चार महीने तक दिन-रात परिश्रम करके अँगरेज़ी बोलना-लिखना सीखा और तब जाकर मुझे एयर-फोर्स का कमीशन मिल सका..."

"अच्छा !....तो मैं पढ़-लिख काफ़ी गई हूँ...अब बेकार बैठे-बैठे जी घबड़ा उठता है—" नीरा ने कहा—"कभी-कभी जी में आता है कि यदि मैं पुरुष होती तो तुरत लड़ाई पर चली जाती !"

"तुम !...तुम लड़ाई पर चलना चाहती हो नीरा !—" एका-एक बसन्त हर्षित हो उठा—"ठीक है, स्त्री होने पर भी तुम लड़ाई पर जा सकती हो...."

"कैसे भैया ?—"

"वीमेन्स आक्ज़ीलरी कोर में भर्ती होकर....यह जमात लड़ाई के मैदान में पुरुषों की सहायता करती है...'

"तो मैं प्रस्तुत हूँ बसन्त भाई ! यहाँ घुल-घुल कर जीवन व्यतीत

करने से तो लड़ाई के मैदान में मरना ज्यादा अच्छा है....' नीरा ने कहा।

"तुम्हारे विचार बहुत उच्च हैं नीरा !...मैं बहुत प्रसन्न हूँ कि मेरी बहन में अन्य भारतीय स्त्रियों की भाँति पंगुता नहीं है, कायरता नहीं है..." बसन्त बोला।

"मगर मैं युद्धभूमि में तुम्हारे साथ ही रहना पसन्द करूँगी भैया !—"

'इसका प्रबन्ध हो जायगा—" बसन्त ने कहा—"चलो, कल तुम्हें यहाँ भर्ती करा दूँ। जब तक मैं छुट्टी पर हूँ, तब तक तुम ट्रेनिङ्ग ले लो...इसके बाद अपने आफ़िसर कमाण्डिङ्ग से कह कर तुम्हारा तबादला भी सिंगापुर को करा लूँगा। तब हम और तुम साथ-साथ रह सकेंगे...."

"बहुत अच्छा !—" नीरा बोली।

इस समय उनके मुख पर प्रसन्नता खिल उठी थी।

शीघ्र ही नीरा वीमेन्स आक्ज़िलरी कोर में भर्ती हो गई।

बसन्त कुमार ने अपनी छुट्टी, लिखा-पढ़ी करके एक महीने के लिये और बढ़वा ली।

इस बीच नीरा अपनी ट्रेनिङ्ग लेती रही।

उधर नीरा की ट्रेनिङ्ग खत्म हुई, इधर बसन्त की छुट्टी।

बसन्त ने नीरा के तबादले के लिये पहले ही कोशिश कर रखी थी।

अन्त में दोनों भाई-बहन सिंगापुर भेज दिये गये।

नीरा ने अपने घर का भार बूढ़ी नौकरानी पर छोड़ दिया और उसे अपने पति के नाम एक पत्र भी लिख कर दे दिया।

जर्मनी तो ब्रिटिश सरकार का शत्रु था ही, जापान भी उसके खिलाफ खड्गहस्त हो गया।

७ दिसम्बर सन् १९४१ को जापान ने पर्ल हार्बर पर आक्रमण किया और पलक मारते उसने उस पर अधिकार कर लिया।

१३ दिसम्बर को गुआम, २० को पेनांग, २२ को बेक और २५ दिसम्बर को हांगकांग पर जापान का अधिकार हो गया।

२९ दिसम्बर को टिन-उद्योग का बहुत बड़ा केन्द्र ईपो भी जापान के हाथ आ गया।

ब्रिटिश सैनिक भाग रहे थे। बेतहाशा भाग रहे थे। जापानी हर जगह उनको पराजित करते जा रहे थे।

जापानी अत्याचार की कहानियाँ मलाया भर में फैलती जा रही थीं।

मलाया के भारतीयों में आतंक-सा छा गया था। वे भागकर जाँय तो कहाँ जाँय?

स्त्रियों ने अपने सतीत्व की रक्षार्थ विष खरीद कर रख लिया था, ताकि वे समय आने पर अपनी जा दे सकें।

२ जनवरी सन् १९४२ को मनिला पर भी जापान का अधिकार हो गया।

थाइलैण्ड से जापानी सीधे बर्मा में घुसे।

भारतीयों को कहीं जाने का स्थान नहीं रह गया। अंगरेज अपने बीबी बच्चों को लेकर भाग रहे थे। फिर भी उनका घमंड नहीं गया था। भारतीयों और मलाया निवासियों के साथ उनका बर्बरतापूर्ण व्यवहार पूर्ववत् जारी था।

भागते-भागते भी वे चिल्ला रहे थे कि जापानी सिंगापुर को नहीं ले सकते। सिंगापुर ब्रिटिश साम्राज्य का अजेय दुर्ग है!

परन्तु उनके चिल्लाने से क्या होता था ?

जापान के विनाशकारी विस्फोटों ने सिंगापुर का अजेयदुर्ग क्षण मात्र में नष्ट कर दिया।

१५ फरवरी सन् १९४२ को सिंगापुर पर जापानी अधिकार होगया।

३ करोड़ पौंडका सिंगापुर बन्दरगाह जापानियों के हाथ मे आ गया।

१५ हजार ब्रिटिश, ३३ हजार आस्ट्रेलियन तथा ३२ हजार भारतीय सैनिकों ने जापान के प्रभुत्व के समक्ष घुटने टेक कर आत्म-समर्पण किया।

१७ फरवरी १९४२ को फैरेज पार्क में पराजित भारतीय सैनिकों की एक सभा, मेजर फूजीवाड़ा की आज्ञानुसार हुई।

उस सभा में कई जापानी आफिसर तथा ब्रिटिश आफिसर लैफ्टिनेंट हन्ट भी उपस्थित थे।

सभा में खड़े होकर हंट ने कहा—"ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि की हैसियत से मैं आप सब को युद्ध बंदी के रूप में जापानी अधिकारियों के अधिकार में देता हूँ...आप लोगों को जापानी सरकार की आज्ञाओं का उसी तरह पालन करना चाहिये, जिस तरह आप आज तक ब्रिटिश सरकार की आज्ञाओं का करते थे। यदि आपने ऐसा न किया तो दण्ड के भागी होंगे..." मेजर फूजीवाड़ा ने खड़े होकर कहा—"मैं जापान सरकार का प्रथिनिधि हूँ और सब लोग अब मेरे अधिकार में हैं। लेकिन मैं आपको विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मेरी सरकार आपको युद्ध-बन्दी नहीं स्वीकार करेगी—वह आपको आजाद समझकर आपके साथ सभ्यता का व्यवहार करेगी।"

"मैं आपको कैप्टेन मोहनसिंह के हवाले करूँगा। वे ही आपके अधिनायक होंगे...."

इसके बाद कैप्टेन मोहनसिंह उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा—

"अंग्रेजों ने हमें जापानियों के हाथ सौंप दिया है और स्वयं अपनी

जान बचाकर भाग गये हैं। ऐसी परिस्थिति में हमें अपने कर्त्तव्य का निर्णय खूब सोच विचार कर करना चाहिये। मैं एक आजाद फौज का निर्माण करना चाहता हूँ। इस फौज का लक्ष्य भारत के लिये सैन्य संघटन द्वारा, पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति करना होगा। मैं आप लोगों से पूछता हूँ कि क्या आप लोग आजाद हिन्द फौज में सम्मिलित होना स्वीकार करेंगे?"

कैप्टेन मोहनसिंह की यह वक्तृता सुनकर सैनिकों में उत्साह का सागर उमड़ पड़ा।

"हम सब तैयार हैं—"

एक साथ हजारों कण्ठ-स्वर फूट पड़े।

८ मार्च १९४२ को जापान ने रंगून पर भी अधिकार कर लिया और गोरी चमड़ीवालों के मुँह पर एक ऐसी कालिमा लगा दी, जो तब तक नहीं मिट सकती, जब तक इतिहास का एक भी पृष्ठ शेष है।

९ और १० मार्च को मलाया तथा थाईलैण्ड के भारतीयों का एक प्रतिनिधि-सम्मेलन सिंगापुर में हुआ।

उसमें श्री रासबिहारी बसु का एक निमन्त्रण-पत्र पढ़कर सुनाया गया, जिसमें उन्होंने समग्र प्रतिनिधियों को टोकियो आने के लिये आमन्त्रित किया था।

उक्त सम्मेलन में टोकियो जाने के लिये एक सद्भाव-मिशन बना।

२३ मार्च १९४२ को अंडमान टापू पर जापान का अधिकार हो गया। इस प्रकार प्रथम भारतीय प्रदेश जापान के आधीन हुआ।

२८, २९ और ३० मार्च १९४२ को श्री रासबिहारी बसु की अध्यक्षता में, टोकियो में, जापान, चीन, मलाया और श्याम के भारतीयों को का वृहत् सम्मेलन हुआ।

उसी समय टोकियो-रेडियो ने यह घोषणा की कि विमान दुर्घटना में श्री सुभाषचन्द्र बोस की मृत्यु हो गई।

उक्त समाचार ने समग्र भारत में शोक की लहर फैला दी।

परन्तु शीघ्र ही जापान सरकार की ओर से उक्त समाचार का खंडन हुआ और कहा गया कि मृत्यु सुभाष बाबू की नहीं सत्यानंदपुरी की हुई।

उक्त सम्मेलन में आज़ाद हिन्द संघ की स्थापना हुई। आज़ाद हिन्द फ़ौज बनाने का भी निश्चय किया गया।

२२ अप्रैल १९४२ को सिंगापुर में स्वातन्त्र्य संघ की मलाया शाखा का सम्मेलन हुआ। २३ और २५ अप्रैल को भी सम्मेलन का कार्य होता रहा।

विभिन्न शाखाओं के नियन्त्रण, निरीक्षण और सामञ्जस्य के लिये एक केन्द्रीय समिति बनी।

स्वास्थ्य, सामाजिक-सुधार और राजनीतिक संघटन विभाग खोले गये।

× × × +

उधर भारत की स्वतन्त्रता के लिये पागल सुभाष बाबू रूस जा पहुँचे।

वहाँ जाकर उन्होंने मार्शल स्तालिन से भेंट की और अपने ध्येय की पूर्ति के लिये परामर्श किया।

उन दिनों जर्मनी और रूस में तनातनी चल रही थी और आशा थी कि कुछ ही दिनों में उन दोनों को बाध्य होकर अपनी अनाक्रमण सन्धि तोड़ देनी होगी।

ऐसी स्थिति में रूस, सुभाष बाबू की सहायता करके, ब्रिटेन और अमेरिका को अपना शत्रु नहीं बनाना चाहता था।

अतः मार्शल स्तालिन ने सुभाष बाबू की सहायता करने में अपनी असमर्थता प्रकट की।

अब सुभाष बाबू के लिये जर्मनी जाना अनिवार्य हो गया।

उन दिनों लीबिया में भारतीय सेना का दसवाँ ब्रिगेड जर्मनों के विरुद्ध लड़ रहा था।

और एक दिन भारतीय सैनिकों ने देखा कि उनके ऊपर जर्मन वायुयान, बम गिराने के बदले कुछ परचे गिरा गये हैं।

उन परचों पर लिखा था—*

"मैं जर्मनी पहुँच गया हूँ। आपसे मुझे एक लम्बी कहानी कहनी है। यह युद्ध हमारा युद्ध नहीं। ब्रिटेन और जर्मनी आपस में लड़ें, हमसे क्या मतलब? कृपया आप लड़ाई बन्द कर दें!—सुभाषचंद्र बोस।"

उन परचों ने भारतीय सैनिकों में नवीन उत्साह एवं अगम जागृति फूँक दी। तुरंत ही भारतीय सेना के ४५ हजार वीरों ने हथियार डाल दिये और सुभाष बाबू की छत्रछाया में आ खड़े हुए।

सुभाष बाबू उन सैनिकों से ड्रेसडन में मिले।

उन्होंने सर्वप्रथम आजाद हिन्द सेना की स्थापना की और ड्रेसडन को अपना प्रधान कार्यालय घोषित किया।

वे स्वयं उन सैनिकों का निरीक्षण करते थे।

सुभाष बाबू के स्वर में जादू था। जब वे बोलने लगते थे तो भारतीय सैनिक आजादी की अगम भावना हृदय पर लादे, झूम-झूम उठते थे।

एक दिन सुभाष बाबू ने कहा—

"ब्रिटेन, हमारा और जर्मनी का शत्रु है। हमें इस समय जर्मनी की सहायता लेकर स्वातंत्र्य संग्राम की तैयारी करनी है।"

उस दिन सुभाष बाबू ने तिरंगा झंडा लहराया। झंडे पर चरखा बना हुआ था।

सुभाष बाबू ने कहा—"हमने जो महत्व इस रा [illegible] ंडे को दिया है, उसे कम कभी नहीं होने देना..."

जर्मन सरकार ने आज़ाद हिन्द फौज को पूर्ण स्वतंत्रता दे रखी

---

*अभ्युदय—'नेताजी' अंक।

थी। उन्हें जर्मन लड़कियों से विवाह करने की भी अनुमति प्राप्त थी। आजाद हिन्द फौज का अपना रेडियो-स्टेशन भी था।

सैनिक सुभाष बाबू को नेताजी कहा करते थे।

नेताजी सुभाष काला कोट, श्वेत पैंट और काली टोपी पहनते थे। इस वर्दी में वे भारत के बेताज बादशाह के दिखाई पड़ते थे। उनके चमकते हुए दिव्य मुखमंडल पर भारत के स्वातंत्र्य की छाया परिलक्षित होती थी।

जर्मन भी नेताजी का आदर करते थे। बड़े-बड़े जर्मन अधिकारी तथा स्वयं गोरिङ्ग और हिटलर भी उन्हें सम्मान प्रदर्शित करते थे।

जर्मन लोग नेताजी को हि एक्सीलेंसी कहा करते थे।

हिटलर ने सुभाष बाबू के रहने के लिये एक महल दिया था।

नेताजी ने एक बार अपने सैनिकों से कहा था—"यदि तुम समझते हो कि मैं अपने स्वार्थ के लिये कांग्रेस तथा गाँधीजी से लड़कर विदेश आया हूँ तो यह तुम्हारी भूल है...

"मेरा तो एक ही ध्येय है और वह है अभागे भारत को ब्रिटेन के चक्रव्यूह से बचाना। जब मैं इस कार्य में सफल हो जाऊँगा तो स्वतंत्र भारत को वैसे का वैसा ही लाकर बापू के चरणों में रख दूँगा...."

जर्मनी के फिल्मडीविजन ने सुभाष बाबू की फिल्में भी उतारी थीं।

एक दिन स्वयं हिटलर ने आज़ाद-हिन्द सैनिकों के समक्ष कहा था—

"महान भारत के निवासियो! आप धन्य हैं और आपके नेताजी भी धन्य हैं। आपके नेताजी का दर्जा मुझसे बहुत ऊँचा है। मैं तो केवल आठ करोड़ जर्मनों का नेता हूँ, परन्तु वे ४० करोड़ भारतीयों के नेता हैं। वह प्रत्येक बात में मुझसे बड़े नेता और जेनरल हैं। मैं और मेरे जर्मन सैनिक उन्हें प्रणाम करते हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि नेताजी के नेतृत्व में महान भारत एक दिन अवश्य स्वतन्त्र होगा..."

२६ अप्रैल सन् १९४२ के दिन नेताजी सुभाष बर्लिन रेडियो पर गरज उठे—

"आज भारत को अपनी विजय का पूरा निश्चय है। हमारी भारत भूमि पर हमारा पूरा अधिकार है। हम अपने भाग्य विधाता स्वयं बनेंगे...

"इतने दिन तक गुलाम रहकर भी कोई विदेशी ताक़त हमारे इस अधिकार को छीन नहीं सकती। और जब तक भारत भूमि पर एक भी ज़िन्दा व्यक्ति बाकी है, तब तक हमारा यह अधिकार अक्षुण्ण रहेगा।

"अपने अधिकार के भरोसे दुनिया के सामने अपने आत्मविश्वास के बल पर यह घोषणा करते हैं कि हम पूर्णतया स्वतन्त्र हैं और अपनी जान पर खेलकर भारत की स्वतन्त्रता क़ायम रखेंगे और दुनिया में उसके नाम पर धब्बा नहीं लगने देंगे।

"जब तक हम अपने हथियारों के बल पर एक-एक विदेशी को चुन-चुनकर अपने देश से बाहर न निकाल देंगे, तब तक चैन नहीं लेंगे..."

मलाया तथा जापान के भारतीयों ने भारत के शेर की यह गर्जन सुनी। विद्रोह की एक लहर-सी दौड़ गई उनके रग-रग में।

उन्होंने कामना की कि सुभाष बाबू एक बार उनके बीच में आ खड़े हों तो वे उनके सामने कलेजे का खून निकाल कर, आज़ादी की कीमत चुका दें।

१७ मई १९४२ ई० तक मलाया में स्वातंत्र्य-संघ के ९५ हजार सदस्य बन चुके थे।

१५ से २३ जून तक बैंकाक में पूर्वी एशिया के भारतीयों का एक बड़ा सम्मेलन हुआ। लगभग १०० प्रतिनिधि उपस्थित थे।

जावा, सुमात्रा, हिन्दचीन, बोर्नियो, मंचुकुओ, हांगकांग, बर्मा, मलाया और जापान के प्रतिनिधि भी उसमें सम्मिलित थे।

भारतीय युद्ध-बन्दियों के भी प्रतिनिधि मौजूद थे।

आज़ाद हिन्द संघ का नियमपूर्वक निर्माण हुआ। इसका विधान बनाया गया। इसका ध्येय 'विश्वास–एकता–बलिदान' घोषित किया गया।

संघ के झंडे के नीचे समग्र भारतीय इकट्ठे हो रहे थे।

सुभाष बाबू को भी पूर्वीय एशिया में आने का आमन्त्रण दिया गया।

आज़ाद हिन्द फ़ौज में भरती होने के लिये भारतीय युद्ध-बन्दी, नागरिक और महिलायें भी लालायित हो गईं।

यह निश्चय हुआ कि जब समग्र भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन प्रारम्भ हो जाय और ब्रिटिश सेना में खलबली मच जाय, तभी सैनिक आक्रमण किया जाय।

जापान से कहा गया कि वह यह वचन दे कि ब्रिटिश साम्राज्य से भारत के अलग होते ही, वह उसकी सार्वभौमता स्वीकार कर ले—भारतीय, शत्रु की प्रजा न समझे जाँय।

सम्मेलन समाप्त हुआ।

सुभाष बाबू के पूर्वीय एशिया में आने की प्रतीक्षा की जाने लगी।

और इधर जापान ने अपना ढंग बदलना शुरू कर दिया।

वह भारतीयों के मामलों में हस्तक्षेप करने लगा।

जापानियों और भारतीयों का सम्बंध दूषित होने लगा।

और कुछ दिनों के बाद ही आजाद हिन्द संघ टूट गया।

कुछ दिनों तक तो यही हाल रहा। रासविहारी बसु टोकियो जाकर तोजो से मिले। उन्हें मामूली आश्वासन दिया गया।

किसी तरह संघ का कार्य पुनः चालू किया गया।

१८ अप्रैल १९४३ को चाँसलरी लेन में पूर्वी एशिया के भारतीयों का सम्मेलन हुआ, जिसमें घोषणा की गई कि सुभाष बाबू दो महीने के अन्दर योरोप से यहाँ आ जाँयगे।

संघ और फौज का संघटन तीव्रता से प्रारम्भ हो गया।

भारतीय आह्लादित हो उठे। उनका मन-मयूर सुभाष बाबू के आगमन की बात सुन नाच उठा।

वे सुभाष बाबू के शीघ्र आने की प्रार्थना करने लगे।

१ जून १९४३ को रासविहारी बसु सुभाष बाबू का स्वागत करने के लिये टोकियो रवाना हुए।

भारतीयों का उत्साह द्विगुणित हो रहा था।

मलाया के रबर के खेतों में नरकमय जीवन व्यतीत करनेवाले भारतीय मजदूर भी मातृ-भूमि की मुक्ति के लिये दृढ़-प्रतिज्ञ हो गये थे।

वर्षा, आँधी और बिजली की चमक में भी वे स्वराज्य का सन्देश सुनते थे।

जर्मनी से प्रस्थान करते समय सुभाष बाबू ने अपने सैनिकों से कहा—

"हमारा केवल एक उद्देश्य है...और वह है भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता। इसी ध्येय की पूर्ति के लिये मुझे आज तुम सब को छोड़ना पड़ रहा है। मैं जानता हूँ कि तुम भी हमारे साथ चलने को उत्सुक होगे परन्तु इस समय यह असम्भव है। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि यदि यातायात की सुविधायें प्राप्त हुई तो मैं बहुत जल्द तुम सबको अपने पास बुला लूँगा...."

इसके बाद आजाद हिन्द सैनिकों ने 'जय-हिन्द' के नारे लगाकर अपने बिछुड़ते हुए नेताजी का स्वागत किया।

उसी दिन सुभाष बाबू कर्नल हसन अली के साथ, हालैण्ड बन्दरगाह से एक पनडुब्बी पर सवार हुए।

योरोप से एशिया का, पनडुब्बी द्वारा वह सफ़र बहुत ख़तरनाक था और कई बार तो सुभाष बाबू शत्रुओं से बाल-बाल बचे।

२० जून १९४३ ।

सुभाष बाबू के टोकियो पहुँचते ही भारतीयों ने प्रबल जय-ध्वनि की ।

सुभाष बाबू का शाही-स्वागत किया गया ।

सुभाष बाबू ने एक वक्तव्य देते हुए कहा—

"पिछले महायुद्ध में चालाक ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने हमारे नेताओं के साथ विश्वासघात किया । २० साल पहले हमने शपथ खाई थी कि अब फिर ब्रिटेन के धोखे में नहीं आयेंगे ।

"आजादी की वह घड़ी आज २० वर्षों के पश्चात् फिर आ गई है । सदियों तक ऐसा सुनहरा अवसर शायद ही मिल सके ।

"ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने सब ओर से भारत का विनाश किया । हमारा कर्त्तव्य है कि अपनी स्वाधीनता के लिये हम खून से उसका मूल्य चुकायें ।

"हमारे त्याग और कष्ट से जो स्वाधीनता प्रा होगी, उसी को हम अपने पौरुष से बनाये रख सकेंगे ।

"शत्रु ने अपनी तलवार निकाल ली है । हमें भी तलवार से ही लड़ना पड़ेगा । सविनय अवज्ञा आन्दोलन के स्थान पर सशस्त्र संघर्ष करना पड़ेगा । अग्निवर्षा से पुनीत भारतीय जनता ही स्वराज्य पाने के योग्य हो सकती है !"

२१ जून सन् १९४३ को टोकियो रेडियो स्टेशन से सुभाष बाबू ने भारतीयों को एक दिव्य सन्देश प्रेषित किया । जापान में सुभाष बाबू का यह पहला रेडियो-वक्तव्य था ।

सुभाष बाबू ने कहा था—

"हम भारत के बहुत निकट हैं, यह हमारा पहला लाभ है। आज तक किसी भी ब्रिटिश जेनरल के मस्तिष्क में यह बात आई ही नहीं थी कि कभी पूर्व की ओर से भी भारतवर्ष पर आक्रमण हो सकता है।

"सिंगापुर को लेकर वे मजे में आराम कर रहे थे। उनकी सारी तैयारी भारत के उत्तर-पश्चिम में होती रही। जनरल यामाशिता और जेनरल इशिडा ने ब्रिटिश राजनीति के ढोल की पोल खोल दी है।

"केवल अब पूर्व में जोरदार तैयारी कर रहे हैं। परन्तु २० साल में तैयार हुए सिंगापुर के अड्डे से यदि वे एक सप्ताह में भागें तो इस तैयारी का क्या मतलब है?

"हमारे शासक समझते हैं कि साम्राज्य बनें और नष्ट हों परन्तु ब्रिटिश साम्राज्य तो सदैव अक्षुण्ण रहेगा। भारत के अन्दर क्या हो रहा है? बर्मा-सिंगापुर उनके हाथ से चले गये, इसकी उन्हें परवाह नहीं है।

"ब्रिटेन का सारा साम्राज्य भारत ही है। वह और सब छोड़ देगा परन्तु इसे नहीं छोड़ेगा। ब्रिटेन से यह कहना कि तुम भारत से चले जाओ, निरी मूर्खता है। यदि हमें स्वराज्य चाहिये तो बिना खून से उसका मूल्य चुकाये, नहीं मिल सकता।"

२४ जून १९४३ को सुभाष बाबू की क्रान्ति-भरी आवाज पुनः रेडियो पर गरज उठी—

"मेरे कुछ देश भाई अब भी सोचते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय संकट से बाध्य होकर ब्रिटेन, भारत जैसे दास देश को स्वतन्त्र कर देगा—परन्तु वे भारी भ्रम में हैं।

"१९४० में गाँधीजी ने सत्याग्रह छेड़ा। मुझे प्रसन्नता हुई और मैंने अनुभव किया कि भारतीय-क्रान्ति की इससे भारी योजना बनाना अत्यन्त आवश्यक है।

"मैं आज घोषणा करता हूँ कि मेरा उद्देश्य सफल हो गया। भारत

के बाहर के सब भारतीय एक झंडे के नीचे आ गये हैं। वे आपकी मदद के लिये अवसर की प्रतीक्षा में हैं।

"मित्रो! मैंने कुछ समय पहले वादा किया था कि जब शुभ घड़ी आयेगी तो मैं आपके साथ आपके सुख-दुख में सम्मिलित होने के लिये आ जाऊँगा। हम आज अपनी इसी प्रतिज्ञा को पूरी कर रहे हैं..."

"भारत स्वतन्त्र होगा—बहुत शीघ्र स्वतन्त्र होगा। स्वतन्त्र भारत, अपने यातनापूर्ण जेलों के फाटक खोल देगा, ताकि हमारे वीर भाई, जेल के अन्धकार से स्वतन्त्रता के प्रकाश में प्रवेश कर सकें..."

२९ जून १९४३ को सुभाष बाबू ने, भारतीय स्वाधीनता के लिये लड़ने के हेतु, पूर्वी एशिया के भारतीयों को एक फ़ौज संघटित करने के कार्य में सहायता देने की प्रार्थना की।

उन्होंने कहा—

"भारत को आज़ाद करने का काम केवल हमारा है। इस भारी शत्रु के सामने सत्याग्रह, विध्वंस कार्य तथा क्रान्तिकारी आतंक के काम व्यर्थ हैं। इसे भगाने के लिये तो उसी के हथियार से लड़ना पड़ेगा।

"शत्रु ने म्यान से तलवार खींच ली है, इसलिये हमें भी तलवार से ही मुकाबला करना है।

"हमें पूरी आशा है कि पूर्वीय एशिया के मित्रों की सहायता से मैं, ऐसी फ़ौज खड़ा कर सकता हूँ, जो भारत से ब्रिटिश सत्ता को हटा फेंके। शुभ घड़ी आ गई है। हर एक भारतीय को युद्ध क्षेत्र पर जाना चाहिये। स्वाधीनता के लिये उत्सुक भारतीयों का रक्त जब भूमि पर गिरने लगेगा, तभी भारत स्वाधीन होगा।"

२ जुलाई १९४३ को सुभाष बाबू सिंगापुर आये, जो जापानियों की भाषा में इस समय शोनान के नाम से प्रसिद्ध हो रहा था।

उस दिन दीवाली थी। हर भारतीय परिवार उनके स्वागत के लिये

आया था। गाँधीजी की बड़ी-सी तस्वीर सजाई गई थी। भारत माता के हाथ में तिरंगा झंडा सुशोभित हो रहा था।

मलायावासी चीनी तथा जापानियों की संख्या भी अधिक थी। नर-मुण्डों का सागर लहरा रहा था।

धीर-वीर स्मितमुख सुभाष ने सबके हृदयों पर अपना अधिकार जमा लिया था। उनकी मुस्कान सबको आकर्षित कर लेती थी।

सुभाष बाबू ने, उस जन-समुद्र के मध्य, जापानियों के विषय में अपना वक्तव्य दिया।

"हम अपने को जापानियों द्वारा मूर्ख प्रमाणित नहीं होने देंगे। हमारा संघटन सुदृढ़ रहेगा तो जापानी हमारा कुछ भी न कर सकेंगे। हमें, केवल अपने दुश्मन ब्रिटिश साम्राज्यवाद या सम्राज्य-लोलुप जापानियों से ही नहीं डरना है, अपने ही कुछ भारतीयों से भी हमें डरना है। अनुशासन, त्याग और लगन से ही हम विजयी होंगे!"

सुभाष बाबू आज़ाद हिन्द संघ और फौज के कार्यकर्त्ताओं से मिले।

आधुनिक युद्धनीति तथा मलाया के भूगोल का अपरिमित ज्ञान, सुभाष बाबू के पास देखकर सभी आश्चर्यचकित हो उठे।

ऐसी कोई नई बात वे कार्यकर्त्ता सुभाष बाबू को नहीं बता सके, जिसे वे पहले से ही नहीं जानते रहे हों।

सबको विश्वास हो गया कि सुभाष बाबू वास्तव में उनके 'नेताजी' होने योग्य हैं।

४ जुलाई १९४३ को सिंगापुर में भारतीय-सम्मेलन का उद्घाटन हुआ।

सुभाष बाबू ने अपने भाषण में कहा—

"मित्रो! स्वाधीनता के लिये तड़पते हुए भारतीयों के लिये कार्य करने की शुभ घड़ी आ गई। इस संघर्षकाल में कर्त्तव्यपरायणता और

अनुशासन की सबसे पहले आवश्यकता है। मैं पूर्वी एशिया के सभी भारतीयों का इसके लिये आवाहन करता हूँ।

"मैं कई बार कह चुका हूँ कि १९४१ में मैं जब भारत से चला तो भारत की जनता की इच्छा से चला। यद्यपि मैं बाहर हूँ परन्तु अपने देशवासियों से मेरा सम्पर्क बराबर बना हुआ है।

"हम जो कुछ भी करेंगे, केवल भारत की स्वाधीनता के लिये करेंगे। अपनी सारी शक्ति एकत्र करने के लिये मैं आज़ाद हिन्द की एक अस्थायी सरकार बनाना चाहता हूँ।

"शत्रु बड़ा शक्तिशाली है अस्तु हमें कहीं कुछ पराजय भी सहन करनी पड़ेगी।

"स्वाधीनता के इस अन्तिम प्रयत्न में आपको भूख-प्यास, अन्न की कमी, सैकड़ों मील की दौड़ तथा मृत्यु सहन करनी पड़ेगी। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ही स्वाधीनता मिलेगी!"

नेताजी सुभाष के सिंगापुर आते ही, वहाँ के सारे आपसी मदभेद तथा वैमनस्य नष्ट हो गये। भारतीयों का जोश उमड़ पड़ने को तड़-फड़ाने लगा।

५ जुलाई १९४३ को सुभाष बाबू ने अपने जीवन की अत्यंत महत्व-पूर्ण घोषणा की। आज़ादहिन्द फौज का निर्माण हो गया। केवल भार-तीयों की प्रथम सेना, ब्रिटिश साम्राज्य की सारी शक्ति से लोहा लेने को तैयार खड़ी थी।

सुभाष बाबू ने उनके रग-रग में अपने स्वर से क्रान्ति की लहर लहरा दी।

"आज़ाद फ़ौज के आज़ाद सिपाहियो!

"आज हमारी ज़िन्दगी का सबसे गौरवमय दिवस है। आज ईश्वर की कृपा से हम संसार के समक्ष घोषणा कर सकते हैं कि आज़ादहिन्द की एक आज़ाद फौज भी बन गई है।

"यह वह सेना है, जो भारत के परतन्त्रता की बेड़ियाँ तोड़ेगी। हर भारतीय को इसका गर्व होना चाहिये कि केवल भारतीयों ने इसे सँवारा है और जिस दिन अवसर आयेगा, उस दिन केवल भारतीयों के नेतृत्व में यह संग्राम भी करेगी।

"आज एक बच्चा भी कह सकता है कि अंगरेज़ी साम्राज्यशाही चल बसी और हम उसकी क़ब्र को पैरों से ठुकरा रहे हैं।

"साथियो! तुम्हारा नारा है, दिल्ली चलो!—लाल किले की ओर बढ़ो...

"हममें से कितने अपनी जीत देखने के लिये जीवित रह जाँयगे, यह मैं नहीं जानता—मगर मैं इतना जानता हूँ कि हम लोग जीतेंगे और अवश्य जीतेंगे। मेरी आत्मा को तो उस दिन सन्तोष होगा, जिस दिन मेरे सिपाही, ब्रिटिश साम्राज्यवाद के दूसरे मज़ार दिल्ली के लाल किले पर तिरंगा झंडा फहरायेंगे।

"मैं बराबर यह महसूस करता रहा कि भारत को एक स्वतन्त्र सेना की आवश्यकता है।

"जार्ज वाशिङ्गटन ने अमेरिका को आज़ादी दिलाई क्योंकि उसके पास सैन्य-बल था। गैरी बाल्डी ने भी यही पथ अपनाया। यह तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम भी उसी मार्ग पर अग्रसर हो रहे हो, जिस मार्ग पर चल कर कितने ही महापुरुषों ने सफलता प्राप्त की थी।

'साथियो! आज तुम्हारे हाथ में भारत की शान है। तुम भारत की आशा के तारे हो। तुम हमेशा ऐसा कार्य करो कि भारत हृदय से तुम्हें आशीर्वाद दे! मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं तुम्हारे साथ रहूँगा। रोशनी में, अँधेरे में, दुःख में, सुख में, हार में, जीत में मैं तुम्हारे साथ रहूँगा। हाँ, आज मैं तुम्हें कुछ नहीं दे सकता, सिवा भूख, प्यास, पीड़ा, बेबसी और मौत...

"यदि इतने पर भी भारत आज़ाद हो जाय तो हमारा यह सर्वस्व-समर्पण सफल हो जायगा !

"ईश्वर तुम्हारी रक्षा करें—विजय तुम्हारी होगी !"

चारों ओर से गगनभेदी नारे गूँज उठे—

आज़ाद हिन्द ज़िन्दाबाद !

शेरे हिन्द ज़िन्दाबाद !

विद्रोही सुभाष ज़िन्दाबाद !

नेताजी ज़िन्दाबाद !

नेताजी सुभाष का हृदय उन उल्लसित नारों को सुनकर गद्गद् हो उठा।

तभी उनकी दृष्टि अपने पैरों पर झुके हुए एक युवक और एक युवती पर पड़ी।

चौंक पड़े सुभाष बाबू !—लपककर उन्होंने युवक और युवती को उठाया।

"बसन्त कुमार ! तुम और यहाँ ?—" युवक को देखकर सुभाष बाबू आश्चर्यपूर्ण स्वर में बोले—"तुम यहाँ कैसे ?"

"गद्दार अंगरेज़ अपने गोरे साथियों को लेकर भाग गये और हमें जापानियों के हाथ युद्ध-बन्दी बना कर छोड़ गये देवता !"—बसन्त ने कहा।

"क्या तुम सिंगापुर में ही थे ?—" सुभाष बाबू ने पूछा।

"हाँ, देवता !—"बसन्त बोला—"हमारा तबादला सिंगापुर को हो गया था...."

"ठीक है !"—सुभाष बाबू ने कहा—"यह कौन है ?"

सुभाष बाबू का इशारा युवती की ओर था।

"इसे आप पहचान नहीं सके शायद !"—बोला बसन्त—"यह नीरा है नेताजी !....मेरी बहन नीरा !...जनरंजन की पत्नी !"

"अच्छा !...बहुत दिन हुआ इन्हें देखे, इसीलिये पहचान नहीं सका—" सुभाष बाबू ने कहा—"ये वीमेन्स आक्ज़ीलरी कोर में थीं शायद !"

'जी हाँ !....मगर अब तो हम आपके चरणों में आ गये हैं देवता !...अब तो रात दिन आपके पास बने रहेंगे हम लोग...."

"ठीक है !—" सुभाष बोले—"मुझे तुम जैसे युवक की आवश्यकता भी थी..."

"हम अपनी जान देकर भी आपकी रक्षा करेंगे देवता !—नेताजी !—" बसन्त कुमार ने कहा।

६ जुलाई १९४३ का दिन अविस्मरणीय था।

जेनरल तोजो डेढ़ घंटे तक आज़ादहिन्द फौज़ की परेड को सलामी देते रहे। नेताजी सुभाष उनके पास खड़े थे। राष्ट्रीय झण्डा उड़ रहा था।

९ जुलाई को पडांग के म्युनिसिपल दफ्तर के सामने विशाल रैली हुई। एक लाख से भी अधिक जन समुदाय एकत्रित था।

नेताजी स्त्रियों और बच्चों के प्यारे हो गये थे। वे न जाने किस जादू से सबको मोहित कर लेते थे।

उन्होंने कहा—

"ग्यारह बार मैं ब्रिटिश जेलों में जा चुका हूँ। वहाँ बड़ा कड़ा बन्धन था—परन्तु संकट उठा कर मुझे कौन यहाँ खींच लाया ?

"स्वराज्य प्राप्ति की उत्कट अभिलाषा !

"१९२१ से मैं इसके लिये प्रयत्नशील हूँ। मुझे ३ लाख सिपाही और ३ करोड़ डालर चाहिये...

"१८५७ के प्रथम स्वाधीनता युद्ध में वीर झाँसी की रानी ने अपनी तलवार का जो जौहर दिखाया था, वैसी वीरता दिखलाने वाली शूर-वीर, मृत्यु का सामना करने वाली महिलाओं का एक दल भी मैं चाहता हूँ !"

१२ जुलाई १९४३ को नेता जी ने महिलाओं की सभा में भाषण दिया। महिलायें १०-१० मील की दूरी से आई थीं। बहुत-सी स्त्रियों ने अपने ज़ेवर नेताजी सुभाष को दे दिये।

नेताजी ने कहा—

"हम एक नहीं, हज़ारों झाँसी की रानियाँ चाहते हैं!"

इसके बाद आज़ाद स्कूलों में सैनिकों और महिलाओं की ट्रेनिंङ्ग शुरू हुई। मलाया में स्वातन्त्र्य संघ का काम भी तेज़ी से होने लगा।

१ अगस्त १९४३ को केवल मलाया में ६० शाखायें तथा एक लाख सत्तर हज़ार सदस्य हो गये थे।

९ अगस्त को पूर्वी एशिया के कोने-कोने में भारतीय-क्रान्ति (जो ठीक ९ अगस्त १९४२ को प्रारम्भ हुई थी) की प्रथम वर्ष-गाँठ मनाने के लिये सैकड़ों सभायें हुईं।

सिंगापुर में हुई सभा में गांधीजी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल आदि नेताओं के फोटो रखे थे।

१५ अगस्त को सिंगापुर के फैरेट पार्क में फिर विशाल रैली हुई। ३० हज़ार आदमी नेताजी का भाषण सुनने के लिये आये थे।

'आजादहिन्द ज़िन्दाबाद' के नारों से आकाश गूँज उठा था।

इस सभा में मुसलमान भी बहुत बड़ी संख्या में आये थे और उन्होंने सुभाष बाबू को एक भारी थैली भेंट की थी।

नेताजी ने घोषणा की कि शीघ्र ही आज़ाद-हिन्द सरकार का कार्यालय रंगून जायगा और फ़ौज बर्मा जायगी।

२५ अगस्त १९४३ को नेताजी ने फ़ौज का नेतृत्व अपने हाथ में लिया। सैनिकों से उन्होंने कहा कि हमें दिल्ली, वायसराय के भवन पर राष्ट्रीय झंडा फहराना है। जब हम भारत पर अपना अधिकार कर लेंगे तो गोरों की सारी बैरिकें अपने सैनिकों को दे देंगे और बदले में सारे जेल हम उन्हें दे देंगे।

उस समय समग्र बंगाल में भीषण अकाल पड़ा हुआ था। छोकरियाँ, एक-एक मुट्ठी चावल के लिये अपनी जवानियाँ बेच रही थीं। मातायें अपने मृत बच्चों का माँस खाकर क्षुधा शान्त करती थीं।

अकाल का वह भयावह समाचार सुभाष बाबू के कानों में पड़ा। उनकी आत्मा करुणा से चीत्कार कर उठी।

आज़ादहिन्द सरकार के प्रधान की हैसियत से, सुभाष बाबू ने, सिंगापुर रेडियो स्टेशन द्वारा, ब्रिटिश सरकार के समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि आज़ादहिन्द सरकार अपने देश के एक प्रान्त के भीषण अकाल से अत्यन्त दुखी है। यह बंगाल के लिये एक लाख टन चावल भेज सकती है। यदि ब्रिटिश सरकार जहाज़ को सुरक्षित वापस कर देने का वचन दे तो यह चावल बर्मा के किसी भी बन्दरगाह से तुरन्त भेज दिया जायगा।

परन्तु गोरी सरकार ने इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया और भूखे भारतीयों के करुण-क्रन्दन को सुनकर एक भीषण अट्टहास किया।

२६ सितम्बर १९४३ को रंगून में बहादुरशाह के मकबरे पर स्वतन्त्र भारत के अन्तिम बादशाह की स्मृति में, नेताजी ने श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

२ अक्टूबर को गाँधीजी की ७५ वीं वर्षगाँठ मनाई गई। राष्ट्रीय गान गाती हुई प्रभात-फेरियाँ निकलीं। तमाम भारतीयों के मकानों पर राष्ट्रीय झंडे फहरा उठे।

नेताजी सुभाष ने अपने भाषण में कहा—

"गाँधीजी का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। उन्होंने १९२० में नागपुर कांग्रेस में कहा था कि यदि भारत के पास तलवार होती तो वह तलवार से लड़ता।

"आज हमारे पास तलवार है और हम उससे मातृभूमि को स्वाधीन करेंगे।

"*हम एक लम्बा रास्ता तय कर चुके हैं। हमें नष्ट करने के लिये नौकरशाही ने क्या नहीं किया?

"हिन्दुस्तान की गुलाम धरती को फोड़ कर सिर उठाने वाली कच्ची कलियों को, जवानी के पहले ही कुचल दिया गया। निहत्थी जनता की निरपराध हड्डियों को गोलियों से तोड़ कर, माँ की छाती को जवान बेटों के खून से तर किया गया। हमारे देश को लूटा गया। क़ानूनी डाके-ज़नी, क़ानूनी हत्या, अमानुषिक काले क़ानून हम पर लादे गये—मगर हमने क्षण भर को भी अपना सर झुकने नहीं दिया।

"जो झंडा हमने शान से फहराया था, जिसकी तिरंगी कोर तूफ़ानों से टकराती रही—हमने अपनी मौत से भी खेल कर अपने झंडे को नहीं झुकने दिया।

"यह तिरंगा झंडा आज हमारी सभ्यता, हमारी संस्कृति, हमारा धर्म, हमारा साहित्य, हमारी ज़िन्दगी, हमारा सर्वस्व बन चुका है।

"हमें अब आज़ादी की भीख नहीं माँगनी है। हमें अपने बल पर स्वतन्त्रता को स्थापित करना है। हम अंगरेज़ों को हिन्दुस्तान से बाहर निकाल देने के लिये कटिबद्ध हैं।"

२१ अक्टूबर सन् १९४३ ई० का दिन भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम के इतिहास में हमेशा अमिट रहेगा।

उस दिन सिंगापुर में पूर्वीय एशिया के भारतीयों का सम्मेलन हुआ था और नेताजी ने १॥ घंटे तक भाषण करके "आरज़ी हुकूमते आज़ाद हिन्द" के स्थापना की घोषणा की। नेताजी ने खुद भारत के प्रति वफ़ादारी की शपथ ली।

"ईश्वर के नाम पर मैं, सुभाषचन्द्र बसु, भारत और ३८ करोड़ देश-बन्धुओं को मुक्त करने के लिये, अपनी अन्तिम साँस

---

* अभ्युदय : नेताजी अंकका सम्पादकीय।

तक स्वाधीनता का पवित्र युद्ध जारी रखूँगा। मैं हमेशा भारत का सेवक बना रहूँगा। और अपने ३८ करोड़ भारतीय बन्धु-भगिनियों की भलाई का ध्यान रखूँगा, यही मेरा सर्वोपरि कर्त्तव्य होगा। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद भी, उसकी रक्षा के लिये मैं अपने रक्त की अन्तिम बूँद भी देने को हमेशा तैयार रहूँगा।"

इसके बाद अस्थायी सरकार के प्रत्येक सदस्य ने, सुभाष बाबू के प्रति भक्ति की शपथ ली। अनन्तर घोषणा पत्र पढ़ कर सुनाया गया।

और तब सदस्यों के हस्ताक्षर हुए।

सरकार के प्रधान, प्रधान मंत्री, युद्ध-मंत्री और परराष्ट्र सचिव—श्री सुभाषचन्द्र बोस।

महिला-सैन्य-दल—कैप्टेन श्रीमती लक्ष्मी।

प्रचार—एस० ए० ऐय्यर।

अर्थ—लेफ्टिनेन्ट कर्नल ए० सी० चटर्जी।

सेना के प्रतिनिधि—ले० क० अजीज़ अहमद, एन० एस० भगत, जे० के० भोंसले, गुलज़ार सिंह, एम० ज़ेड० किकानी, ए० डी० लोकनाथन, एहसान क़ादिर, शाहनवाज़।

सिक्रेटरी—ए० एम० सहाय।

प्रधान सलाहकार—रास विहारी बसु।

सलाहकार—करीम ग़नी, देवनाथ दास, डी० एम० खान, ए० पलप्पा, जे० थीवी, सरदार ईश्वर सिंह।

क़ानूनी सलाहकार—ए० एन० सरकार।

२२ अक्टूबर !

झाँसी की रानी का जन्म-दिन।

२२ अक्टूबर १९४३ !

झाँसी रानी रेजिमेन्ट का जन्म-दिन !

राष्ट्रीय ध्वजा आकाश में फहरा रही थी। रायफलें लिये हुए वीर स्त्रियाँ प्रस्तर मूर्तियों की तरह खड़ी थीं। उन्हें यह सिद्ध करना था कि आज की स्त्रियाँ भी हथियार चला सकती हैं।

नेताजी सुभाष ने महिलाओं के समक्ष रानी लक्ष्मीबाई का जीवन-चरित्र जोशीले स्वर में कह सुनाया, जिससे उन वीरांगनाओं के रग-रग लहू से भर उठे।

२३ अक्टूबर १९४३ को जापान सरकार ने आज़ादहिन्द सरकार को मान लिया।

२४ अक्टूबर को आधी रात को, आज़ादहिन्द सरकार ने, ब्रिटेन और अमेरिका के विरुद्ध युद्ध घोषणा की।

इस घोषणा पर पन्द्रह मिनट तक ५० हज़ार जनसमूह हर्ष-ध्वनि करता रहा। नारों से दिशायें काँप उठीं।

२६ अक्टूबर को रिबेनट्राप ने आज़ादहिन्द सरकार को मान लिया। स्वतन्त्र बर्मा और फ़िलिपाइन सरकार ने भी उसे माना।

२८ अक्टूबर को नेताजी ने संसार के सभी देशों के पत्रकारों के सम्मेलन में भाषण दिया।

उन्होंने कहा—

"मेरा पहला स्वप्न, फ़ौज बनाने का पूरा हुआ। दूसरा स्वप्न,

आज़ादहिन्द सरकार बनाने का भी पूरा हुआ। अब एक स्वप्न बाकी —स्वतन्त्रता प्राप्ति और भारत से फिरंगियों का निष्कासन !"

८ नवम्बर १९४३ को आयरिश रिपब्लिकनों ने नेताजी को बधाई का तार भेजा। कोरिया, चीन, इटली और मंचुकूओ की सरकारों ने आज़ादहिन्द सरकार को मान्यता दी।

६ नवम्बर को नेताजी सुभाष टोकियो गये। वहाँ वृहत्तर पूर्वीय एशिया के देशों का सम्मेलन था।

उस सम्मेलन में तोजो ने घोषणा की कि अंडमान और निकोबार टापू आज़ादहिन्द सरकार के हवाले किये जा रहे हैं।

नेताजी ने अंडमान का नाम बदलकर 'शहीद' और निकोबार का 'स्वराज्य' रखने की घोषणा की।

२१ नवम्बर १९४३ को सुभाष बाबू शंघाई गये, जो उस समय जापान के अधिकार में था।

इसी दिन उन्होंने ग्रैण्ड थियेटर में भाषण दिया और स्वतन्त्र सेना का संघटन किया।

शंघाई के भारतीयों ने नेताजी के चरणों में अपनी समग्र सम्पत्ति समर्पित कर दी।

३० दिसम्बर १९४३ को नेताजी ने, भारत की पहली मुक्त-भूमि शहीद टापू पर पैर रखा और पोर्ट ब्लेयर पर राष्ट्रीय झण्डा फहराया।

२६ जनवरी १९४४ को रंगून में स्वाधीनता-दिवस मनाया गया। ६० हज़ार आदमियों की सभा में नेताजी सुभाष ने भाषण दिया।

जनवरी १९४४ में आज़ादहिन्द फ़ौज का दफ़्तर बर्मा में आ गया।

जब सुभाष बाबू हवाई जहाज़ द्वारा रंगून के हवाई अड्डे पर उतरे तो जापान, बर्मा तथा जर्मनी के दूतों ने आपका स्वागत किया।

रंगून आते ही सुभाष बाबू सबसे पहले भारत के अन्तिम सम्राट ज़फ़र के मज़ार पर फूल चढ़ाने गये।

जब वे वहाँ पहुँचे और मज़ार को नष्टप्राय: अवस्था में पाया तो नेताजी की आँखें आँसुओं से भर आईं।

कुछ दिनों बाद आज़ाद सरकार ने कर्नल लोकनाथन को शहीद टापुओं का चीफ कमिश्नर नियुक्त किया।

४ फरवरी १९४४ को आज़ादहिन्द फ़ौज ने अपना आक्रमण प्रारम्भ कर दिया।

युद्ध क्षेत्र के पीछे मेमयो अस्पताल में 'झाँसी की रानी' रेज़िमेन्ट की वीरांगनाओं को सेवा-सुश्रुषा का कार्य दिया गया। रेज़िमेन्ट की नायिका कैप्टेन लक्ष्मीबाई यहीं थीं।

वीरांगनायें केवल सेवाकार्य ही नहीं करना चाहती थीं, वरन् वे पुरुषों की तरह युद्धक्षेत्र में जाकर युद्ध करना चाहती थीं।

अन्त में नेताजी के पास रेज़िमेन्ट की सदस्याओं ने एक आवेदनपत्र अपने रक्त से हस्ताक्षर करके भेजा।

और नेताजी ने उनकी उत्कट अभिलाषाओं को दबाना अनुचित समझ, उन्हें रणक्षेत्र में जाने की आज्ञा दे दी।

उन दिनों अज़ादहिन्द फ़ौज वीरतापूर्वक अपने शत्रुओं पर आक्रमण-प्रत्याक्रमण कर रही थी।

उत्साह उसके साथ था और विजय उसके हाथ।

नेताजी सुभाष युद्धस्थिति का निरीक्षण करने के लिये मोर्चे पर आये हुए थे। उनके साथ अंगरक्षकों का एक दल था, जिसके नायक बसन्त कुमार मल्लिक और नीरा मल्लिक थे।

शाम हो चली थी।

नेताजी सुभाष अपने ख़ीमें में एकाकी बैठे हुए कुछ कागज़ात देख रहे थे। ख़ीमे के दरवाज़े पर सशस्त्र प्रहरी तैनात थे। उस समय किसी को ख़ीमे के अन्दर आने तथा नेताजी के कार्य में विघ्न डालने की आज्ञा नहीं थी।

नेताजी के ख़ीमें से कुछ दूर पर नीरा मल्लिक का ख़ीमा था। वह ज़मीन पर बिस्तरा लगा कर लेटी हुई कोई पुस्तक पढ़ रही थी।

बसन्त कुमार उस समय कहीं बाहर गया हुआ था।

एकाएक कुछ खटका हुआ और नीरा ने अपना सर उठाया।

उसने देखा कि ख़ीमे की पिछली दीवार फाड़ कर एक मनुष्याकृति अन्दर घुस आई है।

ख़ीमें में प्रकाश इतना तेज़ न था कि वह उस व्यक्ति को पहचान सकती, जो इस प्रकार चोरी-चोरी उसके ख़ीमे में घुस आया था—पता नहीं किस इरादे से।

"कौन है ?—"

कहती हुई नीरा ने अपना टार्च उठा कर उस व्यक्ति की ओर देखा।

तेज़ रोशनी में उसकी आकृति स्पष्ट हो उठी।

"कौन हो तुम ?—" खड़ी हो गई नीरा।

बायें हाथ में टार्च और दाहिने में रिवाल्वर था।

"रिवाल्वर नीचे कर लो नीरा !—" वह व्यक्ति बोला—"और ज्यादा ज़ोर से बोलो मत !"

उस व्यक्ति का स्वर कुछ पहचाना हुआ-सा लगा, जिससे नीरा चौंक पड़ी।

वह व्यक्ति आगे बढ़ने को हुआ तो गरज कर नीरा बोली—"वहीं ठहरो !...अपनी नकली दाढ़ी चेहरे पर से हटाओ...जल्दी करो...नहीं तो गोली मार दूँगी...."

उस व्यक्ति ने बिना कुछ कहे अपनी नकली दाढ़ी अलग कर दी।

और तब चौंक पड़ी नीरा।

"आप !...आप यहाँ ?—" वह अस्त-व्यस्त स्वर में बोली।

वह था जनरंजन।

जासूस इंस्पेक्टर जनरंजनराय।

सुभाष बाबू की खोज में फिरने वाला सरकारी कुत्ता !

"हाँ ! मैं ही हूँ नीरा !..." जनरंजन बोला—"मुझे यहाँ देखकर तुम्हें बहुत आश्चर्य हो रहा होगा...."

"जानते हैं कि आप इस समय कहाँ हैं ?—" नीरा ने पूछा।

"जानता हूँ !....मैं आज़ादहिन्द फ़ौज के शिविर में हूँ—"

"यहाँ आने का कारण ?—"

"अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति !–अपने अपमान का प्रतिशोध !..." जनरंजन ने कहा।

"आपका मतलब क्या है ?"

"सुभाष बाबू मेरी आँखों में धूल झोंक कर भाग आये थे—" जनरंजन बोला—"इन्होंने मुझे सरकार की आँखों में गिरा दिया। यही मेरा अपमान है। मैं सुभाष को पकड़कर पुनः सरकार की आँखों का तारा बनना चाहता हूँ—"

"सुभाष जैसे शेर को पकड़ने का साहस है आप में ?—" नीरा ने घृणापूर्ण स्वर में कहा।

"पकड़ने का साहस चाहे न हो—" जनरंजन बोला—"मगर छिप कर जान लेने की शक्ति है मुझमें नीरा !..."

"चुप रहिये !—" नीरा की आँखें लाल हो आई थीं।

इस समय उसके अन्तराल में भीषण संघर्ष हो रहा था। यह व्यक्ति जो उसके नेताजी के खून का प्यासा बन कर, छिप कर, यहाँ आया है, वह स्वयं उसका पति है, उसकी माँग के सिन्दूर का सहारा है !

तो वह क्या करे ?

क्या करे वह ?

"आप शत्रु के गुप्तचर हैं—!" नीरा विवशतापूर्ण स्वर में बोली—"तुरन्त यहाँ से चले जाँय..."

"नीरा !—" जनरंजन नीरा के एकदम पास आ रहा।

उसने नीरा का कोमल हाथ अपने हाथों में ले लिया।

नीरा ने प्रतिरोध न किया।

"मैं शत्रु का गुप्तचर अवश्य हूँ नीरा !—" जनरंजन धीरे से बोला—"परन्तु साथ ही तुम्हारा पति भी हूँ। मैं जानता हूँ कि भारतीय नारी, चाहे अपने पति के दुर्व्यवहार से विद्रोहिणी भले ही बन जाय परन्तु यह वह कभी नहीं सहन कर सकती कि उसका पति उसी के सामने अपना प्राण त्याग करे और वह खड़ी-खड़ी उसका मरना देखा करे !"

"चुप रहिये !...चुप रहिये आप !—"

सहमे स्वर में नीरा बोली। उसने आवेश से अपनी दोनों आँखें हथेलियों द्वारा बन्द कर लीं।

जनरंजन ने देखा कि तीर ठीक निशाने पर बैठा है। उसने एक स्त्री के कोमल हृदय को कर्त्तव्य की ठेप देकर, विचलित कर दिया था।

"आप चले जाँय !...मैं आपके पैर पड़ती हूँ, आप यहाँ से चले जाँय..."

"नीरा !...मेरी नीरा !...प्यारी नीरा !—"

जनरंजन ने नीरा के मर्मस्थान पर प्रेम की चोट मारी।

नीरा कटे वृक्ष की तरह जनरंजन की बाँहों में गिर पड़ी।

आज नीरा को न जाने क्या हो गया था।

"समय बहुत कम है नीरा !—" जनरंजन बोला—"आधी रात के वक्त मैं नेताजी के खीमे की ओर जाऊँगा। तुमसे केवल यही कहना

है कि तुम अपनी ओर से कोई ऐसा कार्य न करना, जो मेरे प्राण का ग्राहक बन जाय।"

"आप अनर्थ न कीजिये—" नीरा सिसकती हुई बोली—"वे देवता हैं—उनके प्राण लेकर आप क्या करेंगे?"

"नीरा!—" जनरंजन ने कहा—"इस समय सुभाष बाबू के प्राण में ही मेरी इज़्ज़त का सवाल रम रहा है....मैं यह कभी नहीं देख सकता कि मर मर के मैंने अपने लिये जो आदर इकट्ठा किया था, वह केवल एक विद्रोही के लिये नष्ट हो जाय।"

"आप मुझे पहले गोली मार दीजिये फिर चाहे जो कुछ कीजिये..."

"तुम्हें गोली मार दूँ—"जनरंजन धीरे से हँसा—"उसे गोली मार दूँ, जिसे कीचड़ से निकाल कर सर पर रखा था....जिसे प्रेम की देवी समझ कर हृदय पर बिठाया था?...यह नहीं होगा नीरा!"

"........"

नीरा चुप रही।

सिसकती रही।

"तुम मुझे छोड़ कर चली आई, मैंने तुम्हें कुछ न कहा—" जनरंजन बोला—"क्योंकि मेरे हृदय में तुम्हारे लिये प्यार था। यह हो सकता है कि हमारे-तुम्हारे मनोभावों में अन्तर रहा हो परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि प्रेम की पराकाष्ठा, घृणा तक पहुँच गई है...ख़ैर, जाने दो इन बातों को। मैं जा रहा हूँ। बसन्त भी अब आता ही होगा...और मैं अभी उनके सामने पड़ना नहीं चाहता, क्योंकि वह मेरे मार्ग में बाधक बन सकता है...."

"........"

नीरा आँसू और विवशता भरे नेत्रों से जनरंजन की ओर देखती रही। वही आज रात को नेताजी के पहरे पर रहेगी।

अब नेताजी का खून होगा तो वह किस प्रकार यह सब देख सकेगी ?

वह रोने लगी—रोती रही।

और जनरंजन पुनः नकली दाढ़ी लगा कर चुपके से खीमे के बाहर चला गया।

इस समय नीरा के हृदय में कर्त्तव्य और प्रेम का द्वन्द्व चल रहा था।

वह न जाने कब तक इसी अवस्था में सिसकती रही।

क्या करें, क्या न करें --यही वह निश्चय नहीं कर पा रही थी।

नेताजी देश के प्राण थे—उनके मरने पर भारत-भूमि के पैरों में परतन्त्रता की बेड़ियाँ पड़ी ही रह जातीं।

जनरंजन उसका पति था—उसके मरने पर उसके सौभाग्य का सिन्दूर, जीवन की सघन कालिमा में परिणत हो जाता।

आज से पहले नीरा के हृदय में अपने पति के प्रति इतने आकर्षक एवं प्रेमपूर्ण भाव पैदा नहीं हुए थे—हाँ, शादी के प्रारम्भिक कुछ महीने अवश्य आनन्दकारी प्रतीत हुए थे।

तो आज इतने दिन बाद नीरा के हृदय में, जनरंजन के प्रति इतना अपनत्व क्यों व्याप्त हो उठा ?

कदाचित दीर्घकाल के विछोह ने उस भावना की सृष्टि की हो ?

"नीरा !...क्या हो रहा है नीरा ?"

बसन्त आ गया था और खीमे के दरवाजे पर से पुकार रहा था।

नीरा ने चटपट अपनी आँखें पोंछ लीं।

वह अपने भैया को आँसू नहीं दिखाना चाहती थी।

"आई भैया !—"

कहती हुई वह बसंत के सामने जा खड़ी हुई।

"बड़ी उदास दीख रही है तू !—" बसंत ने पूछा।

"नहीं तो भैया !...."

नीरा ने अपनी व्यथा छिपाने की कोशिश की।

बसंत का भी मुख अत्यन्त गम्भीर था आज।

न जाने क्यों?

उस दिन दोनों में से किसी ने भी खाना नहीं खाया।

बसंत चुपचाप अपनी चारपाई पर जा लेटा और न जाने क्या-क्या सोचने लगा।

वह आज अत्यन्त व्यग्र था।

जनरंजन और नीरा, दोनों में से किसी को भी नहीं मालूम था कि बसंत ने खीमें के दरवाजे के पास खड़े होकर, उनकी प्रत्येक बात ध्यान-पूर्वक सुनी है।

और यही कारण था कि बसंत आज इतना चिन्तित था।

यदि वह नेताजी के प्राण रक्षार्थ जनरंजन को गोली मारता है तो उसकी बहन विधवा हो जायगी और वह जीवन भर तक उसके आँसुओं को देख देखकर तड़पता रहेगा।

और अगर वह नेताजी का वध हो जाने देता है तो स्वतन्त्रता की देवी उसके इस कुकृत्य पर भीषण अभिशापों की वर्षा करेगी।

तो बसंत क्या करे?

क्या करे बसंत, नेताजी की भी जान बच जाय और उसकी बहन को वैधव्य का दुःख भी न भोगना पड़े।

एकाएक बसंत उठ खड़ा हुआ।

नीरा अब तक अपने भैया के मौन से घबड़ा उठी थी और उसे इस प्रकार अचानक उठते देखकर और भी चिन्तित हुई।

"कहीं जा रहे हो क्या भैया!—" पूछा उसने।

"हाँ!...जरा नेताजी से भेंट करना था..." बसंत ने कहा और खीमें से बाहर हो गया।

बसंत ने यह निश्चित किया था कि वह नेताजी से भेंट करेगा और उन्हें किसी बहाने वहाँ से दूर जाने को बाध्य करेगा।

परंतु उसकी यह आशा सफलीभूत न हुई।

वह कई बार नेताजी के खीमें के दरवाजे तक गया लेकिन हर बार उसने नेताजी को छोटी-सी मेज के पास बैठे, कागजों में व्यस्त देखा।

शायद वे कोई आवश्यक स्कीम तैयार कर रहे थे।

चिन्तित हो उठा बसंत !

वह देवता, जिसने एक दिन उसके प्राण बचाये थे, आज स्वयं प्राण खोने वाला था—

और बसंत कुछ नहीं कर सकता था।

वह लौट आया, अपने खीमें में।

देखा तो नीरा सैनिक वस्त्र पहने, रायफल कन्धे से लटकाये, कहीं जाने को प्रस्तुत थी।

"कहाँ नीरा !..." पूछा बसंत ने।

"अब पहरा बदलने का समय आ पहुँचा भैया !—" नीरा बोली—"आज दस बजे रात से ४ बजे तक, नेताजी के शिविर में मेरा पहरा है..."

"अच्छा जाओ !..." कहकर बसंत पुनः अपने बिस्तरे पर जा पड़ा।

नीरा चली गई।

उस समय रात के दस बजे थे।

बसंत सोच रहा था—

नीरा आखिर स्त्री ही तो है। उसका हृदय उतना ही कोमल होगा, जितना कि अन्य स्त्रियों का।

वह प्रेम के वशीभूत होकर कर्त्तव्य की अवश्य बलि दे देगी।

आज जनरंजन की बातों से वह इतनी विचलित हुई थी कि उससे यह स्पष्ट था कि नीरा के विचार चाहे जनरंजन के प्रतिकूल हों परंतु उसके हृदय में जनरंजन के लिये अगाध प्रेम अवश्य है।

और आज इस काली रात में, उसका यह प्रेम, प्रलय की सृष्टि न कर दे।

परंतु बसंत भी तो अपनी बहन के प्रेम के वशीभूत होकर अपने कर्त्तव्य-पथ से विमुख हुआ जा रहा था।

क्यों नहीं वह रायफल उठाकर नेताजी के ख़ीमें के पास छिप रहता, ताकि छिप कर आते हुए जनरंजन को वह अपनी गोली का निशान बना सके और परतंत्र भारत को आज़ाद करने का बीड़ा उठाने वाले देवता की जान बचा सके।

बसंत ने अपना हृदय टटोला।

यह कार्य वह नहीं कर सकता था।

वह जनरंजन के प्राण संकट में नहीं डाल सकता था।

नीरा उसकी बहन थी—जनरंजन उसका बहनोई था।

ममत्व का भीषण शोर उठ खड़ा हुआ था, बसंत के अंतस्तल में।

परंतु थोड़ी ही देर में, सघन अंधकार के मध्य, आशा की एक किरण चमकी।

बसंत ने निश्चय किया कि ज्योंही जनरंजन नेताजी को गोली मारेगा, त्योंही पास ही खड़ा हुआ बसंत भी स्वयं अपने को गोली मार लेगा।

तो लोग यही समझेंगे कि बसंत ने ही नेताजी को गोली मारी।

और बसंत भी मरते समय यह बात स्वीकार कर लेगा, ताकि उसके बहन-बहनोई पर कोई आपत्ति न आये।

दुनिया उस पर थूकेगी तो थूकने दो।

वह यही करेगा।

नेताजी की जान बचाना उसके बूते के बाहर की बात है—

परंतु अपनी बहन के लिये, वह अपने बहनोई की जान अवश्य बचायेगा।

और उठ खड़ा हुआ बसंत।

रायफ़ल की ओर चल पड़ा।

उस समय रात के बारह बज रहे थे।

× × × ×

आधी रात !

जंगल की नीरवता बड़ी ही भयंकर लग रही थी।

उसी के मध्य आज़ादहिन्द फ़ौज के नायक, नेताजी सुभाष का ख़ीमा सर ऊँचा उठाये खड़ा था।

दरवाज़े पर भरी-भराई रायफ़ल लिये नीरा खड़ी थी।

अन्दर नेताजी अब भी अकेले मेज़ के पास बैठे हुए, आज़ादी लेने के मार्ग का चिन्तन कर रहे थे।

एकाएक किसी की पदचाप सुन पड़ी।

नीरा का हृदय धड़क उठा।

जनरंजन ही होगा...उसने सोचा !

सचमुच वह जनरंजन ही था।

दबे पाँव वह ख़ीमें के पिछवाड़े आया।

इस समय नीरा का सारा बदन काँप रहा था—न जाने क्यों ?

धीरे-धीरे नीरा ख़ीमें के बगल में आई और वहीं से छिप कर जनरंजन की कार्रवाई देखने लगी।

जनरंजन और नीरा, दोनों में से किसी को भी यह मालूम न था कि ख़ीमे के दूसरी ओर एक मनुष्याकृति खड़ी हुई, जनरंजन का वह कार्य देख रही थी।

वह था बसन्त कुमार।

जनरंजन ने एक छुरी निकाल कर धीरे से ख़ीमें की दीवार में एक छेद बनाया।

उसने उस छेद में से आँख लगा कर अन्दर की ओर झाँका।

धुँधली रोशनी हो रही थी और कोई व्यक्ति मेज़ के पास बैठा हुआ कुछ लिख रहा था। उसकी पीठ उस ओर थी।

जनरंजन को पक्का विश्वास हो गया कि वह व्यक्ति सुभाष बाबू ही हैं।

उसका हृदय हर्ष से उछलने लगा।

आज इतने दिनों के बाद उसे यह सुअवसर प्राप्त हुआ था।

उसने सतर्कतापूर्वक अपने चारो ओर देखा—फिर एक भरी हुई पिस्तौल निकाली।

छिपी खड़ी हुई नीरा ने अपनी हथेलियाँ अपनी आँखों पर रख लीं।

जनरंजन उस छेद में आँख लगाकर न जाने क्या पुनः देखने लगा, शायद अपना लक्ष्य ठीक कर रहा हो।

दूसरी ओर खड़े हुए बसंत ने रायफ़ल की नली अपने सीने की ओर कर ली।

वह अभागा युवक अपने प्राण देना चाहता था।

जनरंजन को एकदम तैयार देखकर नीरा का हृदय हाहाकार कर उठा।

उफ़!

उसकी शिथिलता से, आज उसका नेता, उसका देवता, उसके देश का विद्रोही शेर—मृत्यु को प्राप्त हो रहा था।

और वह कुछ भी नहीं कर सकती थी।

उसकी अन्तरात्मा उसे धिक्कार उठी।

उसके सामने, चालीस करोड़ दुखियों की करुण चीत्कार, साकार होकर खड़ी हो गई।

उसने धीरे से, कंधे पर से अपनी रायफ़ल उतारी।

वह, भरी हुई रायफ़ल अपने हाथ में लेकर खड़ी हो गई।

जनरंजन भी उस समय तक पूर्ण तैयारी कर चुका था।

उसने अपनी पिस्तौल की नली उस छेद में डाल दी।

उसकी उँगली घोड़े पर जा पड़ी।

सन्निकट ही था कि जनरंजन की पिस्तौल आज़ादी के दीवाने सुभाष को सदा के लिये सुला देती कि उसी समय, नीरा के हाथ की रायफ़ल, दिशाओं को प्रताड़ित करती हुई गरज उठी।

दुम्म की आवाज़ चारों ओर प्रसारित हो गई।

जनरंजन का तड़पता हुआ शरीर, कटी डाल की तरह, भूमि पर लहूलुहान गिर पड़ा।

आज एक देवी ने, अपने चालीस करोड़ भाइयों की स्वतंत्रता के लिये, अपनी माँग के सिन्दूर में अपने हाथों आग लगा ली।

आज एक भारतीय नारी ने अपने देश के लिये स्वयं अपने पति की हत्या की थी।

नीरा ने रायफ़ल पुनः अपने कंधे पर लटका ली। उसी समय किसी ने उसके कंधे पर हाथ रख दिया।

नीरा चौंक पड़ी।

घूमकर देखा उसने—

उसके सामने मंद-मंद मुस्कराते हुए, भारत के भाग्य-विधाता स्वयं नेताजी सुभाष खड़े थे।

"शाबास!..."

नेताजी बोले, हर्षित स्वर में।

"नेताजी!...देवता!..."

कहती हुई नीरा धड़ाम से नेताजी के चरणों में गिर पड़ी।

नेताजी ने उसका हाथ पकड़कर उठाया।

"उठो नीरा!..."

उन्होंने कहा।

तब तक बसंत आदि भी वहाँ आ पहुँचे थे।

सब ने नेताजी को झुक कर सम्मान-प्रदर्शन किया।

"देखो!...भारत की इस देवी को देखो!—"

नेताजी ने कहा और नीरा की ओर संकेत किया।

"आज़ादी की इस प्रतिमा की ओर देखो...जिसने अपने नेता के लिये अपने अरमानों का खून किया है..."

"........."

सब चुपचाप खड़े थे।

"यह मेरी मृत्यु का षड्यंत्र था—" नेताजी कहने लगे—"मेरे गुप्तचरों ने मुझे प्रत्येक बात विस्तारपूर्वक बताई। मैं सारी घटना से अवगत हो गया। मेरे खीमें में मेरे स्थान पर मेरा एक सहकारी बैठा और मैं छिपकर इधर-उधर की खबरें लेने लगा..."

"........."

मुझे मालूम है..." नेताजी बोले—"सब कुछ मालूम है...नीरा देवी के हृदय का और बसंत कुमार के दिल की बेचैनी का कारण मैं भली प्रकार जानता हूँ..."

"आप सर्वज्ञ हैं देवता!—" बसंत ने कहा।

"मैं छिपा हुआ सब कुछ देख रहा था—" नेताजी कहते रहे—"यदि मैं चाहता तो नीरा को रायफल चलाने से रोक सकता था और मनरंजन को भी क्षमा कर सकता था...मगर मैंने ऐसा न किया..."

"........."

सबने प्रश्न-सूचक दृष्टि से नेताजी की ओर देखा।

"मैं देखना चाहता था कि भारतीय-देवियों में आत्म-बलिदान का साहस है या नहीं?..."

"........."

"मैं जानना चाहता था कि आज की नारी के हृदय में अपने देश के लिये अधिक प्रेम है या अपने पति के लिये..."

"......"

"मैं समझना चाहता था कि हमने जिन-जिन लोगों पर विश्वास किया है, वे वास्तव में विश्वसनीय हैं या नहीं..."

"......"

"मैं बहुत प्रसन्न हूँ नीरा !—" नेताजी बोले—"तुमने अपने को नारियों में सर्वश्रेष्ठ प्रमाणित कर दिया है। तुम मेरी दृष्टि में आदरणीय हो। मैं तुम्हारा नमन करता हूँ...भारत की देवी ! मैं तुम्हारे चरण छूता हूँ..."

लड़ाई भयंकर रूप से होती रही। आज़ादहिन्द फ़ौज की प्रगति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही जा रही थी। स्वतंत्रता के लिये मर मिटने वाले वीर अपनी जान की बाज़ी लगा कर, रणभूमि में अपना खून बहा रहे थे।

१८ मार्च सन् १९४४ को आज़ादहिन्द फ़ौज ने, बर्मा और भारत की सीमा पार की तथा अपने देश की पवित्र-भूमि में पैर रखा।

उस समय अपनी मातृ-भूमि का दर्शन करके सैनिक हर्षोत्फुल्ल हो उठे। उन्हें ऐसा लगा, जैसे अब वे स्वराज्य पा गये हों और अब उनका महान् देश उन महान पुरुषों का ही हो।

शीघ्र ही आज़ादहिन्द फ़ौज ने कोहिमा पर अपना अधिकार कर लिया।

नेताजी सुभाष ने यह सुना तो उनके हर्ष का पारावार न रहा। उन्होंने रणभूमि के संचालक, मेजर जेनरल शाहनवाज़ को बधाई दी और कहा कि हमने भारतभूमि में चरण रखा है। अब जल्द ही हम विजयी होंगे।

सुभाष बाबू कुछ दिनों तक रणक्षेत्र का निरीक्षण करके पुनः रंगून चले आये।

२० मार्च १९४४ को जापानी राजदूत मि० हाचिया, नेताजी से भेंट करने रंगून आये।

वे आज़ाद सरकार के वैदेशिक मंत्री कर्नल चटर्जी तथा प्रकाशन मंत्री मि० ऐय्यर से मिले और कहा कि वे नेताजी सुभाष से मिलना चाहते थे।

जापानी, नेताजी सुभाष का कितना आदर करते थे, वह इसी बात से स्पष्ट है कि जब जापानी राजदूत मि० हाचिया, कर्नल चटर्जी के आफ़िस में घुसे तो सामने ही टँगी हुई नेताजी की फोटो देख कर तुरत रुक गये और अटेन्शन होकर मिलिटरी सैल्यूट दिया, तब आगे बढ़े।

यही नहीं, जापान सरकार का यह आदेश था कि उच्च से उच्च जापानी आफ़िसर, सुभाष बाबू के सामने अथवा उनके चित्र के सामने आते ही मिलिटरी सैल्यूट दे।

जापानी सरकार की दृष्टि में सुभाष बाबू उतने ही आदरणीय थे, जितने कि स्वयं जापान सम्राट!

राजदूत मि० हाचिया का आवेदन-पत्र नेताजी के समक्ष उपस्थित किया गया। उसमें राजदूत ने सुभाष बाबू से मिलने की प्रार्थना की थी।

नेताजी ने राजदूत से, उनके राजदूत होने का प्रमाणपत्र माँगा परंतु मि० हाचिया तो अपना प्रमाणपत्र टोकियो ही भूल आये थे।

अतः सुभाष बाबू ने अपने सहकारी द्वारा, मि० हाचिया से मिलने में अपनी असमर्थता प्रकट की और कहा कि वे अपना प्रमाणपत्र दिखलाने पर ही उनसे भेंट कर सकते हैं।

मि० हाचिया ने जापान सरकार को शीघ्र ही प्रमाणपत्र भेजने के लिये लिखा परंतु यातायात-साधनों की गड़बड़ी से वह प्रमाणपत्र मि० हाचिया को शीघ्र न मिल सका।

नेताजी सुभाष जापानी राजदूत से न मिले, उसका एक बहुत बड़ा कारण था।

सुभाष बाबू यह भली प्रकार जानते थे कि आजकल ब्रिटिश गुप्तचर उनके खून के प्यासे होकर इधर-उधर घूम रहे हैं और उनमें से बहुत से व्यक्ति उनकी सेना में भी प्रविष्ट हो चुके हैं।

नेताजी ने शीघ्र ही, कैप्टेन शाहनवाज़, कैप्टन सैगल तथा ढिल्लन के नाम एक आज्ञा-पत्र प्रेषित किया। जिसमें उन्हें आज्ञा दी गई थी कि वे आज़ादहिन्द फ़ौज में से ऐसे व्यक्तियों की खोज करें, जो गद्दार हों अथवा उनका शीघ्र ही कोई भयंकर कार्य करने का इरादा हो।

इस आज्ञापत्र को पाते ही तुरंत आज़ादहिन्द फ़ौज का निरीक्षण शुरू हुआ और कितने ही संदिग्ध व्यक्ति पकड़े गये।

उन व्यक्तियों में मे कितने ही तो फ़ौज के उच्च-पदस्थ अधिकारी थे, जिनका इरादा देश की आज़ादी के लिये लड़ती हुई उस फ़ौज के साथ विश्वासघात करने का था।

ऐसे व्यक्तियों में से कुछ को भयानक मौत की सजायें दी गईं, कुछ को कैद कर रखने का हुक्म हुआ और अधिकांश फ़ौज में से निकाल दिये गये।

अब आज़ादहिंद फ़ौज विश्वासघाती तथा देशद्रोही सैनिकों से खाली हो गई।

शीघ्र ही फ़ौज ने ज़बर्दस्त लड़ाई छेड़ दी। एक के बाद एक सफलता उन्हें मिलती गई।

मार्च १९४४ में कैप्टेन शाहनवाज ने अपने वीर योद्धाओं के सहयोग से पोपा पहाड़ियों पर तिरङ्गा झंडा लहरा दिया।

अप्रैल १९४४ को झाँसी रानी रेजीमेंट की वीराङ्गनायें, जब मैदाने-जङ्ग में पहुँचीं, तो उनके पास अपूर्व उत्साह के अतिरिक्त कुछ नहीं था। खाना, कपड़ा, बारूद सब की कमी थी।

मोरचा घने जङ्गलों, पहाड़ों और घाटियों में बना था। वहाँ के निवासियों ने योद्धा तो देखे थे परंतु सैनिक वेश में वीर रमणियाँ नहीं देखी थीं।

झाँसी रानी रेजीमेंट की रमणियाँ वहाँ के निवासियों के लिये प्रदर्शनी की एक वस्तु हो गईं।

दूर-दूर से लोग इन वीराङ्गनाओं का दर्शन करने के लिये आये।

ब्रिटिश मोर्चे पर भी यह समाचार फैल गया कि उनका सामना करने के लिये शत्रु के मोर्चे पर पुरुष नहीं, वरन् स्त्रियाँ हैं।

एक दिन!

रात के तीन बजे महिला सैन्य का एक दल छिपे हुए शत्रु का मर्दन करने लिये आगे बढ़ा।

एक पहाड़ी पर पहुँचकर वह दल रुक गया। ब्रिटिश सेना अब केवल एक मील की दूरी पर रह गई थी।

जिस समय महिला सैन्य-दल को फ़ायर की आज्ञा मिली, उस समय वे वीर नारियाँ अपना नारीत्व भूलकर रणचण्डी बन गईं।

धड़ाधड़ गोलियाँ बरसने लगीं।

हुक्म पाते ही रमणियाँ अपनी संगीनें लेकर शत्रु सेना की ओर दौड़ीं।

घाटी उतरने में कितनों के ही प्राण गये, परंतु शेष देवियाँ आगे बढ़ती ही गईं।

उन्हें अपनी संगीन की नोंक के आगे शत्रु का वक्ष दृष्टिगोचर हो रहा था।

वे पागल युवतियाँ, चालीस करोड़ सिसकती हुई आत्माओं के लिये, स्वातंत्र्य भूमि में अपने प्राणों की आहुति देने कूद पड़ीं।

'जय हिन्द' के प्रबल घोष से घाटी गूँज उठी।

शत्रु उन रणचण्डियों का वेग सम्हाल न सके। उसने घुटने टेक दिये।

पुरुषों के घमण्ड को नारीत्व का वेग बहा ले गया।

× × ×

अप्रैल १९४४ में आज़ादहिन्द बैंक की स्थापना की गई। कितने ही सेठ साहूकारों ने अगम सम्पत्ति का दान कर उस बैंक को स्थायी बनाया।

२ महीने तक फौज के मोर्चों का निरीक्षण करके नेताजी सुभाष ४ जुलाई १९४४ को रंगून वापस लौटे।

उसी दिन नेताजी सप्ताह प्रारम्भ हुआ।

एक साल पहले इसी दिन सिंगापुर में पूर्वी एशिया के ३० लाख भारतीयों ने स्वतंत्रता की प्रतीज्ञा की थी।

रंगून का जुबिली हाल दर्शकों से भरा था। सड़कों पर भी लाउड-स्पीकर लगाने पड़े थे। सैनिकों का उत्साह अपार था।

सभा समाप्त होने पर लोगों को हटाने में डेढ़ घंटा लगा।

५ जुलाई १९४४ को नेताजी ने ब्रिटिश सरकार के दिल्ली रेडियो का परदा फाश किया और अपने सैनिकों को 'सरदारे जंग' और 'वीरे हिन्द' तग़में भी दिये।

उसी दिन सुभाष बाबू का तुलादान भी हुआ।

नेताजी सोने, चाँदी और जवाहरातों से तौले गये।

आज़ादी के दीवाने नर नारियों ने अपने नेता के लिये अपने उप-भोग की सारी वस्तुयें प्रदान कर दीं।

गहने, चूड़ियाँ, हार, अँगूठियाँ, चैनें आदि तरह-तरह की स्वर्ण वस्तुओं से तराजू का पलड़ा भर गया।

एक मुसलमान सज्जन ने आज़ादहिन्द सरकार के लिये एक करोड़ रुपया दान किया।

६ जुलाई को नेताजी ने रेडियो पर गांधीजी को सम्बोधित कर भाषण किया—

"ब्रिटेन की जनता और ब्रिटिश सरकार में भेद निकालना व्यर्थ है। दोनों कट्टर साम्राज्यवादी हैं। मुझे धुरी राजनीतज्ञ धोखा नहीं दे सकते। दुनिया में सबसे अधिक धोखेबाज़ अंग्रेज़ होते हैं। उनसे जब मैं लड़ चुका हूँ तो धुरी राजनीतज्ञों का क्या कहना?

"नई दिल्ली के वायसराय भवन पर तिरंगा झंडा फहरा कर ही हम दम लेंगे...राष्ट्रपिता पूज्य बापू! हमें आशीर्वाद दीजिये..."

१० जुलाई १९४४ को एक विशाल रैली में भाषण करते हुए नेताजी सुभाष ने कहा—

"भारत की जनता का आन्दोलन तभी सफलीभूत हो सकता है, जब कि उसे किसी बाहरी राष्ट्र की सहायता प्राप्त हो सके।

"इसीलिये हमने दूसरा मोर्चा खोला है। शत्रु शक्तिशाली है; फिर भी हमारे पास विश्वास और बलिदान का हथियार है...."

११ जुलाई १९४४ को बहादुरशाह के मकबरे पर आज़ाद हिन्द फ़ौज ने परेड की।

सुभाष बाबू ने कहा—

"हमें १८५७ के तथा और बाद को हुए ब्रिटिश अत्याचारों का बदला लेना है। भारतीय अपने देश से प्रेम तो करते हैं परंतु अपने शत्रु से घृणा करना उन्हें नहीं आता। हम उन्हें घृणा करना सिखायेंगे। शत्रुओं के रक्त से हम अपनी प्रतिशोधाग्नि प्रज्वलित करेंगे।

"इसके लिये हमें अपना रक्त-दान करना पड़ेगा। अपने खून से हम पुराने पाप धो डालेंगे और आज़ादी का मूल्य चुका कर शत्रु से बदला लेंगे।"

१ अगस्त १९४४ को तिलक-पुण्य-तिथि मनाई गई। शाम को एक सहभोज हुआ, उसमें नेताजी ने कहा—

"यदि पूज्य बापू का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन सफल हुआ होता तो मैं अपनी यह लड़ाई बन्द कर देता। पर स्वार्थी गोरों ने महात्माजी का यह प्रस्ताव ठुकरा दिया है और अब उसका प्रतिकार करने के लिये केवल हमारा यत्न ही अवशेष है..."

१३ अगस्त १९४४ को नेताजी सुभाष ने, आज़ादहिन्द संघ के प्रमुख कार्यकर्त्ताओं के समक्ष वर्तमान युद्धस्थिति पर एक भाषण दिया—

"हमने बहुत देर करके अपना युद्ध प्रारम्भ किया। हमारे रास्ते वर्षा ऋतु के कारण ख़राब हो गये हैं। नदियों की धारा में, उल्टी दिशा की ओर हमें जाना पड़ता है।

"हम इम्फल नहीं ले सके। बरसात के पहले हमने अराकान में शत्रु को रोका, कलादान में उसको हराकर आगे बढ़े, टिड्डिम, पालेल और कोहिमा—सब पर हमने अपना अधिकार किया।

"हाका क्षेत्र में हमने शत्रु को रोक दिया। पानी बरसने पर शत्रु ने कोरिया-इम्फल रोड पर अपना अधिकार कर लिया।

"इन युद्धों ने हमारे सैनिकों में दृढ़ आत्मविश्वास भर दिया है। वे केवल संगीनें लेकर भी शत्रु पर टूट पड़ते हैं। ब्रिटिश सेना के भारतीय हमारी ओर आने को तैयार हैं। जापानी भी जान गये हैं कि हम सफलतापूर्वक लड़ सकते हैं..."

वर्षा ऋतु प्रारम्भ हो जाने के कारण सुप्रीम कमाण्डर नेताजी सुभाष ने, २१ अगस्त १९४४ को युद्ध की प्रगति स्थगित कर देने की घोषणा की और भावी आक्रमण के लिये तैयारी करने को कहा।

सितम्बर १९४४ तक शहीद तथा स्वराज्य टापुओं पर कर्नल लोकनाथन शासक बनकर रहे।

सितम्बर के प्रथम सप्ताह में बर्मा के भारतीय-स्वातंत्र्य-संघ का सम्मेलन हुआ।

२१ सितम्बर १९४४ को रंगून में यतीनदास-पुण्य-तिथि एवं शहीद-दिवस मनाया गया।

जुबिली हाल ठसाठस भरा हुआ था।

वक्ताओं ने आज तक शहीद हुए देश-भक्त वीरों एवं वीराङ्गनाओं का अभिनन्दन किया।

लाहौर जेल में अनशन कर, घुल-घुलकर मरने वाले यतीनदास की बलिदान-कथा दुहराई गई।

श्रोताओं के नेत्रों में आँसू छलछला आये।

नेताजी सुभाष ने भाषण दिया—

"हमारी मातृभूमि स्वाधीनता चाहती है। वह स्वतंत्र हुए बिना नहीं रह सकती। परंतु स्वतंत्रता बलिदान चाहती है—सर्वस्व का त्याग चाहती है। क्रान्तिकारियों की तरह आपको भी अपना सर्वस्व निछावर करना होगा।

"युद्ध-क्षेत्र पर भेजने के लिये आपने-अपने पुत्रों को दिया है परंतु स्वतंत्रता देवी की अभी परितृप्ति नहीं हुई है।

"उसे तृप्त करने का रहस्य मैं बताता हूँ। आज वह केवल फ़ौज के लिये योद्धा और सैनिक ही नहीं चाहती है, वरन् वह चाहती है, विद्रोही!...पुरुष विद्रोही और स्त्री विद्रोही—जो आत्मघाती दलों में शामिल होने को तैयार हों...जो अपने शरीर से बहती हुई खून की नदियों में शत्रु का साम्राज्यवाद डुबो देने को तैयार हों..."

तुम हमको ख़ून दो!
मैं तुम्हें आज़ादी दूँगा!
आज़ादी की यही माँग है—
तुम हमको ख़ून दो!

मैं तुम्हें आज़ादी दूँगा !

गम्भीर गर्जन सुनकर श्रोता स्तब्ध रह गये। सुभाष की जादूभरी वाणी ने सभी के अन्तस्तल में नवचैतन्य एवं स्फूर्ति भर दी।

सब चिल्ला पड़े—

"हम तैयार हैं..."

"हम खून देंगे !..."

"हम अपना खून देंगे..."

"सुनिये !..." नेताजी ने गम्भीर स्वर में कहा—"आवेश में आकर कोई बात कह जाना न्यायोचित नहीं....आप इस पर पूर्णतया विचार कर लें...."

"हमने विचार कर लिया है—" लोग चिल्ला पड़े—"अपने नेताजी की अंजुलि, हम में से प्रत्येक अपने खून से भर देगा..."

"नहीं ! हम यह नहीं चाहते—" नेताजी ने कहा—"हम केवल यह चाहते हैं कि आप इस प्रतिज्ञापत्र पर अपने रक्त से हस्ताक्षर कर दें।"

"......"

उपस्थित जनता ध्यानपूर्वक नेताजी का वक्तव्य सुन रही थी।

"हस्ताक्षरकर्त्ता को अपने अस्त्र से अपना खून बहाना होगा..." नेताजी बोले—"और खून में कलम डुबोकर हस्ताक्षर करना होगा..."

"हम रक्तदान को प्रस्तुत हैं..."

"हम अपना खून देंगे..."

कहती हुई सारी जनता नेताजी की ओर दौड़ पड़ी।

नेताजी ने देखा—सबसे आगे बसंत कुमार मल्लिक और नीरा मल्लिक थे।

किसी ने चाकू से, किसी ने आलपीन से अपना रक्त निकाला।

टप-टप करके रक्त बिन्दुओं से एक प्याला भर गया।

आज़ादी के लिये तड़पते हुए शेरों ने खून से अपना हस्ताक्षर किया।

वह दृश्य अवर्णनीय था।

प्राचीन भारत के स्वर्णिम युग की याद आ रही थी।

ऐसे वीरों का राष्ट्र भला कभी परतंत्र रह सकता है?

ब्रिटिश साम्राज्यवाद की क़ब्र खोदने को तैयार खड़े थे—वे त्यागी वीर!

२ अक्टूबर १९४४!

रंगून में गाँधी-जयंती समारोहपूर्वक सम्पन्न हुई।

हर एक भारतीय के घर पर तिरंगा झंडा लहरा रहा था।

सवेरे आजादहिन्द फ़ौज ने झंडाभिवादन किया। भारतीयों ने स्वाधीनता की प्रतिज्ञा दुहराई। हजारों भारतीयों ने स्वतंत्रता के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर किये।

नेताजी सुभाष ने अपने भाषण में कहा—

"गांधीजी मेरे गुरु हैं, मैं अपने गुरु की स्मृति को प्रणाम करता हूँ।

"इस क्षितिज के पार, इन बलखाती हुई नदियों और लहराते हुए जङ्गलों के पार, हमारी स्वर्णभूमि है—हमारे सपनों का संसार!

"वह देश, संसार का सबसे सुन्दर देश है। उसके आकाश में चाँद अजब रोशनी फेंकता है। उसके पेड़ों की डाल पर विहग अजब मिठास से बोलते हैं और उन पेड़ों की छाँह में बैठकर, वहाँ के ऋषियों ने जीवन के विचित्र रहस्य हमें बताये हैं।

"महात्मा गांधी, जिनकी जयंती आज हम मना रहे हैं, जगत् गुरू एवं आधुनिक ऋषि है। उनकी अहिंसा ही मानवता की एकमात्र आशा है।

"लेकिन गुलाम देश की अहिंसा, अहिंसा नहीं कमजोरी कहलाती है।

"इसलिये पहले हम शस्त्र द्वारा अपने देश को आजाद करेंगे। मौत की मंजिल पार करते हुए हमें दिल्ली पहुँचना है।

'जिस दिन लाल क़िले पर तिरंगा झंडा लहरायेगा, उस दिन महा-

मुक्ता-जटित सिंहासन पर हम अपने गुरु महात्मा गांधी को बिठायेंगे, गंगाजल से उनके चरण धोयेंगे और उनसे कहेंगे कि अब आप संसार का नेतृत्व अपने हाथ में लीजिये। अब आप की अहिंसा की आवश्यकता है मेरे गुरुदेव !"

उक्त वक्तव्य से यह स्पष्ट है कि आन्तरिक विचारों तथा कार्य-प्रणाली में विभिन्नता होते हुए भी, नेताजी सुभाष के हृदय में पूज्य बापू के लिये कितना आदर-भाव था।

वे महात्मा गांधी को अपना गुरु समझते थे।

परन्तु वे अपने गुरु गांधी के अहिंसा सिद्धान्त को भारत जैसे पर-तन्त्र देश के लिये हानिकर समझते थे। उनकी दृष्टि में, एक गुलाम देश का अहिंसा की रट लगाना, दूसरों की दृष्टि में अपनी शक्तिहीनता प्रदर्शित करना है।

यदि शक्ति एवं साधन रहते हुए अहिंसा का व्रत धारण किया जाय तो वह आदरणीय हो सकता है परन्तु यदि अपनी विवशता एवं निर्बलता पर परदा डालने के लिये अहिंसा शस्त्र का उपयोग किया जाय, वह नेताजी सुभाष की दृष्टि में उचित नहीं था।

वे तो क्रान्ति चाहते थे।

अपनी अपरिमित शक्ति द्वारा शत्रु के दर्प को चूर-चूर करना चाहते थे।

अक्टूबर १९४४ के मध्य में नेताजी पुनः युद्धभूमि का निरीक्षण करने गये।

वे मोर्चे के हर सिपाही के पास आये और उनसे सुख-दुख का समाचार पूछा।

उन्होंने कहा—"यदि किसी सिपाही को मृत्यु से डर हो तो वह निर्भय होकर कह दे...मैं उसे पीछे भेज दूँगा..."

परन्तु उनमें से एक भी सिपाही ऐसा न निकला, जिसने स्वातन्त्र्य-संग्राम में प्राण विसर्जन करने के बदले, पीछे जाकर प्राणों की रक्षा करनी चाही हो।

नेताजी जब बसंत कुमार मल्लिक के सामने आये तो उन्होंने देखा कि कीचड़ में चलने के कारण उसके पैर मिट्टी से सने हुए हैं।

वे हँस पड़े बोले—"बहुत भाग्यशाली हो तुम बसन्त!...तभी तो मातृभूमि की प्यारी-प्यारी मिट्टी तुम्हारे पैरों से चिपकी रहती है..."

"........"

बसन्त कुछ न बोला।

"लाओ!—" नेताजी बोले—"मैं तुम्हारे पैर छूकर उस पवित्र मिट्टी का स्पर्श तो कर लूँ..."

और नेताजी बसन्त का पैर पकड़ने को झुके, तब तक बसन्त नेताजी के पैरों पर लोट गया था।

नेताजी का वह प्रेम देखकर सभी गद्‌गद् हो उठे।

उनके प्रेम के ही कारण आज़ादहिन्द फ़ौज के वीर सिपाही प्यास और भूख को तिलांजलि देकर लड़ते रहते थे।

कभी-कभी उन्हें दो-दो चार-चार रोज तक पानी नहीं मिलता था। हफ्तों बिना खाये-पिये ही वे युद्ध करते थे।

जब नेताजी अपने ख़ीमे में वापस लौटे तो नीरा ने एक पत्तल में उनके सामने भोजन ला रक्खा।

"बड़ा अच्छा भोजन बनाया है तुमने नीरा देवी!—" नेताजी ने पत्तल की ओर देखकर कहा।

"........"

मीरा चुपचाप खड़ी रही।

नेताजी पत्तल में से कौर उठाकर खाने लगे।

आँसू आ गये नीरा की आँखों में यह देखकर कि देश का वह महान् नेता, आज़ादी लेने के लिये, आज उबाली हुई घास खा रहा था—सो भी अत्यन्त हर्ष के साथ।

मोरचे पर खाद्यान्न की कमी थी और आजकल तो अन्न का एक दाना भी दुर्लभ था।

सैनिक केवल घास-पत्तियों पर निर्वाह करते थे।

२१ अक्टूबर १९४४!

नेताजी मिंगलडन में प्रथम इनफैण्टरी ब्रिगेड के समक्ष भाषण कर रहे थे।

जब वे भाषण दे चुके तो बटालियन को आगे बढ़ने की आज्ञा हुई।

उसी समय तेज़ी से उड़ने वाले शत्रु के लड़ाकू हवाई जहाज़ ऊपर दिखाई दिये। वे तुरन्त ही गोते लगा-लगाकर गोले बरसाने लगे।

इधर से ऐन्टी ऐयरक्रैफ्ट गन्स ने भी गोले उगलने शुरू कर दिये।

शत्रु ने नेताजी को नष्ट करने का पूरा निश्चय कर लिया था।

विमानों के दल के दल आते, गोता लगाते और बम-वर्षा करके भाग खड़े होते।

धुएँ का अम्बार आकाश पर छा गया था।

नेताजी उस समय सेना का सैल्यूट ले रहे थे।

उनके साथ के आफ़िसरों ने उनसे प्रार्थना की कि वे तुरन्त ही खाई में चले जाँय।

परन्तु नेताजी अपने स्थान से एक इञ्च भी न हटे।

उन्होंने कहा—"यदि आज़ादी पर जान देने वाले ये सैनिक, अपने

चेहरों पर बिना किसी भय का चिह्न अंकित किये, खड़े रह सकते हैं तो क्या मुझे ही अपने प्राणों के भय से भाग जाना उचित है ?"

इतने में एक गोला समीप ही में गिरा। एक पेड़ में लगा और जोर से फटा।

उस विस्फोट से आजादहिन्द सेना के थोड़े से सिपाही काल कवलित हुए।

परंतु मृत्यु भय से, वहाँ का एक भी सिपाही, टस से मस न हुआ। अचल खड़े रहे वे सब—क्योंकि उनका नेता भी उन्हीं के सामने सीना ताने खड़ा था।

थोड़ी देर बाद शत्रु का एक विमान नेताजी के सर के २० फीट ऊपर से गोले बरसाता हुआ निकल गया।

कुछ अफ़सरों ने नेताजी सुभाष को बलपूर्वक खींचकर खाई में जा बिठाया।

जनवरी १९४५ में फ़ौज की दूसरी मुहिम प्रारम्भ हुई।

२६ जनवरी को रंगून में स्वाधीनता दिवस की सभा हुई।

उस दिन एक गरीब भारतीय ने अपनी एकमात्र सम्पत्ति, चाँदी का एक फूलदान नेताजी को समर्पित किया।

उस फूलदान का नीलाम १ लाख ५ हजार डालर में हुआ।

× × × ×

इधर युद्ध की प्रगति अत्यंत विलक्षण हो उठी थी।

मित्र राष्ट्रों की सेनायें बराबर बढ़ती आ रही थीं परन्तु आजाद हिन्द फौज के वीर सैनिक दृढ़तापूर्वक युद्ध कर रहे थे।

युद्धक्षेत्र में उसके पास अन्न और जल की कमी तो थी ही, युद्ध-सामग्री का भी अभाव था।

अब जापानी भी कुछ सहायता नहीं कर रहे थे।

वे तो मित्र-राष्ट्रों की प्रगति देखकर स्वयं भयभीत हो उठे थे और अपनी रक्षा के लिये सुदृढ़ मोर्चा बनाने की फिक्र में थे।

आजाद हिन्द फौज के उच्च आफ़िसर इधर काफी चिन्तित हो उठे थे।

उन्हें लगता था, जैसे स्वतंत्रता-प्राप्ति का उनका स्वप्न केवल स्वप्न मात्र ही रह जायगा।

२१ फरवरी १९४५ को कैप्टेन शाहनवाज़ पोपा पहाड़ी से अग्रिम मोर्चे के लिये रवाना हुए।

२२ फरवरी को कोक पेडाग में पहुँचकर वे लेफ्टिनेंट ढिल्लन तथा कप्तान सहगल से मिले और उन्हें युद्ध विषयक नये आदेश दिये।

२३ फरवरी को नेताजी सुभाष, शानराज्य की राजधानी टँगी गये और गवर्नमेंट हाउस में ठहरे।

उनके अंगरक्षक बसंत कुमार मल्लिक तथा नोरा मल्लिक भी साथ थे। उनके ये दोनों वीर अंगरक्षक उनके लिये सदैव प्राणोत्सर्ग के लिये प्रस्तुत रहते थे।

उस दिन नेताजी दिन भर अपने आवश्यक कार्यों में व्यस्त रहे।

दूसरे दिन शाम को, जब कि वे अपने कमरे में अकेले बैठकर कुछ आवश्यक कागज़ात देख रहे थे, बसंत उनके पास आया।

"क्या है बसंत!—" पूछा नेताजी सुभाष ने।

"कप्तान शाहनवाज़ का पत्र है देवता!—" कहा बसंत ने और एक लिफाफा उनके समक्ष रख दिया।

नेताजी ने पत्र निकालकर पढ़ा।

कप्तान शाहनवाज़ ने लिखा था—"मित्र-राष्ट्रों की सेनाओं के मुक़ाबले में हमारी बराबर पराजय हो रही है। हमें बाध्य होकर पीछे हटना पड़ रहा है। अन्न तथा जल के अभाव से हमारे कितने ही सैनिक मर चुके। शेष सैनिक भी घबड़ा उठे हैं। हमारी ओर के कितने ही

गद्दार सैनिक तथा आफिसर ब्रिटिश सेना से जा मिले हैं। यह हमारे लिये अत्यन्त चिन्ता का विषय है। जो सैनिक हमारे साथ विश्वासघात करके इस प्रकार शत्रु से जा मिले हैं, वे हमारे लिये अत्यन्त भयंकर प्रमाणित होंगे। वे शत्रु को हमारे गुप्त भेद बता देंगे। ऐसी दशा में मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप अपने जान की फ़िक्र करें। क्योंकि मैं जानता हूँ कि ब्रिटिश गुप्तचर सदैव आपके पीछे हैं और सरकारी तोपें आप पर गोला फेंकने के लिये रात-दिन तैयार खड़ी रहती हैं। इधर मैंने घूम-घूमकर सब मोरचों का निरीक्षण किया है। कप्तान सहगल तथा लेफ्टिनेन्ट ढिल्लन से भी मिला। युद्ध अत्यन्त निराशापूर्ण ढंग से जारी है। सभी अधिकारी हताश-से हो उठे हैं। स्वयं मेरा अपना विचार भी कोई आशाजनक नहीं प्रतीत होता।

"ऐसी स्थिति में क्या किया जाय—यह समझ में नहीं आता। हम आपके आज्ञापत्र की प्रतीक्षा में हैं।

—शाहनवाज़।"

पत्र के पढ़ने पर नेताजी सुभाष की मुखाकृति अत्यन्त गम्भीर हो उठी।

युद्ध की चिन्ताजनक परिस्थिति का समाचार पढ़कर उन्हें अत्यन्त खेद हुआ।

उन्हें ऐसा लगा, जैसे युग-युग के उनके अरमान मिट्टी में मिले जा रहे हों—

जैसे उनकी लहलहाती आशाओं पर तुषारपात हो गया हो—

जैसे जननी जन्मभूमि के पैरों में पड़ी हुई परतन्त्रता की बेड़ियाँ तीव्ररूप से झंकृत हो उठी हों—

जैसे चालीस करोड़ गुलामों की निरीह आँखें, उन्हें करुण-भाव से देख रही हों!

नेताजी ने अपना सर उठाया तो देखा, बसन्त कुमार अब तक खड़ा था।

"तुम कुछ और कहना चाहते हो क्या बसन्त!—" पूछा नेताजी ने।

"क्या मोर्चे पर से कोई चिन्ताजनक समाचार आया है नेताजी!—"

"हाँ!—" नेताजी बोले—"परिस्थिति अत्यन्त जटिल हो उठी है। कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करें..."

"एक बात मैं कहना चाहता था देवता!—" धीरे से बोला बसन्त कुमार।

"कहो!..." नेताजी ने उत्सुक-दृष्टि से देखा, बसन्त की ओर।

"बात यह है देवता!—" बसन्त कहने लगा—"कि ब्रिटिश गुप्तचर हमेशा आपका पीछा कर रहे हैं..."

"तुम्हारी इस आशंका का कारण?—" नेताजी ने पूछा।

"बहुत बड़ा कारण है श्रीमान्!—" बसन्त बोला—"सारी बातें आपसे नीरा कहेगी..."

"कहाँ है नीरा?" पूछा नेताजी सुभाष ने।

"वह द्वार पर उपस्थित है—" बोला बसंत—"आज्ञा हो तो अन्दर बुला लूँ..."

"बुलाओ!...."

गम्भीर स्वर में आज्ञा दी नेताजी ने।

बसंत ने द्वार पर जाकर नीरा को पुकारा।

नीरा, नेताजी के समक्ष आ उपस्थित हुई।

"नीरा! क्या तुम्हें किसी नई बात का पता लगा है?—" पूछा सुभाष बाबू ने।

"हाँ देवता!..."

"सब बातें मुझे विस्तारपूर्वक बताओ..." आज्ञा दी नेताजी ने।

"आज दोपहर के समय—" कहने लगी नीरा—"मैं वेश बदल कर शहर में घूम रही थी कि...." कहने लगी नीरा—

× × × ×

उस दिन दोपहर के समय नीरा वेश बदलकर शहर में घूम रही थी।

उसका वह घूमना किसी महत्वपूर्ण कारण से न था—वरन् वह यों ही दिल बहलाने शहर चली गई थी।

एक होटल में जाकर उसने चाय पी।

चाय पीते समय उसकी दृष्टि एकाएक कोने की मेज़ के पास बैठे हुए, एक मामूली से आदमी पर पड़ी।

उस मनुष्य की वेश-भूषा सन्दिग्ध थी और वह अत्यन्त ध्यानपूर्वक नीरा की ओर देख रहा था।

उसकी भाव-भंगी देखकर नीरा सतर्क हो गई।

जब उस व्यक्ति ने देखा कि नीरा भी उसकी ओर देख रही है तो वह ज़रा भी विचलित न हुआ।

वह उठ खड़ा हुआ और इतमीनान के साथ आकर नीरा की बगल-वाली खाली कुर्सी पर जा बैठा।

बेयरा को बुलाकर उसने दो कप चाय लाने की आज्ञा दी।

"आप अकेले हैं, फिर आपने दो कप चाय का आर्डर क्यों दिया?" अपनी उत्सुकता न रोक सकने के कारण नीरा पूछ बैठी।

वह हँसा। बोला—"एक अपने लिये और एक आप के लिये...."

अब तक नीरा को यह विश्वास हो चला था कि यह व्यक्ति अवश्य कोई गुप्तचर है।

नीरा ने उसे उल्लू बनाने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

"इतना अपनत्व क्यों महाशय!...एक अपरिचिता के साथ इतनी आत्मीयता क्यों प्रदर्शित कर रहे हैं आप?—"

आँखों पर कटाक्ष का घातक तीर चढ़ाकर फेंका नीरा ने और ऐसा प्रतीत हुआ कि कारी तीर ने उस व्यक्ति के हृदय में पैठकर वहाँ हलचल मचा दी है।

पुनः हँस पड़ा वह व्यक्ति।

"एक भारतीय होने के नाते, आपके प्रति इस सम्मान-प्रदर्शन का अधिकारी हूँ मैं—" बोला वह—"यदि मैं भूल नहीं करता तो आप भी भारतीय ही हैं श्रीमती!"

"अवश्य भारतीय हूँ!—" मुस्करा कर बोली नीरा—"परन्तु मैं श्रीमती नहीं, कुमारी हूँ..."

नीरा की इस बात ने उस व्यक्ति के कलेजे में पैठकर गुदगुदी कर दी।

नीरा और वह व्यक्ति, दोनों अपनी अपनी ताक में थे।

नीरा समझती थी कि यह शत्रु का गुप्तचर है, अतः इससे किसी प्रकार कुछ भेद जान लेना चाहिये।

उधर उस व्यक्ति को भी नीरा पर सन्देह हो चला था। वह जान गया था कि यह युवती अवश्य ही आज़ादहिन्द सरकार की गुप्तचर है। अतः उसने सोचा कि इसे फाँसकर, काम की बातें जान ले और अपने सदर दफ्तर को समाचार भेज दे।

परंतु नीरा के पास जो अनुपम एवं मादक सौंदर्य था, उसकी लपेट में आकर वह व्यक्ति अपना ध्येय कदाचित् भूलता जा रहा था।

"तो आप कुमारी हैं अब तक?—" वह बोला—"शुभ नाम क्या हैं आपका?"

"कुमारी नीलम जोशी..."

नीरा की मुस्कान, आरक्त अधरों पर लोट गई और उस व्यक्ति के हृदय पर वासना का साँप लोट गया।

"बड़ा सुन्दर नाम है आपका!—" कहा उसने।

"और आपका नाम भी सुन्दर ही होगा महाशय !—" नीरा बोली—"क्या मैं जान सकती हूँ ?"

"नाम ?...आप मेरा नाम जानना चाहती हैं ?...है नाम... नाम है..."

वह व्यक्ति अस्त-व्यस्त स्वर में बोला। वह एकाएक घबड़ा उठा था, जैसे उसे किसी ऐसे प्रश्न की आशा न रही हो।

"बताने का कष्ट कीजिये अपना नाम !—" कहा नीरा ने।

"इसमें कष्ट की क्या बात है कुमारी नीलम !—" कुछ सोचकर बोला वह व्यक्ति—"मेरा नाम रसिकलाल मजूमदार है..."

"तो आप बंगाली हैं ?—" पूछा नीरा ने।

"जी हाँ !..." रसिकलाल ने कहा, यद्यपि वह बंगाली नहीं मालूम हो रहा था।

उसने झूठ कहा था।

नीरा भी बंगाल की ही थी। अतः वह उससे बँगला में बातें करने लगी। रसिकलाल बँगला समझता तो था नहीं—बीच-बीच में केवल-हूँ हाँ, कर दिया करता था।

"क्या आप बँगला नहीं समझते ?—"

पूछा नीरा ने।

"जी !....बात यह है—" कुछ घबड़ाकर वह बोला—"मैं बंगाली हूँ अवश्य मगर हमेशा अपने प्रान्त से बाहर रहा हूँ...इसीलिये बँगला भाषा समझ नहीं सकता...'

"आश्चर्य है—" नीरा बोली—"आप बंगाली होकर भी बँगला नहीं जानते ?....और मुझे देखिये !...मैं युक्तप्रान्त की होते हुए भी बँगला, मराठी, पंजाबी, तेलेगू आदि भाषायें जानती हूँ...."

यह बात नीरा ने झूठ कही।

बेचारा रसिकलाल, अपने को बंगाली कहकर अजीब उलझन में फँस गया।

वह क्या जानता था कि नीरा बँगला भाषा जानती होगी।

तब तक बेयरा चाय के कप मेज पर रख गया था।

दोनों चाय पीने लगे।

चुपचाप।

हाँ, बीच-बीच में दोनों अपनी नजरें उठाकर एक दूसरे की ओर अवश्य देख लेते थे—

नीरा के नयनों में लहराते हुए हलाहल को देखकर रसिकलाल की वासना सजग हो उठी।

"आप यहाँ क्या काम करते हैं ?—" नीरा ने पूछा।

"मैं !..." पुनः घबड़ा गया रसिक—जैसे नीरा का सौन्दर्य उस पर छा गया हो—"मैं !...मैं तो यहाँ पर एक बैंक में क्लर्क हूँ...और आप ?..."

"मैं चांगलिंग ब्रदर्स में टाइपिस्ट हूँ—"

बिना किसी हिचकिचाहट के नीरा ने उत्तर दिया।

"आशा है, आप को मेरा साथ पसन्द आया होगा...." रसिक ने कहा।

"ओह ! बहुत-बहुत !..." नीरा ने अपना हाथ रसिक के हाथ पर रख दिया। उस मूर्ख गुप्तचर का शरीर रोमांचित हो उठा—"मुझे आपका साथ बेहद पसन्द आया मिस्टर रसिकलाल !...."

"क्या आप मुझे अपना दोस्त समझेंगी कुमारी नीलम !—"

"ओह ! केवल दोस्त ही नहीं मिस्टर रसिकलाल !..." नीरा एक घातक अँगड़ाई लेकर बोली—"मैं आपको अपने कलेजे में छिपा रखूँगी..."

"डार्लिङ्ग !" आवेशपूर्ण स्वर में बोला रसिक।

"डियर !..."

धीरे से बोली नीरा।

यह स्पष्ट था कि रसिक अपना ध्येय भूलकर नीरा के मादक सौन्दर्य का शिकार हो चुका था—

और नीरा ?

वह तो उस मूर्ख को बहला कर कुछ पता लगाना चाहती थी।

रसिक ने बेयरा को पुकारा।

बेयरा आया।

'देखो !—" रसिकलाल बेयरा से बोला—"हम दोनों के लिये एक प्राइवेट रूम की व्यवस्था करो..."

"बहुत अच्छा हुज़ूर !—"

मुस्करा कर बोला बेयरा।

वह समझ गया कि इन दोनों दीवानों की जवानी कुलबुला उठी है और वासना की आग, प्राइवेट रूम में जाकर, तृप्ति-वारि द्वारा बुझना चाहती है।

शीघ्र ही दोनों प्राइवेट रूम के एक कोच पर आ बैठे।

रसिकलाल ने नीरा के मादक सौन्दर्य की ओर लोलुप-दृष्टि से देखा और आवेश में आकर उसे अपनी ओर खींचना चाहा तो नीरा ने उसे रोका

"अभी नहीं !—" वह बोली—"ज़रा ठहर जाओ। इन्तज़ार की तड़पन से दिल को और बेताब बना लो डियर..."

"नहीं नीलम !—" बोला रसिक—"अब अधिक देर नहीं सहा जायगा।"

"पहले कुछ और आने दो..."

नीरा ने पहेली-सा बुझाया।

"और क्या ?—" पूछा रसिक ने।

'और कुछ !—'

"मुझे समझा कर कहो नीलम !..."

"और कुछ !—" नीरा बोली—"रम वग़ैरह !"

"रम ?...ओह ! मैं नहीं जानता था कि तुम पीती भी हो—" रसिकलाल ने धीरे से हँसकर कहा—"मगर रम ठीक नहीं रहेगा... पोर्चुगल मँगाऊँ ?"

"जैसी तुम्हारी इच्छा !—"

शीघ्र ही बेयरा को एक बोतल 'पोर्चुगल' का आर्डर दिया गया।

थोड़ी देर बाद पोर्चुगल, सोडा तथा जाम आ गये।

नीरा ने जाम भरा और रसिक के होठों से लगाया।

"पहले तुम पियो मिस नीलम !..." कहा रसिक ने।

"नहीं, पहले तुम मिस्टर रसिकलाल !..."

और रसिकलाल इनकार न कर सका।

कई जाम गले के नीचे उतरते ही रसिक के नेत्र लाल-लाल हो उठे। ज़बान पर लड़खड़ाहट आ गई। शरीर अवश-सा हो गया।

"अरे ! तुमने तो अभी तक एक बूँद भी नहीं पी ?..." आश्चर्य-पूर्ण स्वर में बोला रसिकलाल।

"यह पूरी बोतल तुम पी लो—मैं अपने लिये तो रम ही मँगाऊँगी। मुझे पोर्चुगल पसन्द नहीं..."

नीरा ने कहा।

"तो तुमने पहले ही क्यों नहीं बताया !" रसिक बोला—"मैं रम ही मँगाता..."

"क्या हर्ज है ?—"

दो-तीन जाम और पीते ही बोतल खाली हो गई और रसिकलाल मदहोशी से झूमने लगा।

आज उसने अपनी शक्ति से बाहर मदिरा-पान किया था।

सुन्दरी नीरा के जाम का तिरस्कार वह किस प्रकार करता?

नीरा ने देखा कि उसका शिकार अब अपने वश में नहीं है।

तो वह रसिक की बगल में जा बैठी। उसने अपना दाहिना हाथ उसके गले में डाल दिया। रसिकलाल का सम्पूर्ण शरीर उस मदहोशी में भी सिहर उठा।

"एक बात तो तुमने बताया ही नहीं डियर रसिकलाल!..." नीरा ने कहा।

"कौन...कौन-सी बात डार्लिंग?..."

"यही कि तुम हो कौन?—"

"क्या मैंने तुमसे नहीं बताया?—" रसिकलाल के मुख से ठीक से शब्द नहीं निकल रहे थे—"बताया तो था..."

"कब बताया?—"

"नहीं बताया?...मैं भी कैसा बेवकूफ हूँ कि अपनी डार्लिंग से भी छिपा रहा हूँ—" रसिक बोला—"सुनो, मैं ब्रिटिश सरकार का जासूस हूँ..."

"जासूस?—" बनावटी आश्चर्य प्रदर्शित करती हुई बोली नीरा—"तुम जासूस हो?...अरे बाप रे..."

"क्यों?...क्या हुआ नीलम!—"

"मुझे तुमसे डर लग रहा है रसिकलाल!—" नीरा बोली।

"देखो नीलम! इसलिए तुमसे बताता नहीं था—" रसिक ने कहा—"कि तुम जरूर डर जाओगी...मगर इसमें डरने की क्या बात है? मैं जासूस दूसरों के लिए हूँ तुम्हारे लिए तो मोम का पुतला हूँ..."

हँस पड़ी नीरा, रसिकलाल की मूर्खतापूर्ण भंगिमा देख कर।

बोली—"खैर! तुमने मेरा डर दूर कर दिया...हाँ, यह तो बताओ कि तुम यहाँ आये किसलिए हो?"

"मैं एक बहुत बड़े क्रान्तिकारी के पीछे लगा हूँ नीलम!"

"क्रान्तिकारी !—"

"हाँ !—" रसिक ने कहा—"उसके डर से ब्रिटिश सरकार भी थर्राती है, वह अंगरेजों का सबसे बड़ा शत्रु है...."

"क्या वह यहाँ है ?—" पूछा नीरा ने।

"हाँ ! वह आजकल यहीं है—" रसिक बोला—"मैंने बाज़ी मार ली है। अब वह क्रान्तिकारी किसी प्रकार भी बच नहीं सकता।"

"क्या तुमने उसे क़ैद कर लिया है ?—"

"बड़ी भोली हो तुम नीलम !—" हँसकर कहा रसिकलाल ने—"भला वह शेर कभी मेरी गिरफ्त में आ सकता है ?"

"तब क्या किया है तुमने ?—"

"तुम इन बातों में बड़ी दिलचस्पी दिखा रही हो नीलम !...ठीक है, औरतों में उत्सुकता की मात्रा विशेष होती है, तभी तो वे तिल का ताड़ बना सकती हैं...सुनो, मैंने उसका पता लगाकर अपने दफ्तर में वायरलेस से खबर भेज दी है। कुछ ही घंटों में सरकार के लड़ाकू वायुयान, सैकड़ों की संख्या में, यहाँ आ जायेंगे और गवर्नमेन्ट हाउस पर बम गिराकर उसे ध्वस्त कर देंगे..."

"फिर क्या होगा ?—"

"फिर वह विद्रोही उसी ध्वंसावशेष के नीचे तड़प-तड़पकर अपनी जान दे देगा...और इतना सब करने के कारण मेरी उन्नति भी हो जायगी..."

"........"

सब सुन रही थी नीरा, शान्तिपूर्वक।

उसने अपनी मुखाकृति पर तनिक भी भय का भाव नहीं आने दिया था।

"उस विद्रोही का नाम क्या है मिस्टर रसिकलाल !—" नीरा ने पूछा।

"सुभाषचन्द्र बोस है उसका नाम !—" रसिक ने कहा—"वह भारत का शेर है। हम धोखे से उसकी जान ले सकते हैं मगर उसे क़ैद कर सकने की शक्ति ब्रिटिश सरकार में भी नहीं है..."

एकाएक नीरा उठ खड़ी हुई।

बोली—"मैं अभी आई...मेज़ पर मैं अपना पर्स भूल आई हूँ..."

"रहने दो...पर्स की क्या आवश्यता है ?—"

"नहीं !—" नीरा बोली—"उसमें मेरे बहुत-से रुपये हैं। तुम यहीं बैठो। मैं एक मिनट में आई !"

"तुम मत जाओ...मैं बेयरा से कहकर मँगा लूँगा, अभी !—"

"बेयरा उसे चुरा लेगा—" नीरा ने कहा—"मैं स्वयं जाकर लिये आती हूँ।"

बात यह थी कि नीरा जो कुछ पता लगाना चाहती थी, वह जान चुकी थी। अतः वह एक क्षण भी वहाँ रुकना नहीं चाहती थी।

इस समय उसका एक-एक मिनट बहुमूल्य था। उसी की सूचना पर नेताजी सुभाष का जीवन निर्भर करता था।

रसिकलाल को नीरा की उतावली देखकर कुछ शंका हो चली थी।

वह उठ खड़ा हुआ।

उसकी भंगिमा देखकर नीरा डर गई। वह समझ गई कि रसिक के हृदय में सन्देह का बीज अंकुरित हो उठा है।

रसिकलाल ने नीरा का हाथ मज़बूती के साथ पकड़ लिया।

बोला—"तुम नहीं जा सकती नीलम !...मुझे तुम पर सन्देह है।"

"सन्देह ?...किस बात का सन्देह ?—"

"यही कि तुम शत्रु की गुप्तचर हो...." रसिक बोला।

"आप व्यर्थ शंका करते हैं—" नीरा बोली—"मुझे जाने दीजिये..."

"तुम क्यों जाना चाहती हो, यह मैं जानता हूँ—" रसिक बोला—

"यह न समझना कि एक बोतल शराब पीकर मैं सब कुछ भूल गया हूँ..."

"मुझे जाने दीजिये...मेरा बहुत बड़ा नुकसान हो जायगा..." नीरा ने अपना हाथ छुड़ाने का यत्न करते हुए कहा।

"तुम नहीं जा सकतीं नीलम !..." गरजकर बोला रसिकलाल।

"मैं जाऊँगी..."

झटककर नीरा ने अपना हाथ छुड़ा लिया और दरवाजे की ओर बढ़ी।

"ठहरो नीलम !...ठहरो !...नहीं तो गोली मार दूँगा...."

"............"

पीछे घूमकर देखा नीरा ने।

रसिकलाल रिवाल्वर ताने खड़ा था। उसकी उँगली घोड़े पर थी।

काँप उठी नीरा मगर उसने तुरन्त ही अपने को संयत कर लिया।

"अरे !..." आश्चर्य से नीरा बोली—"मेरा पर्स तो जेब में ही था। मैं व्यर्थ परेशान हुई और आपको क्रोध भी दिलाया..."

कहकर नीरा ने जेब में से एक मनीबेग निकाला।

परन्तु वह मनीबेग न था—वह था पर्स की शकल का एक आटो-मैटिक पिस्तौल।

रसिकलाल अभी उसी तरह खड़ा था।

नीरा ने पर्स खोलने के बहाने से पिस्तौल का घोड़ा दबा दिया।

हलकी-सी आवाज हुई और तनिक-सा धुआँ निकला।

और दूसरे ही क्षण रसिकलाल का आहात शरीर जमीन पर पड़ा तड़प रहा था।

नीरा लपककर बाहर आई। दरवाज़ा बन्द कर दिया।

बेयरा से बोली—"साहब अभी अन्दर सोये हैं। उनका हुक्म है कि उन्हें दो घण्टे बाद जगा दिया जाय, ताकि वे अपने घर जा सकें..."

"जो आज्ञा !—" बेयरा ने कहा।

और नीरा ने उसके हाथ पर कुछ डालर रख दिये—

इसके बाद भागी-भागी नीरा नेताजी के पास आई...

× × × ×

"यह बात इतनी भयानक थी कि आपको सूचना देना आवश्यक था—" नीरा कह रही थी—"इसीलिये अभी-अभी मैं भागी चली आ रही हूँ...."

नेताजी सुभाष अब तब चुपचाप गम्भीरतापूर्वक नीरा की बातें सुन रहे थे। बसन्त कुमार भी मौन खड़ा था।

जब नीरा ने अपना अन्तिम वाक्य समाप्त किया तो नेताजी ने अपना सर ऊपर उठाया।

"तुमने बहुत अच्छा किया नीरा, जो मुझे इस बात की सूचना दे दी...." वे बोले—"मगर अभी तक मेरा यहाँ का कार्य समाप्त नहीं हुआ, अतः मैं यहाँ से कहीं जा भी नहीं सकता....'

"नहीं देवता!—" बसन्त बोला—"इस समय एक-एक क्षण आपके जीवन के लिये खतरनाक है। अपका यहाँ रुकना ठीक नहीं। आप तुरन्त कलाव के लिये प्रस्थान कर दें..."

"यह नहीं हो सकता बसन्त!—" नेताजी दृढ़ स्वर में बोले—"मैं अपनी मृत्यु के भय से अपने कार्य की हानि नहीं कर सकता। इस समय कर्त्तव्य का विशाल पथ मेरे सामने है..."

"आप अपने लिये नहीं तो कम से कम अभागे भारत के लिये अपने जीवन की रक्षा कीजिये नेताजी!—" नीरा बोली—"आज तड़पते हुए भारतीयों की स्वतन्त्रता आपके जीवन पर ही निर्भर है!"

नेताजी निरुत्तर हो गये।

शीघ्र ही वायुयान प्रस्तुत हुआ और नेताजी रातो-रात कलाव आये।

चार घण्टे बाद ही ब्रिटिश वायुयान शान राज्य के गवर्नमेंट हाउस पर गड़गड़ा उठे।

भयंकर गोलाबारी की गई। भवन विध्वंस हो गया।

परन्तु जिस विद्रोही को निष्प्राण करने के लिये यह सब हुआ, वह उस समय बसन्त और नीरा के साथ कलाव में भोजन करने में व्यस्त था।

अब महायुद्ध की प्रगति अनोखा रंग लाने लगी थी। थोड़ी-सी शक्ति एकत्रित करके, क्षुद्र नदी की तरह उमड़ने वाले राष्ट्र, बुरी तरह पराजित हो रहे थे।

मित्र राष्ट्रों की विजय पर विजय होती जा रही थी।

उधर पश्चिम में महाबलशाली जर्मनी, रणभूमि में मुँह के बल आ गिरा था—

और इधर पूर्व में जापानियों की भी बुरी अवस्था आ गई थी।

वे सब जगह से खदेड़े जा रहे थे।

और उस समय तो जापानी एकदम घबरा उठे, जब कि मार्च १९४५ में ब्रिटिश वायुयानों ने टोकियो पर लगातार ९ घण्टे तक बम-वर्षा की।

यद्यपि आज़ादहिन्द फौज प्राणपण से, मित्र राष्ट्रों की सेना को बर्मा में आने से रोक रही थी परन्तु जापानियों से तनिक भी सहायता न मिलने तथा पास में वायुयान, टैंक आदि आवश्यक सामग्री न रहने के कारण, वे भी कुछ करने में असमर्थ थे।

और मित्र सेनायें बराबर विजय पाती हुई बर्मा की ओर बढ़ी आ रही थीं।

अपनी सेना की पराजय से नेताजी सुभाष अत्यन्त विक्षुब्ध थे।

उनका अधिकांश समय चिन्ता में ही व्यतीत होता था।

वे न तो ठीक से भोजन करते थे और न रात को सो सकते थे।

सेना के कितने ही उच्च अफ़सरों ने अपने नेताजी को, चिन्ताकुल अवस्था में, रात-रात भर कमरे में टहलते देखा था—और वे नेताजी के लिये चिन्तित थे—परन्तु क्या कर सकते थे वे?

विवश थे बेचारे।

भरपूर प्रयत्न करने पर भी विजय उनसे दूर होती जा रही थी।

सतत् चिन्तन तथा भोजन एवं निद्रा में व्यतिक्रम होने के कारण नेताजी का स्वास्थ्य गिरने लगा।

उनके मुख पर, असफलता द्वारा उत्पादित कालिमा की स्पष्ट छाप दृष्टिगोचर होती थी।

परिस्थिति अत्यन्त जटिलता धारण किये बैठी थी।

अब तक आज़ादहिन्द सरकार का सदर दफ्तर रंगून में ही था—परन्तु आने वाले संकट का ख्याल कर अप्रेल १९४५ में दफ्तर बैंकाक भेज दिया गया।

सदर दफ्तर के बैंकाक चले जाने पर, अफ़सरों ने नेताजी से भी वहाँ जाने का अनुरोध किया।

परन्तु नेताजी ने अस्वीकार करते हुए कहा—

"मैं अपने वीर साथियों के साथ रणभूमि में ही रहना चाहता हूँ। मैं कभी यह पसन्द नहीं करूँगा कि मेरी अनुपस्थिति से सहयोगी शिथिलता का अनुभव करें...."

"देवता!..." बसन्त कुमार ने कहा—"आप भारत की स्वतन्त्रता के नाम पर अपने जीवन को खतरे में न डालें। हम लोगों के लिये आप का जीवन अमूल्य है और उसी से हमें उत्साह प्राप्त होता है....आप हमारे लिये, हमें प्रोत्साहन देने के लिये, अपने को सुरक्षित रखें—"

"तुम लोग हमारे जीवन के लिये अत्यन्त चिन्तित हो—" नेताजी

ने कहा—"परन्तु मेरी दृष्टि में एक सिपाही के जीवन का ध्येय यही है कि वह रणभूमि में उत्सर्ग हो.. और मैं भी अपने को एक सिपाही ही समझता हूँ। मेरे जीवन का भी उतना ही मूल्य है, जितना तुम्हारे जीवन का अथवा आज़ाद हिन्द फ़ौज के किसी भी सैनिक के जीवन का..."

"आपके विचार यथार्थ है नेताजी !—" नीरा ने कहा—"आपके जीवन का मूल्य हमारे जीवन से अधिक भले ही न हो परन्तु आपकी दूरदर्शिता, आपका अनुभव तथा आपका मस्तिष्क अवश्य अमूल्य है... और हमें आपकी इन वस्तुओं की महान आवश्यकता है...कम से कम इसके लिये आपको अपना जीवन सुरक्षित रखना पड़ेगा..."

बहुत अनुनय-विनय करने पर तब नेताजी बैंकाक जाने को तैयार हुए।

२४ अप्रैल १९४५ को बसन्तकुमार मल्लिक तथा नीरा मल्लिक के साथ वे रंगून से रवाना हुए।

विदा होते समय नेता जी के नेत्र अश्रुपूर्ण हो उठे थे। मुखाकृति वेदनाच्छन्न हो गई थी।

अपने बहादुर सैनिकों को रणभूमि में छोड़ कर, स्वयं प्राण बचा कर भागते हुए उनके हृदय में व्यथा का सागर हल्लोलित हो रहा था।

विदाई के लिए आये हुए अफसरों एवं सैनिकों के समक्ष नेताजी ने भरे हुए स्वर में कहा।

"आज़ाद हिन्द फौज के बहादुर सैनिको एवं अफसरो !

"मैं बहुत ही दुखित हृदय से तुम्हारा साथ छोड़ रहा हूँ। बर्मा छोड़ते हुए मेरा कलेजा टुकड़े-टुकड़े हुआ जा रहा है...

"वह बर्मा—जहाँ हमने अपनी आज़ादी के लिए कितनी ही लड़ाइयाँ लड़ी हैं, जहाँ की भूमि पर हमारे वीर सैनिकों ने अपने खून की नदियाँ बहाई हैं, जहाँ के स्निग्ध वातावरण ने हमारे पौरुष में नवीन-उत्साह भरा है।

"स्वाधीनता का जो युद्ध हम कर रहे हैं, उसमें इम्फल और बर्मा के मोर्चे पर हमारी पराजय हुई है परन्तु इतने से ही हमें हतोत्साह न हो जाना चाहिए। हमें अब भी विजय की आशा है। हम अब भी आज़ादी का स्वप्न देखा करते हैं।

"अभी हमें इस प्रकार की कितनी और लड़ाइयाँ लड़नी पड़ेंगी और न जाने कितनी बार पराजित होना पड़ेगा—

"फिर भी हमारा साथ देने के लिए हमें उत्साहित करने के लिये आशा हमारे साथ रहेगी।

"मैं जन्म से ही आशावादी हूँ। मुझे किसी भी दशा में अपनी पराजय स्वीकार नहीं है। मैं अपनी पराजय को भी विजय के रूप में देखने का अभ्यस्त हूँ।

"अन्त में मैं आप लोगों की वीरता के लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। आपने इम्फल की घाटियों में, अराकान के पहाड़ों पर तथा बर्मा के मैदानों में अपना जो शौर्य प्रदर्शित किया है, वह भारत के स्वातन्त्र्य संग्राम का एक अभूतपूर्व एवं अनुपम इतिहास होगा..."

नेताजी के बैंकाक चले जाने पर, मेजर जेनरल लोकनाथन की अध्यक्षता में सात हज़ार सैनिक बर्मा में रह गये।

उन दिनों आज़ादहिन्द फ़ौज की दशा अत्यन्त चिन्ताजनक हो रही थी।

बहुत-सी टुकड़ियाँ जंगलों में लापता हो गई थीं—बहुत से वीर युद्धभूमि में वीर-गति को प्राप्त हुए थे।

कैप्टेन सहगल ने लगभग पाँच-छः सौ सैनिकों के साथ २८ अप्रेल १९४५ को ब्रिटिश सेना के हाथ आत्मसमर्पण कर दिया।

आत्मसमर्पण के अतिरिक्त उनके पास उपाय ही क्या था?

३ मई १९४५ को रंगून पर सरकार का अधिकार हो गया। आज़ाद-

हिन्द फ़ौज के सभी सैनिक बन्दी बना लिये गये। उसमें कितने ही बड़े-बड़े अफ़सर भी थे।

आज़ादहिन्द बैंक का कार्य पूर्ववत् चालू था।

रंगून के रक्षक तथा चौदहवीं इन्डियन इन्फ़ैन्ट्री के कमाण्डर, ब्रिगेडियर लाडेर ने बैंक पर अपना अधिकार करना ठीक नहीं समझा, क्योंकि बैंक का क्षेत्र तो सामाजिक-सेवा है।

परन्तु १९ मई को ब्रिगेडियर लाडेर का अंगरेज़ी खून पुनः उबल पड़ा। वह बैंक पर टूट पड़ा।

३५ लाख रुपया उस समय बैंक में था—सब लाडेर ने ज़ब्त कर लिया।

उन्हीं दिनों कप्तान शाहनवाज़ भी सितापिनजिक्स नामक स्थान पर गिरफ्तार कर लिये गये और तेगू जेल भेज दिये गये।

इस प्रकार युद्ध की प्रगति मित्र-राष्ट्रों के अनुकूल चलती रही और विजय सदैव उनका साथ देती रही।

अनेक प्रकार के कष्ट उठाने पर भी आज़ादहिन्द फ़ौज के वीर सैनिकों को केवल पराजय ही हाथ लगी।

जापानी भी एकदम घबरा उठे थे और लगातार पीछे भाग रहे थे।

उन दिनों अमेरिकन वैज्ञानिकों ने परमाणु बम जैसे भयानक संहारक का आविष्कार कर लिया था।

५ अगस्त १९४५ को पहला परमाणु बम (Atomic Bomb) अमेरिकन विमान द्वारा हिरोशिमा पर गिराया गया।

जापानियों में हाहाकार मच गया।

इस नये प्रलयंकारी बम का संहार देखकर समग्र संसार भयभीत हो उठा।

८ अगस्त को दूसरा परमाणु बम नागासाकी नामक स्थान पर गिराया गया, जिससे जापान के दाँत खट्टे हो गये।

जापानियों ने समझ लिया कि अब युद्ध ज़ारी रखने में सिवा जन-संहार के और कुछ न होगा।

९ अगस्त सन् १९४५ के दिन, संसार के कोने-कोने में जापान के आत्मसमर्पण का समाचार प्रसारित हो उठा।

जापान सरकार के इस आकस्मिक आत्मसमर्पण से मित्र-राष्ट्रों की प्रसन्नता का पारावार न रहा परन्तु अपनी आन पर मर मिटने वाले कितने ही जापानी अफ़सर एवं सैनिकों ने अपनी इस पराजय से विक्षुब्ध होकर हाराकिरी (आत्महत्या) कर ली।

जापान के आत्मसमर्पण से सुभाष बाबू की चिन्ता बढ़ गई।

वे उस समय सिंगापुर में थे।

उन्हें अब तक उस समाचार पर विश्वास नहीं हो रहा था क्योंकि उन्हें यह आशा नहीं थी कि जापान इतनी जल्दी घुटने टेक देगा।

परन्तु अन्त में उन्हें उक्त समाचार पर विश्वास करना ही पड़ा।

उस समय उनकी स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक हो रही थी। वे अपने कमरे में व्याकुलतापूर्ण भंगिमा धारण किये हुए, इधर से उधर टहल रहे थे।

कभी-कभी रुक कर, आवेशपूर्ण ढंग से मेज़ पर अपना हाथ पटक देते थे।

बसन्त और नीरा, चुपचाप खड़े हुए अपने नेताजी का वह वैकल्य देख रहे थे।

"जापान ने आत्मसमर्पण कर दिया !—" उत्तेजित स्वर में बोले नेताजी—"कायर कहीं का !..."

"नेताजी !—" बसन्त बोला—"अब आपके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि आप अपना आगामी कार्यक्रम तुरन्त निर्धारित कर लें—क्योंकि, जापान की पराजय के बाद, सरकार की सारी शक्ति आपको

बन्दी बनाने के लिये कटिबद्ध है...इस समय एक-एक क्षण, आपके जीवन के लिये भयंकर प्रमाणित हो सकता है..."

"इस समय सरकार के कितने ही बम वर्षक वायुयान तथा जासूस, आपके प्राणों के भूखे होकर इधर आ रहे होंगे देवता!—" नीरा ने कहा—"आप शीघ्र ही कोई निर्णय कर लें!"

"निर्णय कर लिया है—" टहलते-टहलते एकाएक रुक गये नेताजी और गम्भीर स्वर में बोले—"हमें इसी समय बैंकाक जाना होगा...."

"मगर..." बसन्त कुछ कह न सका।

"मगर इस समय बैंकाक जाना खतरे से खाली नहीं है देवता!—" नीरा बोली।

"चाहे जो हो—" नेताजी सुभाष दृढ़ स्वर में बोले—"हमारा वहाँ जाना अत्यन्त आवश्यक है। वहाँ हमारा सदर दफ्तर है। मैं अपने प्राणों की रक्षा करके अपने सहयोगियों को अंधेरे में नहीं छोड़ सकता..."

"आप उनके लिये एक आज्ञापत्र मुझे दे जाँय नेताजी!—" बसन्त ने कहा—"मैं वहाँ जाकर वह आज्ञापत्र दे दूँगा...आप इस समय कहीं दूर चले जाँय....बहुत दूर, जहाँ कुछ दिनों तक शान्ति के साथ रह कर आप पुनः हमारे लिये स्वातन्त्र्य-प्राप्ति का प्रयत्न करें..."

"तुम ठीक कहते हो बसन्त!—" नेताजी सुभाष उस विकट स्थिति में भी धीरे से मुस्करा उठे—"परन्तु तुम यह नहीं सोचते कि मेरे एकाएक भाग जाने से मेरे सैनिक क्या सोचेंगे?"

"......"

सुन रहे थे बसन्त और नीरा।

"क्या वे यह नहीं सोचेंगे कि उनका नेता कायर है और उसने उन्हें मौत के मुँह में छोड़ कर अपनी जान बचाई है?...नहीं-नहीं...मैं अपने प्राणों के मोह से अपने पद का अपमान नहीं कर सकता..."

नेताजी बोले—"तुम वायुयान प्रस्तुत करो...और नीरा देवी ! तुम भी हमारे साथ चलोगी..."

उसी दिन नेताजी, नीरा और बसन्त के साथ बैंकाक आये।

वहाँ पर आज़ादहिन्द सेना के अफ़सरों की एक सभा हुई, जिसमें आत्मसमर्पण पर विचार हुआ।

अधिकांश अफ़सर आत्मसमर्पण करने के विपक्ष में थे। उनका कहना था कि आत्मसमर्पण जापान ने किया है, हमने नहीं। हम अपने शरीर में अन्तिम साँस रहते तक युद्ध जारी रक्खेंगे।

परन्तु नेताजी ने उन्हें समझाया।

कहा—

"वीरो ! आज परिस्थिति ऐसी आ गई है कि हमें बाध्य होकर आप लोगों को आत्मसमर्पण की आज्ञा देनी पड़ रही है। यदि हमने युद्ध करते-करते अपने को नष्ट कर डाला तो आज़ादी पाने की हमारी लालसा का वहीं अन्त हो जायगा...यदि हम जीवित रहे तो पुनः अपने को शक्तिशाली बनाकर शत्रु से मोर्चा ले सकेंगे...अतः मेरा अनुरोध है कि प्रतिकूल समय का ध्यान कर आप लोग अपनी पराजय स्वीकार करें और आत्मसमर्पण कर दें...

"याद रखिये ! यह बाह्य पराजय है...आप का वीर अन्तःकरण कभी पराजित नहीं हो सकता।

"और एक दिन आप पुनः संगठित होकर शत्रु से संघर्ष कर सकेंगे। हमारी जवान धमनियों का खून, एक बार फिर पृथ्वी पर लाल-लाल होकर तैरेगा और हम अपने खून से ही आज़ादी की क़ीमत चुकायेंगे।

"हमारे शहीदों के खून से—उनकी बहादुरी और मर्दानगी से ही हिन्दुस्तान आज़ाद होगा।

"वीरों ! एक दिन वह भी आयेगा जब कि अपने ऊपर जुल्म और सितम ढाने वाले इन सुफेद शैतानों से, हम खून का बदला खून से लेंगे।"

सारी सभा ने चिन्तित हृदय से अपने नेताजी की वह वक्तृता सुनी और मस्तक झुका लिया।

अपने नेता की आज्ञा उन्हें बाध्य होकर स्वीकार करनी पड़ रही थी।

नेताजी ने पुनः कहा —

"बहादुरो! आज तक तुमने अनेक दुखों का सामना करते हुए हमारा जो साथ दिया, उसके लिये मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। तुम्हारे इस वीरता की दाद सारा हिन्दुस्तान देगा।

"सरकार आज बहुत खुश है क्योंकि उसने जर्मनी को पराजित किया, जापान को पराजित किया और हिन्दुस्तान की आज़ादी के लिये लड़नेवाले वीरों को भी पराजित किया....।

"उसे अपनी इस विजय पर गर्व है।

"परन्तु क्या यह उसकी वास्तविक विजय है?—नहीं!

"वह हमें पराजित कर सकती है। हमारे शरीरों को बन्दी बना सकती है...परन्तु हमारी आत्मायें हमेशा विद्रोह करती रहेंगी। हमारा अन्तस्तल सदैव पुकारता रहेगा—अंगरेजों का नाश हो—अंगरेजों! भारत छोड़ दो—"

"तुम्हें यह जानकर और भी दुख होगा कि मैं, जिसे तुम लोगों ने अपने नेता का पवित्र पद प्रदान किया था, तुम्हें छोड़कर किसी अज्ञात स्थान को जा रहा हूँ।

"तुम मुझे कायर न समझना। इतने दिनों की मेरी तपस्या पर अविश्वास मत करना...

"मेरे जाने का रहस्य केवल यही है कि मैं अपने को अभी जीवित रखना चाहता हूँ और अपने शरीर को, अपने प्राणों की भूखी सरकार के हाथ नहीं सौंपना चाहता...केवल इसलिये कि मैं दुनिया के किसी कोने में छिपकर पुनः विद्रोहाग्नि की सृष्टि करूँ।

"मुझे दृढ़ विश्वास है कि इस बार यह विद्रोहाग्नि, अंगरेजों के

सफेद चमड़े को जलाकर राख कर देगी और तब हमारी आज़ादी हमसे ज्यादा दूर नहीं रह जायगी—

"तुम लोग प्रसन्नतापूर्वक मुझे विदा दो—यही मेरी प्रार्थना है। ईश्वर ने चाहा तो मैं जल्द तुम लोगों से मिलूँगा।

"मेरा अन्तिम आदेश यही है कि तुम अपने हृदय में आज़ादी की आग हमेशा भड़काये रखना और मार्ग में आये हुए दुखों को देखकर मायूस न होना। बस, विदा! जय हिन्द!"

नेताजी चुप हो गये तो सारे सैनिक चिल्ला उठे—

नेताजी सुभाष, जिन्दाबाद!

मादरे हिन्द, जिन्दाबाद!...

सभा समाप्त होते ही नेताजी अपने कमरे में आये।

उस समय सन्ध्या हो चुकी थी।

कमरे में आते ही वे आराम कुर्सी पर जा बैठे और चिन्ता में निमग्न हो गये।

इस समय वे अपना भविष्य निर्धारित कर रहे थे।

कहाँ जाँय?—क्या करें?

नेताजी सुभाष यह अच्छी तरह जानते थे कि यदि सरकार उन्हें जीवित पकड़ सकी तो तुरन्त ही तोप के आगे करके उनकी जीवन-लीला समाप्त कर देगी।

और शायद भारतवासी उनकी मृत्यु के विषय में जान भी न सकेंगे।

और यह नहीं चाहते थे नेताजी।

वे यह नहीं चाहते थे कि अपनी जान को सरकार के हाथ सौंप कर मौत का तमाशा देखें।

वे यह नहीं चाहते थे कि उनके मृत शरीर पर ब्रिटिश सरकार के कुत्तों को भौंकने का मौका मिले।

वे यह नहीं चाहते थे कि स्वातन्त्र्य-प्राप्ति का स्वप्न अधूरा छोड़कर अपनी जीवनलीला समाप्त कर दें।

वे चाहते थे एक अद्भुत रीति से गुप्त हो जाना।

वे चाहते थे कि सरकार को उनके चिह्न का भी पता न मिले और वे दुनिया के किसी कोने में छिपकर आज़ादी पाने का पुनः स्वप्न देखें।

वे चाहते थे कि अज्ञातवास कर पुनः क्रान्ति का सृजन करें और अपने गुलाम देशवासियों के लिये स्वतन्त्रता का आह्वान करें।

परन्तु यह कैसे सम्भव था?

इस समय जापान के आत्मसमर्पण कर देने से परिस्थिति अत्यन्त भयंकर हो उठी थी।

सरकारी दस्ते चारो ओर नेताजी को जीवित अथवा मृत पकड़ने के लिये प्रयत्नशील थे और चारो ओर ताक लगाये घूम रहे थे।

यदि उन्हें मालूम हो जाय कि नेताजी इस समय कहाँ हैं तो वे उन्हें पाने के लिये ज़मीन-आसमान एक कर दें।

नेताजी जानते थे कि कुछ ही घंटों में सरकारी दस्ते अवश्य उस स्थान को घेर लेंगे और तब उनका पलायन करना सर्वथा असम्भव हो जायगा।

अतः उन्हें शीघ्र ही कोई निर्णय करना था।

परन्तु उनका मस्तिष्क चिन्ताओं के भार से इतना दब गया था कि वे कुछ सोच ही नहीं पा रहे थे।

बहुत देर तक सोचते रहे सुभाष।

अन्त में उन्होंने टोकियो जाकर जापान के सम्राट हिरोहितो से भेंट करने का निश्चय किया। ऐसा करना सुविधाजनक एवं खतरे से खाली

नहीं था फिर भी कुछ ऐसी बातें थीं, जिनका निराकरण केवल जापान सम्राट ही कर सकते थे।

नेताजी ने एक लम्बी साँस खींची और धीरे से ताली बजाई।

उस समय द्वार पर नीरा रायफल लिये पहरा दे रही थी। ताली की आवाज सुन कर वह भीतर आई।

"क्या आज्ञा है ?—" उसने पूछा।

"देखो, कर्नल हबीबुर्रहमान को यहाँ आने का सन्देश दो अभी, इसी समय !..." नेताजी ने कहा।

तेजी के साथ नीरा कमरे से बाहर चली गई।

दो मिनट के बाद ही कर्नल हबीबुर्रहमान ने वहाँ प्रवेश किया।

"आज्ञा !..." कर्नल ने पूछा।

"देखो कर्नल !—" नेताजी बोले—"इस समय मेरे लिये जापान सम्राट से मिलना आवश्यक हो गया है..."

"कारण ?—"

"कुछ ऐसी बातें हैं, जिनके विषय में मैं उनसे स्पष्टीकरण चाहता हूँ और उन बातों पर ही मेरा भविष्य निर्भर है—" नेताजी ने कहा।

"मेरे लिये क्या हुक्म होता है ?—" कर्नल ने पूछा।

"मैं इसी समय टोकियो प्रस्थान करूँगा"—नेताजी ने कहा—"और तुम भी मेरे साथ रहोगे..."

"जो आज्ञा !..." कर्नल ने इतना कहा ही था कि बसन्त घबराया हुआ कमरे में घुस आया।

बोला—"गजब होना चाहता है देवता !...आप शीघ्र ही यहाँ से भागने का प्रबन्ध कीजिये..."

"क्या बात है बसन्त !—" संयत स्वर में पूछा नेताजी ने। विपत्ति में भी वे घबराना नहीं जानते थे।

"थोड़ी ही देर में सैकड़ों सरकारी वायुयान यहाँ पहुँच रहे हैं और

इस स्थान को गोलाबारी करके ध्वस्त कर देंगे—' बसन्त ने कहा—"शायद उन्हें आपके यहाँ होने का पता लग गया है..."

"यह कोई असम्भव बात नहीं बसन्त !...'

"और पैदल दस्ते भी जल्द यहाँ आकर इस स्थान को चारो ओर से घेर लेंगे...." बसन्त बोला। उसका मुख नेताजी की चिन्ता से पीला पड़ गया था।

"तुम बहुत घबरा गये हो मित्र !—" हँसकर बोले नेताजी।

"आप हँस रहे हैं देवता !....परन्तु यह हँसने का समय नहीं है—" बसंत बोला—"आप अभी यहाँ से हवाई अड्डे की ओर निकल चलिये। मैंने आपके जाने का पूरा प्रबन्ध कर रखा है। यहाँ से हवाई अड्डे तक जाने के लिये तीन घोड़े मौजूद हैं देवता !"

"ठीक है !" नेताजी ने कहा—"तुमने बहुत अच्छा किया, जो समय पर मुझे खबर कर दी...तुम और नीरा भी जल्द तैयार हो जाओ..."

दौड़ता हुआ बसंत बाहर चला गया।

जब नेताजी, कर्नल हबीबुर्रहमान के साथ बाहर आये तो दूर से आते हुए कितने ही वायुयानों की गड़गड़ाहट उन्हें सुनाई दी।

और बसन्त तथा नीरा तीन घोड़ों के साथ खड़े थे, नेताजी की प्रतीक्षा में।

अर्द्ध रात्रि हो चुकी थी—

एक घोड़े पर नेताजी, दूसरे पर कर्नल तथा तीसरे पर बसंत और नीरा चढ़कर हवाई अड्डे की ओर तेजी से रवाना हुए।

हवाई जहाज़ों की गड़गड़ाहट नज़दीक सुनाई पड़ने लगी थी।

यह आवश्यक था कि उन हवाई जहाजों के पहुँचने के पहले ही नेताजी हवाई अड्डे पर पहुँच जाँय और किसी हवाई जहाज़ पर चढ़कर भाग जाँय।

ऊबड़-खाबड़ रास्ता तय करते हुए तीनों घोड़े सरपट दौड़े जा रहे थे, जैसे आने वाली विपत्ति का उन्हें भी ज्ञान हो गया हो।

हवाई अड्डा आ गया। सब घोड़ों पर से उतर पड़े।

एक द्रुतगामी हवाई जहाज़ पर दौड़कर नेताजी बैठ गये—चालक के स्थान पर।

कर्नल हबीबुर्रहमान भी जा चढ़े।

परन्तु जब नीरा और बसंत चढ़ने लगे तो नेताजी ने उन्हें रोक दिया।

"मित्रो !—" भर्राई हुई आवाज़ में बोले वे—"तुम लोग हमारे साथ नहीं जा सकोगे। हम तुम्हें कभी भूल नहीं सकेंगे—हो सका तो फिर मिलेंगे, विदा !"

कुछ बोल न सके नीरा और बसंत।

दोनों के नेत्रों में आँसू भर आये, अपने देवता से बिछुड़ने का ध्यान कर।

नेताजी सुभाष ने मशीन स्टार्ट कर दी।

"जय हिन्द मित्रो !—" नेताजी ने कहा।

"जय हिन्द..."

रो पड़े वे दोनों।

उसी क्षण भारत के उस महान नेता को लिये वह हवाई जहाज़ आकाश में उड़ गया।

वह भयानक विद्रोही इस बार भी सरकार के हाथ से निकल भागा।

हवाई जहाज़ उड़ा जा रहा था, तेजी के साथ।

नेताजी और कर्नल दोनों चुप थे।

"नेताजी !...' धीरे से बोला कर्नल।

"क्या है कर्नल ?—"

"मेरे विचार से आपका टोकियो जाना भी ख़तरनाक होगा..."

"तुम्हारी इस धारणा का कारण ?—" पूछा नेताजी ने।

"अब हमारा विश्वास जापान पर से जाता रहा—" कर्नल ने कहा—"हो सकता है कि जापान आपको बन्दी बनाकर ब्रिटेन के हाथों सौंप दे और इस प्रकार ब्रिटेन की मैत्री पाने का प्रयत्न करे..."

सोच में पड़ गये नेताजी। कर्नल की बातें युक्तिसंगत थीं।

"क्या सोच रहे हैं आप, नेताजी !—" पूछा कर्नल ने।

"यही कि तुम्हारी बातों में पर्याप्त तर्क है —" नेताजी बोले—"मुझे भी कुछ-कुछ ऐसा ही विश्वास हो चला है..."

"तो फिर जान बूझकर अपने को विपत्ति में डालना कहाँ तक उचित है नेताजी !—" कर्नल ने कहा।

"मैं तुम्हारी बातों पर विचार कर रहा हूँ..." कह कर नेताजी चुप हो रहे।

पुनः निस्तब्धता छा गई। घंटों तक दोनों चुप रहे।

"हैं ! यह क्या ?—" चौंक कर कहा कर्नल ने।

"क्या है कर्नल ?—" पूछा नेताजी ने।

"क्या आप पीछे आते हुए किसी वायुयान की सरसराहट नहीं सुन रहे हैं नेताजी !—" कर्नल ने कहा।

नेताजी ने सुना। अवश्य ही कोई वायुयान उनके वायुयान का पीछा कर रहा था—मगर वह बहुत पीछे था तथा उसकी आवाज़ भी इतनी धीरे से सुनाई पड़ रही थी कि उसे केवल अभ्यस्त कान ही सुन सकते थे।

"वायुयान ही तो है—" नेताजी ने कहा—"ज़रा तुम दूरबीन से देखो तो..."

कर्नल ने दूरबीन निकाली। वह ऐसी दूरबीन थी, जो घने अँधेरे में भी दूर की चीज़ देख सकती थी।

कर्नल ने दूरबीन आँखों से लगाकर देखा—देर तक देखता रहा।

"क्या है कर्नल !—" पूछा नेताजी ने।

"शत्रु का वायुयान है नेताजी !—" कर्नल ने कहा—"हमारा पीछा कर रहा है...लाइट बुझा रखा है उसने, जिससे उसके शत्रु होने में कोई सन्देह नहीं..."

"ठीक है—" गम्भीर हो उठा था नेताजी का मुख-मंडल—"तो हम सफलतापूर्वक भाग नहीं सके। शत्रु हमारे भागने का सुराग पा ही गया..."

"हमें सन्देह है नेताजी'—" कर्नल बोला—"कि इस वायुयान ने बेतार द्वारा अपने साथियों को खबर दे दी हो। ऐसी दशा में हम अधिक दूर तक नहीं जा सकेंगे और अधिक देर तक निरापद भी नहीं रह सकेंगे...."

"तुम दूरबीन आँख पर रखो !—" नेताजी ने कहा—"मैं स्पीड तेज़ करता हूँ..."

नेताजी ने स्पीड तेज़ की। छोटा-सा वायुयान आँधी की तरह आगे की ओर दौड़ा।

"मुझे अपनी फ़िक्र नहीं—" कर्नल बोला—"केवल आपकी चिन्ता है मुझे नेताजी !..."

"घबराओ नहीं कर्नल !...मेरे पास रिवाल्वर है, जो समय आने पर मेरी खोपड़ी चूर-चूर कर देगा और शत्रु केवल मेरा मृतक शरीर ही पा सकेंगे—"

"परन्तु हमें तो अपने नेताजी को जीवित रखना है—" कर्नल दूरबीन आँखों पर लगाये हुए बोला—"खैर ! कोई बात नहीं...वह वायुयान पीछे छूटता जा रहा है...हमारी स्पीड बहुत तेज़ है...परन्तु हैं !...उसने भी अपनी स्पीड बढ़ा दी.. और अब...अब..."

"क्या है कर्नल ?—"

"वह भी बहुत द्रुतगामी वायुयान प्रतीत होता है नेताजी—"

कर्नल ने कहा—"और अगर मेरी आँखें धोखा नहीं देतीं तो उस पर एयर गन्स भी फिट हैं..."

"हूँ..."

विपत्ति सर पर मँडरा रही थी फिर भी नेताजी स्थिर थे।

"कर्नल !..."

"आज्ञा नेताजी !..."

"मैं वायुयान को गोता खिलाता हूँ...तुम सावधान रहना..." नेताजी ने कहा—"मैं उन्हें धोखा देना चाहता हूँ...."

कोई पुरजा दबा दिया उन्होंने।

और वायुयान कलाबाजियाँ खाता हुआ नीचे गिरने लगा।

देखने वाला कभी यह विश्वास नहीं कर सकता था कि उस गिरते हुए विमान के कल-पुर्जे ठीक हैं और यह तो उसके चालक का कौशल है !

गिरते-गिरते विमान भूमि से २५ फुट ऊपर रह गया तो एक झटके के साथ उसका गिरना और कलाबाजियाँ खाना रुका और वह सीधा चलने लगा।

लगभग पन्द्रह मिनट तक वह इसी प्रकार चलता रहा।

इसके बाद एकाएक ऊपर उठने लगा और पुनः अपनी ऊँचाई पर आकर उड़ने लगा।

कर्नल ने देखा—अब भी पीछा करने वाला विमान पूर्ववत् पीछा कर रहा था। अब तो और नज़दीक आ गया था।

"उसने हमारा पीछा नहीं छोड़ा नेताजी !..." कर्नल ने कहा।

"हूँ !...." नेताजी ने कहा फिर चुप हो रहे।

एकाएक नेताजी को विमान की एक मशीन बन्द होती जान पड़ी।

वे चौंक पड़े—"कर्नल !"

"जी !...."

"हमारे विमान की एक मशीन खराब हो गई—" नेताजी की वाणी अब भी स्थिर थी—"मुझे ऐसा लगता है कि अब हम भाग न सकेंगे...."

उसी समय उनके विमान की गति धीमी होती जान पड़ी।

"मुझे केवल आपकी चिन्ता है नेताजी!—" कर्नल ने कहा।

"देखो!...." नेताजी ने आज्ञा भरे स्वर में कहा—"तुम अपना रिवाल्वर हाथ में ले लो और मौका आते ही मुझे शूट कर देना..."

कर्नल का हृदय हाहाकार कर उठा। बोला वह—"यह मुझसे न होगा नेताजी!..."

"कर्नल!—" कठोर स्वर में बोले नेताजी—"समय कम है...शत्रु सिर पर हैं...जल्दी करो...रिवाल्वर हाथ में लो..."

विवश होकर कर्नल ने अपना रिवाल्वर निकाला।

उसी समय वायरलेस की घण्टी बज उठी।

"कोई कुछ कहना चाहता है कर्नल!—" नेताजी ने कहा और वायरलेस का चोंगा उठाकर कान से लगा लिया।

सुनाई पड़ा—"बी० एन० ६२४..."

नेताजी चौंक पड़े। बोले—"यस!...नम्बर वन, हाई कमाण्ड!... तुम कहाँ से बोल रहे हो बसन्त कुमार..."

"मैं आपके विमान के ठीक ऊपर उड़ते हुए एक दूसरे विमान से बोल रहा हूँ देवता!...हमारे विमान में साइलेन्सर लगा है और यह बहुत ऊपर तक उड़ सकता है..."

"शत्रु का एक वायुयान हमारा पीछा कर रहा है...क्या तुमने उसको देखा है?—" नेताजी ने पूछा।

"देखा है..." आवाज़ आई—"हमारा वायुयान, उस वायुयान के ऊपर से ही आया है परन्तु साइलेन्सर के कारण वे हमें देख न सके..."

"तुम्हारे आने का कारण ?—"

"जब आप विमान पर उड़े, उसी समय शत्रु के इस विमान को हमने आपका पीछा करते देखा...आशंका हुई कि कहीं आप असावधान न हों और यह विमान आपका कुछ अनिष्ट न कर बैठे...और भी एक कारण था..."

"क्या ?—" सुभाष बाबू ने पूछा।

"हमें पता लगा है कि जापान सरकार का रुख आपके प्रति अनिष्ट-कारी है...वह आपको ब्रिटिश-अधिकारियों के हाथ सौंप देना चाहती है..."

"तुम्हारी इस धारणा का कारण ?—"

"केवल कुछ अफ़वाहों के बल पर मैं ऐसा कह रहा हूँ, जिन्हें मैंने हवाई अड्डे पर सुनी थीं...इस बात का खबर देनी अत्यन्त आवश्यक थी, अतः मैंने दूसरा वायुयान लेकर आना ही उचित समझा...मैं आपका पीछा किये जाते हुए देख चुका था, इसलिये भी मेरा आना अनिवार्य हो गया..."

"नीरा को वहीं छोड़ आये ?" नेताजी ने पूछा।

"नहीं देवता !...वह भी मेरे साथ, इसी विमान पर है...आपका पीछा करने वाले विमान ने वायरलेस से अपने साथियों को खबर दे दी है और जहाँ तक मेरा अनुमान है, ताइहोकू पर ब्रिटिश दस्ते तथा विमान आपकी प्रतीक्षा करते रहेंगे..."

सुनकर चौंक पड़े नेताजी। चोंगे से मुँह हटाकर, कर्नल से बोले—

"कर्नल ! ताइहोकू कितनी दूर होगा ?..."

"पचास मील और नेताजी !..." कर्नल ने कहा।

"ओह !..." नेताजी के मस्तक पर पसीने की बूँदें उभर आईं।

मौत उनके चारों ओर मुँह बाये खड़ी थी।

उन्होंने चोंगा पुनः कान से लगा लिया।

आवाज़ आई—"देवता !..."

"ओह! नीरा तुम..." नेताजी बोले—"तुम भी हो बसन्त के साथ ?"

"हाँ !...अपने देवता के ऊपर आनेवाली विपत्ति की सम्भावना देखकर मैं पीछे कैसे रह सकती थी ?..."

"अब तो कोई उपाय शेष नहीं नीरा !—" नेताजी हताश स्वर में बोले—"शत्रु का वायुयान नज़दीक आता जा रहा है...हमारी एक मशीन खराब हो चुकी है...ताइहोकू पर सरकारी विमान एवं दस्ते मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं...जापान मुझे बन्दी बनाकर शत्रु को सौंप देना चाहता है...अब तो कोई मार्ग नहीं रहा....सिवा इसके कि कर्नल मेरे साथ हैं और उनके रिवाल्वर की नली मेरे मस्तक की ओर है, जो विपत्ति की सूचना पाते ही मुझे दुनिया से हटा देगी..."

"नहीं देवता ! अभी उपाय है !—" नीरा के स्वर से हर्ष झलक रहा था।

"क्या उपाय है—" नेताजी ने पूछा।

"हमारे वायुयान पर एयरगन है . हम उससे आपका पीछा करनेवाले इस वायुयान को धराशायी कर देंगे..."

"उसके बाद ?—" नेताजी ने कहा।

"उसके बाद...'

उसी समय आकाश में जोरों की एक चमक हुई और धड़ाका हुआ। नेताजी के विमान के पास से ही एक गोला सर्राता हुआ आगे चला गया।

शत्रु की एयरगन ने गोले उगलना प्रारम्भ कर दिया था। खैर यह हुई कि वह गोला नेताजी के विमान में न लगा।

"आप अपने विमान को तेजी के साथ गोता देकर नीचे ले जाइये हम देख लेंगे इसको..." आवाज आई वायरलेस से।

नेताजी ने वैसा ही किया।

पुनः गड़गड़ाहट हुई और नेताजी के ऊपर उड़नेवाले बसन्त के विमान पर से गोला छूटा और शत्रु के विमान के पास से निकल गया।

शत्रु को भी मालूम हो गया कि उसके विपक्षी दो हैं।

दोनों ओर से गोलाबारी प्रारम्भ हो गयी।

बसन्त का विमान बहुत ऊपर था, अतः उसने शत्रु पर विजय पाई।

शत्रु का विमान धू धू कर जलता हुआ कई सौ फीट नीचे भूमि पर जा गिरा।

नेताजी ने अपना विमान पुनः ठीक किया।

"देवता!..." वायरलेस से नीरा की आवाज आई।

"कहो नीरा!—" नेताजी ने कहा।

"हमारा कहना मानें तो हम एक प्रार्थना—"

"कहो!..."

"समग्र देश के लिये आपका जीवन बहुमूल्य है देवता!...उसकी रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य है...इस समय शत्रु आपके चारों ओर उपस्थित हैं...अब केवल एक उपाय है...वह यह कि सरकार तथा अन्य लोगों को किसी प्रकार यह विश्वास हो जाय कि आप मर चुके तो वे आपका पीछा करना छोड़ देंगे..."

"यह किस प्रकार हो सकता है?—" नेताजी ने पूछा।

"हम आपके सेवक हैं...आपने उस समय हमारे भैया की जान बचाई थी, जिस समय स्वयं आपके लिये ही मृत्यु की आशंका थी...हम आपके उस उपकार का बदला कभी चुका नहीं सकेंगे...अब हमारे ये प्राण आपके हैं...आप कृपा करके हमारे वायुयान पर चले आइये...और हम दोनों आपके विमान पर आ जाँयगे...आप अपनी कुल पोशाक बसन्त भैया को पहना देंगे और आप बसन्त भैया की पोशाक पहनकर भाग जाँयगे...ताइहोकू के पास पहुँचकर हम अपने विमान में आग लगा लेंगे

और भैया का शरीर इतना जल जायगा कि कोई पहचान भी न सकेगा कि यह व्यक्ति आप नहीं हैं..."

"ओह !..." कह कर नेताजी चुप हो रहे।

"बोलिये नेताजी !...जल्दी बोलिये..." नीरा की आवाज थी।

"यह नहीं हो सकता नीरा !—" नेताजी ने कहा—"मैं यह नहीं चाहता कि जिस बसन्त के प्राणों की रक्षा एक दिन मैंने की थी, उसे ही पुनः मौत के मुख में डालूँ—नहीं, यह नहीं होगा मुझसे..."

"देवता !....तुम्हें अपने देश की शपथ...अपनी पवित्र मातृभूमि की शपथ... अपने ध्येय की शपथ...तुम हमें निराश न करो.. तुम हमारी अवहेलना न करो देवता !....हम अपने विमान को और नीचे उतार कर आपके सीध में आते हैं..."

बसन्त का वायुयान, नेताजी के विमान के बगल में आ गया।

दोनों विमान समानान्तर उड़ने लगे। दोनों के पंख आपस में सटे-से थे।

उस विमान पर से, खिड़की की राह कूद कर नीरा, पंख पर आई और वहाँ से नेताजी के विमाग के पंख पर कूद पड़ी।

दूसरे ही क्षण वह विमान के अन्दर थी।

"उठिये नेताजी ! और उस विमान पर जाइये...." नीरा ने कहा।

"देवी नीरा—" नेताजी कंपित स्वर में बोले—"तुम नारी-रत्न हो....माता हो...भारत-माता हो..."

कर्नल चालक के स्थान पर आ रहे। नेताजी पंखों पर से होकर दूसरे विमान पर सकुशल पहुँच गये।

बीच आकाश में उड़ते हुए उन दोनों विमानों पर का यह आवागमन अभूतपूर्व एवं अत्यन्त भयंकर था।

नेताजी ने अपने सब कपड़े, घड़ी, चश्मा आदि उतार दिये और मामूली वस्त्र पहन कर चालक के स्थान पर जा बैठे।

बसन्त ने नेताजी की सब वस्तुयें मस्तक से लगा कर धारण कर लीं। उस समय स्वयं नेताजी भी उसे देख कर आश्चर्यचकित हो उठे। वह पूर्णरूपेण उनका प्रतिरूप प्रतीत हो रहा था।

बसन्त ने नेताजी के चरण छुए। नेताजी की आँखें बरस पड़ीं।

"जाओ वीर!—" बोले वे—"तुमने जो त्याग किया है, उसका बदला मैं क्या, सैकड़ों सुभाष नहीं दे सकते..."

बसन्त उल्लसित हृदय लिये हुए उस विमान पर से दूसरे विमान पर आया।

नीरा और कर्नल उसे देखकर चकित हो उठे।

वायरलेस पर से नेताजी का स्वर आया—"बन्धुओ!... अन्तिम विदा!...जयहिन्द!...."

नीरा बसन्त और कर्नल—तीनों रो पड़े।

भरे हुए गले से उन्होंने कहा—"जयहिन्द!..."

इसके बाद नेताजी का विमान अज्ञात-दिशा की ओर उड़ चला।

बसन्त का वायुयान चलता रहा।

नीरा चुपचाप बैठी रही। कर्नल वायुयान चलाता रहा।

"ताइहोकू कितनी दूर होगा कर्नल!...." बसन्त ने पूछा।

"पाँच मील और नेताजी!...." कर्नल ने कहा।

नेताजी की पोशाक पहने रहने के कारण कर्नल ने बसन्त को भी नेताजी ही कहा, नहीं तो नेताजी की वर्दी का अपमान होता।

"नीरा!..."

"......" नीरा चुप रही।

"नीरा बहन!...."

बसन्त ने जोर से पुकारा। देखा, नीरा के नेत्रों में आँसू छलछला आये थे।

"रोती है..." बसन्त ने कहा—"पगली कहीं की, देश के लिए मरते हुए अपने तुच्छ भैया के लिए रोती है तू..."

"भैया ! .."

"नीरा !" बसन्त दृढ़ स्वर में बोला—"अब समय नहीं है... दियासलाई निकालकर मेरे कपड़ों में आग लगा दे, ताकि ताइहोकू पहुँचते-पहुँचते मैं इतना जल जाऊँ कि कोई पहचान न सके...."

"भैया !..." रो पड़ी जोरों से नीरा। इस समय उसका खोया महत्व जाग उठा था।

"जल्दी कर नीरा !"

एकाएक नीरा ने अपने नेत्र पोंछ लिये।

दोनों भाई-बहन अन्तिम बार एक दूसरे के गले मिले।

फिर नीरा ने काँपते हुए हाथों से दियासलाई निकाली।

बसन्त ने थोड़ा-सा कागज फाड़ कर अपने पैरों के पास रख लिया।

और नीरा ने उन कागजों में आग लगा दी—

जिस वीर रमणी ने एक दिन अपने सिन्दूर में आग लगाई थी, उसी ने आज अपने भाई के शरीर में आग की लपटें लपेटी थीं।

कागज जल उठा। बसन्त के पैर के कपड़ों में आग लग गई।

परन्तु वह वीर निश्चल बैठा रहा।

बसन्त का धड़ जलने लगा...

फिर भी वह स्थिर रहा।

कर्नल गर्व के साथ उस शहीद का जलना देख रहा था।

बसन्त के सारे बदन से लपटें निकलने लगीं।

नीरा चिल्ला उठी—"भैया !..."

"नीरा !..." बसन्त शिथिल स्वर में बोला—"धैर्य रखो नीरा !"

"भैया !..." कह कर नीरा भी बसन्त के शरीर से जा लगी।

उसके शरीर में भी आग लग गई।

आग की लपटों से वायुयान के पेट्रोल की टंकी भी जल उठी। वायुयान ज़ोरों से लड़खड़ाया।

और ताइहोकू हवाई अड्डे के समीप आकर वह भूमि पर जलता हुआ गिर पड़ा...

× × × ×

२३ अगस्त १९४५ को टोकियो रेडियो का यह समाचार संसार भर में प्रसारित हो उठा—

"आज़ादहिन्द की अस्थाई सरकार के सर्वोच्च अधिनायक श्री सुभाषचन्द्र वसु, कर्नल हबीबुर्रहमान के साथ बैंकांक से टोकियो आ रहे थे... फार्मोसा के समीप ताइहोकू नामक स्थान पर उनका विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया...उसमें आग लग गई...फलतः वे मृत्यु को प्राप्त हुए..."

मसलहत का है तकाज़ा,
वक्त की आवाज़ है।
राहे-आज़ादी में मरने का,
यही अन्दाज़ है।
ऐ अज़ीजाने वतन!
तू असल में जाने वतन।
शान है तेरी वतन से
और तू शाने वतन...

बस

निवेदन

'विद्रोही-सुभाष' की जब रचना हुई थी, उस समय तक स्व० सुभाषचन्द्र वसु के जीवन के सम्बन्ध में (भारत से पलायन के उपरान्त) कुछ स्पष्ट नहीं हो पाया था। अखबारी-समाचारों एवं कुछेक अपूर्ण पुस्तकें ही एकमात्र अवलम्ब थीं। हमने भी इन्हीं प्राप्य-साधनों का उपयोग किया था। उनकी मृत्यु के सम्बन्ध में वर्षों तक नानाप्रकार की अफवाहें, सारे देश में फैलती रहीं। जिसकी जो समझ में आता था, प्रचारित कर देता था। सारा देश, अमर शहीद सुभाष के वीरत्व, देश-भक्ति एवं आत्म-बलिदान से इतना अधिक प्रभावित था कि उनके संबंध की किसी भी अफवाह को सत्य ही मान लेता था। अफवाहों के इस झंझावात में, देश के कुछ मूर्धन्य नेता भी विचार-शून्य हो, खो गये

थे। समय बीतता रहा और साथ-साथ अमर-शहीद सुभाष के संबंध में प्रचारित अफवाहों पर 'सत्य' की परत बिछती गयी। और अब तो यह स्पष्ट हो गया है कि वे इस संसार में नहीं रहे।

'विद्रोही-सुभाप' का प्रस्तुत औपन्यासिक-रेखांकन जैसा भी बन पड़ा हो, इसे हमारे स्नेही-पाठकों ने आशातीत सम्मान प्रदान किया। इसमें मैं अपना तनिक भी श्रेय नहीं मानता। यह तो उस प्रज्वलन्त व्यक्तित्व का ओज है, जो भारत ही नही, अपितु संसार के इतिहास में, रक्ताक्षरों में लिखा जायगा। हमने तो उस अमर-शहीद के प्रति अपनी अन्तर्भूत श्रद्धा ही अर्पित की है।

मैंने अमर शहीद वीरवर सुभाप का सम्पूर्ण-जीवन उपन्यासरूप में प्रस्तुत करने का निश्चय किया था। प्रकाशक की जल्दीबाजी से जैसे-तैसे प्राप्य सामग्री के सहारे ही पूर्ण कर देने को विवश होना पड़ा। धीरे-धीरे अमर शहीद की —जीवन-घटनायें, पत्र-पत्रिकाओं तथा अधि-कारी-व्यक्तियों के द्वारा स्पष्टरूप में सामने आने लगीं। सबसे महत्वपूर्ण रहस्योद्घाटन उनकी हंगेरियन पत्नी श्रीमती एमिल शेंकल का हुआ। इसके पूर्व नेताजी सुभाष ने शादी भी की है, कोई सोच भी नहीं सकता था। अपने जर्मनी-प्रवास में सुभाप ने एमिल से बाकायदा शादी

की थी। उनको एक पुत्री भी उत्पन्न हुई थी। दिन पर दिन मैं अनुभव करता जाता था कि मेरा यह प्रयास अपूर्ण है और इसकी यह अपूर्णता मुझे असह्य मालूम पड़ती थी। 'विद्रोही-सुभाष' के संस्करण पर संस्करण समाप्त हो रहे थे। प्रकाशक महोदय एक तो पुस्तक को अत्यन्त भ्रष्टरूप में प्रकाशित कर रहे थे; दूसरे उसमें आवश्यक परिवर्त्तन-परिवर्द्धन करने के लिये राजी न हुए। पाठकों के अनुरोध-पत्रों का ताँता टूटता ही न था कि 'विद्रोही-सुभाष' को शुद्ध और परिवर्द्धित रूप में प्रकाशित किया जाय। अस्तु मुझे बाध्य होकर 'विद्रोही-सुभाष' का प्रस्तुत संस्करण स्वयं प्रकाशित करने को बाध्य होना पड़ा।

मेरा विचार था कि स्व० सुभाष की पत्नी की कहानी बीच ही में जोड़ दी जाय; पर हमारे कुछ साहित्यिक-मित्रों एवं स्नेहमय-बन्धु श्री भगवान प्रसाद (वकील) ने सुझाव दिया कि उनकी पत्नी वाली घटना को उपसंहार रूप में ही दूँ। श्रीमती एमिल वसु से संबंधित कहानी उपसंहार रूप में ही दे रहा हूँ। आशा है, पाठकों को इससे कोई असुविधा नहीं होगी।

एक निवेदन और—

हमने 'विद्रोही सुभाष' के प्रथम संस्करण में ही विनम्र-याचना की थी कि इसमें कुछ कल्पित चरित्रों और घटनाओं की सृष्टि करनी

पड़ी है। बिना उसके प्रस्तुत 'जीवन-इतिहास' में औपन्यासिकता (जो कुछ भी मैं ला पाया हूँ) नहीं आ पाती। हमारे कृपालु-पाठक एवं साहित्यिक-बन्धु मेरे इस 'अपराध' को क्षमा अवश्य कर देंगे।

चिनगारी कार्यालय, —*कुशवाहा 'कान्त'*
काशी ४-१-५२

कुछ और....

सुभाष ने अपना मुँह उठाया। दृष्टि कमरे में शून्य-भाव से घूमती हुई सामने दीवार पर टँगे महात्मा गांधी के तैल-चित्र पर आकर टिक गई। देर तक वे वैसे ही देखते रहे; तभी पीछे से एमिल ने आकर उनके कंधे पर हाथ रख दिया—"ओह, आप आ गये !—अरे, आपकी आँखों में आँसू !—बात क्या है देवता...कोई नई बात..."

"एमिल, हमारे गुरु को तो तुमने देखा नहीं होगा !" अपनी अश्रुमयी आँखें, एमिल की ओर घुमाकर उन्होंने पूछा—"मेरे अन्तर में अपने गुरु के प्रति कितनी श्रद्धा है, इसे तुम जानती हो ?....नहीं-नहीं, मैं स्वयं नहीं जानता कि...शायद कोई नहीं जानता...." और उनके मुँह से एक ठण्डी साँस निकल गई।

"तुम्हें हो क्या गया है...इस तरह उखड़ी-उखड़ी बातें तो तुम कभी नहीं करते थे..."

सुभाष कुछ बोले नहीं। अपने आप में ही खोये-से बैठे रहे। उनकी इस अप्रत्याशित गम्भीरता से वह घबरा उठी। धीरे से आकर उनकी बगल में बैठ गयी। सुभाष पुनः महात्मा गांधी के चित्र की ओर देखने लगे थे।

"प्रिय !"

"हूँ !"

"मेरी ओर देखो...."

"मैं आज बहुत परेशान हूँ एमिल, आज जाने क्यों मेरे मन में बेचैनी-सी भरती आ रही है। देश की पावन-भूमि की करुण-पुकार से जग रहा मैं....ओह, एमिल प्रिये...अब मैं अपने-आपको रोक नहीं

पाऊँगा...जैसे भी हो, हमें अब कुछ करना ही होगा...अपने खून की एक-एक बूँद देश के स्वातंत्र्य-संग्राम के सिंचन में..." आवेग से उनका कंठ-स्वर अवरुद्ध-सा हो उठा। आगे के शब्द रुद्धता में खो गये।

एमिल ने इनका दायाँ हाथ अपने हाथों में ले लिया—"आज सम्राट से भेंट करने गये थे न?"

"हूँ!"

"क्या बात हुई?"

"वे अपने संघर्ष में ही आजकल अस्त-व्यस्त हैं।" सुभाष ने अपने आपको कुछ संयत कर लिया था—"मेरे लिये और कर भी क्या सकेंगे?...चारों ओर से टक्कर खाता हुआ, जर्मनी आया था और इस तानाशाह कहे जाने वाले देश ने मुझे अपना बना लिया...हर हिटलर के उपकारों से मैं ऐसे ही दबा हुआ हूँ...वे बेचारे मेरे लिए जितना कुछ कर सकते थे, पीछे नहीं हटे...अपने अभागे देश के लिये उनसे मैं और आशा भी क्या कर सकता हूँ, बीच की यह हजारों मील की दूरी..." कहते-कहते वे अत्यन्त गंभीर हो उठे—"एमिल, मुझे ही अब कुछ करना होगा...चाहे जैसे हो..."

वे गंभीर-भाव से कुछ सोचते रहे। आन्तरिक आवेग मस्तक पर आड़ी-तिरछी रेखायें बनकर छिटका पड़ रहा था।

"भारत जाना खतरे से खाली नहीं है आपके लिये। ब्रिटिश सरकार एकबार अपने चंगुल में पाकर...नहीं-नहीं, आपको ऐसा नहीं करना है...अपने लिए नहीं तो मेरे लिये...मेरी बच्चो के लिये..." और उसका मुखमंडल आरक्त हो उठा। उसके हाथों ने सुभाष के हाथ को कसकर अपने से आबद्ध कर लिया।

"पागल न बनो एमिल!"

"नहीं!"

"याद करो, तुमने मुझे शेर कहा है..."

"याद है देवता मगर..."

"एमिल, अपने को कमजोर बनाकर तुम मुझे कर्त्तव्य-पथ से विचलित कर दोगी और..."

एमिल ने उनके कंधे पर सिर रख दिया और सिसकती हुई बोली— "मुझे सम्हालो देवता, मैं सचमुच आपके कर्त्तव्य-पथ पर रोड़ा बन रही थी...नहीं, मेरा देवता अपने महान् कर्त्तव्य-पथ से विचलित हो सो भी मेरे कारण...नहीं, मैं इसे कभी सहन नहीं कर पाऊँगी..."

सुभाष का हृदय गर्व से भर उठा। वे एमिल की पीठ पर धीरे-धीरे सान्त्वनामय थपकी देने लगे।

● ● ● ●

दिन बीतते रहे। हर हिटलर की विजय-वाहिनी मित्र-राष्ट्रों का दर्प-दलन करती रही। सारे योरप में त्राहि-त्राहि मच गयी। वह छोटा-सा राष्ट्र ब्रिटेन, अमेरिका, फ्रांस आदि महान् राष्ट्रों के लिये जीवन-मरण का प्रश्न बन गया था। हर हिटलर के नाममात्र से ही अंग्रेजों के रोयें भरभरा आते थे। उधर जापान भी नये जोश के साथ, आगे बढ़ा चला आ रहा था। नेताजी सुभाष की ओजस्वी वाणी, बराबर बर्लिन रेडियो से गूँजा करती। ब्रिटिश-सरकार हर हिटलर के साथ ही सुभाष की ओर भी भीत निगाह से देखने लगी थी। नौकरशाही-कुत्ते, उनकी बोटी-बोटी नोंचने के लिये हमेशा सन्नद्ध रहा करते।

भारतीय सेना के दसवें ब्रिगेड ने लीबिया के युद्धस्थल में अपने देश के उस महान् नेता को उपस्थित पाकर जिस तरह 'आत्म-समर्पण' कर दिया था, उस घटना ने मित्र-राष्ट्रों की आँखें खोल दी थीं। वे इसे भली-भाँति समझ गये थे कि यह बंगाली-तरुण वास्तव में उनके लिये, उनकी साम्राज्यवादिता के लिये, हर हिटलर से कम ख़तरनाक नहीं है।

सुभाष बाबू ने उस भारतीय सेना की टुकड़ी को लेकर 'आजाद

हिन्द फौज' का संघटन कर दिया था। हर हिटलर उस नन्हीं-सी फौज का बाकायदा निरीक्षण करते और सैनिकों में उमड़ रहे उत्साह को देखकर आश्चर्यचकित रह जाते। जर्मन-सरकार ने उनका अलग अस्तित्व मान लिया था। वीरवर सुभाष के नेतृत्व में वे कुछ भी करने को स्वतंत्र थे। एक दक्ष सेनापति की भाँति सुभाष रात-दिन, 'आजाद भारत' के उन 'आजाद सैनिकों' के बलपर ही, जननी-जन्म-भूमि को स्वतंत्र करने की कल्पना किया करते। पर भारत और जर्मनी के बीच की दूरी उनके मार्ग में बाधक सिद्ध होती थी। वे हाथ मल-मलकर रह जाते थे।

जर्मन सेनायें मित्र-राष्ट्रों के छक्के छुड़ा रही थीं। उसके वायुयान लन्दन और न्यूयार्क तक बम गिरा आने को तत्पर रहा करते। सुभाष देखते और हाथ मलकर रह जाते!—

एक दिन।

वे हर हिटलर से उनके खास महल में मिले। दो महान् देश के महान् नेता एक दूसरे को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे।

"मित्र सुभाष, आपके मन में उमड़ने वाले जोश से मैं अपरिचित नहीं। मैं खूब समझता हूँ कि अपने देश के लिये आप हमेशा चिन्ताकुल रहा करते हैं मगर..."

"मैं समझ रहा हूँ श्रीमान् आप...."

"इसका आप कोई ग़लत ख़याल नहीं करेंगे, ऐसी आशा तो मैं कर ही सकता हूँ...."

"नहीं-नहीं!"

"तो अब आप करना क्या चाहते हैं?"

सुभाष विमूढ़-से हो रहे थे।

"बोलिये!"

"हूँ!"

"मैं इसे सुनने का अधिकारी नहीं हूँ शायद...."

"ओह, आप ऐसा सोचते हैं श्रीमान् !"

हर हिटलर ने उनका हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा—"भारत जैसे देश के लिये मेरे मन में अपार श्रद्धा है बन्धु, पर दुख यही है कि फिलहाल मैं, उस महान् देश के लिये कुछ कर सकने में पूर्णतया असमर्थ हूँ..."

वहाँ से उठकर सुभाष सीधे अपनी सेना के कार्यालय में आये। वे आकर कुर्सी पर बैठे ही थे कि कर्नल हसन अली ने झपटते हुए आकर एक तार उनके सामने रख दिया।

"क्या है ?"

"आप देख लें !"

सुभाष ने खोलकर देखा। देखते ही उनकी बाँछे खिल उठीं।

"तार आपने देखा कर्नल !"

"जी !"

"लग रहा है, जैसे हमारा देश अब अधिक दिनों तक परतंत्रता की हवा में साँस नहीं लेगा....हूँ..." वे उठकर कमरे में चहलकदमी करने लगे।

तार में जापान स्थित भारतीय सैनिकों की नव-संघटित आजाद-हिन्द-सेना की ओर से उनको अपना नेतृत्व करने के लिये आमंत्रण दिया गया था। ऐसा अवसर फिर कहाँ मिल पाता ? कर्नल से काफी देर तक बातें करने के बाद वे घर चले आये।

एमिल आराम कुर्सी पर बैठी सुभाष की विख्यात पुस्तक 'दी इण्डियन स्ट्रगल' का अध्ययन कर रही थी। उनके आने की आहट मिलते ही वह हड़बड़ा कर उठ पड़ी।

"मैं जाऊँगा एमिल !"

"कहाँ ?"

"जापान !..."

"क्यों ?"

उन्होंने बिना कुछ बोले तार आगे दिया। एमिल उसे एक ही साँस में पढ़ गई।

"मैं भी साथ रहूँगी !"

सुभाष उसके यह कहने के पहले ही चिन्ता-मग्न हो गये थे।

"देवता !"

"एमिल !"

"मैं साथ रहूँगी ?"

"नहीं एमिल !"

"क्यों ?"

"परिस्थिति अत्यन्त गम्भीर है..."

"तो क्या हुआ, आपके साथ मैं किसी भी परिस्थिति का सामना करने के लिये पूर्णतया समर्थ हूँ। शेर की पत्नी..."

"सो तो मैं मानता हूँ एमिल मगर..."

"नहीं, अब मैं एक भी नहीं सुनूँगी..."

"हमारा रास्ता खतरनाक है एमिल !"

"वह खतरा आपके लिये नहीं रहेगा क्या ?"

"ऐसी बात तो नहीं....पर मैं..."

"नहीं सो होने का नहीं। जो खतरा आप झेल सकते हैं, उसे मैं झेल न सकूँ, इसका कोई समुचित कारण नहीं देख पाती !"

"कुछ समझने की कोशिश करो एमिल !" सुभाष का स्वर आवेग-कंपित था।

"नहीं, मुझे बहलाने की चेष्टा न करो देवता...आपके नाते भारत के प्रति मेरा भी कुछ कर्त्तव्य है और कर्त्तव्य पर अपने आपको कुर्बान कर देने वाले आप, कैसे, क्यों मुझे कर्तव्य-हंता बनाना चाहते हैं, समझ

नहीं पा रही हूँ मैं। तुम्हें बेबी की चिन्ता है, उसे हम यहीं, पिताजी के पास छोड़ देंगे....मगर अपने इन चरणों की छाया से मुझे दूर ढकेलने की चेष्टा कर रहे हैं...." और वह फफक कर रो पड़ी। सुभाष का कंधा आँसुओं से भीगने लगा।

"एमिल !"

"नहीं !"

"मेरी ओर देखो एमिल !"

"नहीं !" एमिल के स्वर में जितनी ही आर्द्रता थी, उतनी ही दृढ़ता भी।

"अपने इन आँसुओं से मुझे तुम संकट में डाल रही हो एमिल !"

"कैसे कह रहे हो देवता !"

"ओह !" उन्होंने अपना मस्तक दोनों हाथों से दबा लिया। एमिल का सारा शरीर रोमांच से भर उठा। एकाएक वह उनसे अलग हट गयी और—"आप मेरे स्वामी हैं और आपके देश में पत्नी के जो कर्त्तव्य हैं, उससे भी अनजान नहीं हूँ मैं। आप अगर सचमुच मुझको अपने कर्त्तव्य-पथ का रोड़ा समझते हैं तो खुशी से जा सकते हैं परन्तु जाने के पहले इतना अवश्य करना पड़ेगा...." और उसने धीरे से उठकर मेज की दराज़ से सुभाष बाबू का रिवाल्वर निकाल कर उनके सामने कर दिया—"इंडियन हिस्ट्री में किसी हाड़ा रानी का जिक्र आया है....आया है न...उस वीर नारी की समता करने की शक्ति मुझमें नहीं मगर... मगर आपसे मेरी यह अन्तिम प्रार्थना है कि इस रिवाल्वर से मेरा मोह-जाल तोड़ कर अपना कर्त्तव्य-पथ निष्कंटक कर लें...." कहते-कहते उसकी मुद्रा अत्यन्त गंभीर हो उठी। स्वर में आँसुओं की तरलता नहीं, व्यक्तित्व का ओज फूटा पड़ रहा था। सुभाष हतबुद्धि से उसकी ओर निहारते रहे। बहुत कुछ कहना चाहकर भी वे कुछ नहीं कह पा रहे थे।

"एमिल "

"देवता !"

"तुम्हें हो क्या गया है एमिल !" सुभाष ने उठकर उसे अपने बाहुओं में ले लिया।

तभी बाहर दरवाजे पर आया बेबी को गोद में लिये चली आई—"मैडम...."

एमिल लपककर दरवाजे की ओर बढ़ी। सुभाष की दृष्टि एक बार बापू के तैल-चित्र की ओर उठी और फिर वे भी दरवाजे की ओर बढ़ गये।



भयंकर सर्दी थी। सुभाष अपने कमरे में पलंग पर करवटें बदल रहे थे। एमिल पास ही दूसरे पलंग पर बेबी के साथ स्वप्न-लोक में विचरण कर रही थी।

सुभाष!—तेरी सृष्टि इस मोह-जाल के लिये नहीं हुई है...देश की कराहभरी मिट्टी चीख-चीखकर पुकार रही है...जन्म-भूमि की बेड़ियों की झनकार तेरा आवाहन कर रही है...और तू है कि सब कुछ भूलकर इस झूठे मोह में उलझा हुआ है—छीः!—देश को तेरी जरूरत है... जरूरत है....उठ और अपने खून से मातृभूमि की गुलामी—अभिशप्त परतन्त्रता को धो डाल...सुभाष !...सुभाष !!...सुभाष !!!...

कानों के परदे को फाड़ता हुआ जैसे कोई चीख़-चीख़कर कह रहा था।

विकल-मन सुभाष उठकर बैठ गये। अपने सामने का सब कुछ उन्हें कुम्हार के चाक की भाँति घूमता महसूस हुआ। धीरे से उठकर वे बरामदे में चले आये। बर्फानी हवा के तीव्र झोंकों ने अंग के रेशे-रेशे को हिला-सा दिया; पर इस वक्त उनके अन्तर में जो ज्वाला धधक रही थी, वह इन बरफानी-झोंकों से क्या बुझती ?

एमिल !—सुभाष...

सुभाष !—एमिल...

उनके मानस का तार-तार झंझावाती हो उठा।

वहीं, बरामदे में पड़े एक कोच पर वे धम्म से बैठ गये। मानस की झंझा में उनका मन—व्यक्तित्व—सब कुछ खो गया...आँखें ढँप गईं मगर वे स्पष्ट देख रहे थे...

छै-सात वर्ष पूर्व—

"कहिये !"

"जी..." सामने खड़ी युवती बेतरह घबराई हुई थी। ठीक से बात भी उसके मुख से नहीं निकल रही थी—"आप...आपने...किसी से अपने लिये कोई प्राइवेट सेक्रेटरी...ओह, माफ कीजियेगा..."

सुभाष बाबू उन दिनों अस्वस्थ होकर वियना में थे। उसकी घबराहट देख, वे अनायास ही मुस्करा उठे—"तो आप शायद उसी संबंध में आई हैं...'

"जी...जी हाँ !"

"बैठ जाइये !"

वह चुपचाप सामने पड़ी कुर्सी पर बैठ गई।

"आपका नाम ?"

"एमिल....एमिल शेंकल !..."

"हूँ !" सुभाष बाबू अब स्वाभाविक रूप से गंभीर हो गये थे। कुछ देर तक मौन रहकर वे उसकी मुद्रा का निरीक्षण करते रहे; फिर—"आप अब तक क्या करती थीं ?"

"जी, मैं टेलीफोन एक्सचेंज में थी...मेरे पिता यहाँ के एक प्रसिद्ध सिविल सर्जन हैं..."

"ओह !" सुभाष ने एक लम्बी साँस ली—"आप इस समय शायद अपनी सर्विस पर नहीं हैं ?"

"जी, हूँ तो !"

"तो फिर..."

"ऐसे ही, आपकी सेवा...

सुभाष खुल कर हँस पड़े तो वह सहम-सी उठी। उन दिनों वे जहाँ भी जाते थे, व्यक्तित्व की प्रखरता के कारण, तरुण-हृदयों पर गहरा प्रभाव पड़ता था। युवा-हृदयों की श्रद्धा अनायास ही उनकी ओर उन्मुख हो उठती थी।

"मगर मुझे तो कुछ ही दिनों के लिये आवश्यकता है। मेरा कोई ठीक नहीं, कब तक यहाँ रहूँ—और आप एक सर्वथा अनिश्चित सर्विस के लिये अपनी स्थायी..."

"मुझे परवाह नहीं!" वह अब काफी संयत हो गई थी।

सुभाष कुछ देर तक सोचते रहे; फिर—"मगर मैं आपको पारिश्रमिक रूप में कुछ अधिक नहीं दे पाऊँगा...मैं वैसे कोई बड़ा आदमी नहीं हूँ..."

"मुझे कुछ नहीं चाहिये...मैं सर्विस अपनी व्यक्तिगत-संतुष्टि के लिये करती हूँ। वैसे मुझे कोई आवश्यकता नहीं..."

और वह सुभाष बाबू के प्राइवेट सेक्रेटरी के पद कार्य करने लगी।

सुभाष बाबू उस समय अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक 'दी इंडियन स्ट्रगल' लिख रहे थे। अस्वस्थता के कारण लिखने में उनको बड़ी तकलीफ होती थी सो अब एमिल शेंकल को डिक्टेट कराने लगे। वे बोलते और एमिल टाइप करती जाती।

सुभाष बाबू का भारतीय और पाश्चात्य दर्शन पर अच्छा अधिकार था। दर्शन उनका आरम्भ ही से प्रिय विषय था। एमिल भी दर्शन शास्त्र से रुचि रखती थी। सुभाष बाबू के सम्पर्क में आने से दर्शन पर उसका अध्ययन अनायास ही गहन होने लगा। उसकी बुद्धि की प्रखरता और विचारों की उज्वलंतता से सुभाष बहुत प्रभावित थे। पुस्तक डिक्टेट कराते समय एमिल कहीं-कहीं शंका-समाधान के हेतु देर तक बहस करती

रह जाती थी। अनुपात में उसके विचार आश्चर्यजनक रूप से परिपक्व थे। एमिल अंग्रेजों से आन्तरिक घृणा करती थी इसलिये भी सुभाष का नैकट्य पाने का अवसर प्राप्त हुआ।

पुस्तक समाप्त हो गयी। सुभाष बाबू भारत लौटने की तैयारी करने लगे।

एक दिन—

"तो आप जा ही रहे हैं ?"

"ऐसा क्यों पूछती हो एमिल !"

"यों ही !" वह गम्भीर हो गयी थी। सुभाष को लगा कि वह चाह कर भी कुछ कह नहीं पा रही है। सामने मेज पर पड़े 'न्यूयार्क टाइम्स' के पन्नों में वे शीघ्र ही खो गये। अखबारी-समाचारों की दुनिया में वे एमिल की बात ही भूल बैठे।

"देवता !"

"हूँ !"

"मैं क्या करूँगी तब ?"

"तुम...." सुभाष ने अखबार के पन्ने पर से आँखें उठा कर देखा—"मैंने तो तुमसे पहले ही कह दिया था एमिल कि मेरा कोई ठीक नहीं, कब चला जाऊँ इसका...."

"वह नहीं देवता !"

"फिर ?"

वह कुछ बोली नहीं।

"एमिल !"

"जी !"

"क्या चाहती हो तुम !"

"मैं...."

"बोलो एमिल, तेरे पास अपना जो कुछ भी है, सब तुम्हारा हो सकता है, बोलो....माँग लो, जो तुम्हें चहिये...."

"मैं भी आपके साथ भारत चलना चाहती हूँ!" उसके मुँह से निकल गया।

"तुम!"

"हूँ क्या यह संभव नहीं?"

"पर...तुम..."

और फिर वे एक महीने तक भारत की ओर रवाना न हो सके।

 

एमिल जीवन में धँसती चली जा रही थी। सुभाष उसे किसी तरह समझा-बुझाकर भारत चले आये। यहाँ आकर वे देश की समस्याओं में इस तरह ग़र्क हो गये कि एमिल की याद उसमें खो-सी गयी।

स्मृतियाँ घुमड़ती रहीं और....

२७ मार्च १९४१ में वे भटकते-भटकते पुनः बर्लिन आये तो एमिल की याद ताजा हो आई। पता लगाया मगर कुछ ज्ञात नहीं हो पाया। अन्त में जब एक दिन वह स्वयं उनके पास आई तो वे प्रसन्नता से बोल उठे—"ओह, मिस एमिल...आओ-आओ, मैं तुम्हारे लिये बहुत परेशान था..."

"सच!"

"हाँ!"

"मेरा सौभाग्य...मुझे तो पाँच-सात दिन हुए पेपर से पता चला कि मेरे देवता...."

"हूँ, क्या कर रही हो आजकल..."

"मैं...वैसे तो कुछ ख़ास नहीं। सर्विस तो आपने खत्म ही कर दी थी; फिर मुझे पूछता ही कौन देवता!" कहती हुई वह उनके पैरों के पास ही बैठ गई।

"अरे-अरे, यहाँ क्यों बैठ रही हो!"

"मैं यहीं ठीक हूँ देवता!" एमिल धीरे-धीरे उनके पैरों पर हाथ फेरने लगी। सुभाष अभिभूत-से उसकी ओर देखते रहे।

"एमिल!"

"देवता!"

"इस बार पुनः सर्विस के लिये आई हो!"

एमिल के होठों पर एक दर्दभरी मुस्कान छा गई—"आप ऐसा ही समझते हैं देवता!"

"तब?"

"खैर, यही सही...."

"मगर इस बार तो मैंने किसी से प्राइवेट सेक्रेटरी की आवश्यकता का डिमांड नहीं किया एमिल....इस बार तो मुझे ऐसी कोई आवश्यकता भी नहीं..."

सुभाष के स्वर में इतनी गंभीरता थी कि एमिल चौंक-सी पड़ी। उसकी मुख-मुद्रा पर निराशा की छाया स्पष्ट से स्पष्टतर होती जा रही थी।

कुछ देर तक दोनों ओर से मौन ही रहा आया।

"मैं आपके संबंध में बहुत चिंतित रहा करती थी देवता!" अन्त में एमिल ने ही मौन भंग किया—"कई बार पत्र द्वारा अपनी याद दिलाने की चेष्टा की परन्तु मेरा यह मात्र दुस्साहस ही था आप मुझे भूले नहीं हैं, आपने मुझे देखकर पहचान लिया, यही मेरे लिये कम नहीं!" उसका स्वर गीला हो उठा था।

सुभाष ने उसे कंधे से पकड़कर उठाया और लाकर एक कुर्सी पर बिठा दिया—"क्या पागलपन कर रही हो एमिल, तुम्हें भूल सकना

मेरे लिये कभी संभव नहीं था...." कहते हुए उनका स्वर काँपा, मन काँपा और काँप उठा व्यक्तित्व का रेशा-रेशा। उनका चेहरा रक्तवर्ण हो उठा, क्षण भर के लिये।

एमिल की छलकती आँखों ने देखा, देखा और समझा और तब उसके शरीर में जैसे विद्युत-प्रवाह लहरा उठा—"मेरे देवता...." उसके मुख से अस्फुट स्वर निकला।

"तुमने अपनी शादी नहीं की एमिल!"

"शादी!" वह एकबारगी चौंकी।

"हूँ!"

"नहीं!"

"क्यों?" सुभाष का स्वर काँप रहा था।

"नहीं की—बस!"

"जीवन की पूर्णता के लिये यह बन्धन कम से कम हमारे देश की संस्कृति में बहुत आवश्यक समझा जाता है...तुम्हारी यह उमर इस तरह मारी-मारी फिरने योग्य नहीं..."

"आपके देश की संस्कृति तो मैं जानती नहीं देवता!"

उसकी इस अल्हड़ता पर सुभाष को गंभीरता छूट-सी गयी—"नहीं कैसे जानती हो! भारतीयदर्शन का अध्ययन कर लेने के बाद भी तुम्हें यह ज्ञात नहीं हो पाया....और फिर तुम्हारे देश में ऐसा तो नहीं है कि इतनी उमर तक सब ऐसे ही रहते हों!"

"आपने तो शायद इस बन्धन को स्वीकार कर लिया है देवता!"

सुभाष को जैसे किसी ने बिजली के हंटर से मारा उनका सारा शरीर सिहरन से भर उठा। फिर भी सम्हाल कर उन्होंने कहा—"मेरी बात और है एमिल—मैंने जो व्रत लिया है, उसके समक्ष सांसारिकता के ये बन्धन नितान्त महत्वहीन है..." कहकर वे चुप रह गये। कुछ देर तक सोचते रहने के बाद पुनः कहने लगे—"मैंने अपने को मोह

ममता के जाल से सदा से पृथक ही रखा है। मातृभूमि की ममता ही मेरे लिये इतनी महत्वशाली है कि अन्य नाते-रिश्ते कभी मुझे अपनी ओर आकर्षित कर ही न सके और न ही भविष्य में..."

देवता !" एमिल बीच ही में बोल उठी—"आप कितने..."

"कह सकती हो एमिल, मुझे तुम पाषाण हृदय कह सकती हो मगर ऐसा कहने, समझने के पूर्व तुम ज़रा ठंडे दिल से मेरे जीवन पर विचार करने का प्रयत्न करो तो विश्वास है, मेरी असमर्थता से अपरिचित नहीं रहोगी !"

"देवता !"

"कहो एमिल !"

"मैं इस पर आपसे बहस नहीं करने आई हूँ और न ही मैं अपना इतना अधिकार ही समझती हूँ। आपके इन चरणों में मेरे लिये तनिक भी स्थान नहीं रह गया है तो जाने दें। मुझ पर विश्वास रखें, भविष्य में फिर कभी यह एमिल, आपको कोई कष्ट देने के लिये नहीं आयेगी..." आवेग से उसका मुख-मंडल तमतमा उठा था।

सुभाष बाबू सहसा इसका कोई उत्तर नहीं दे पाये। व्यग्रतापूर्वक वे कमरे में चहलकदमी करने लगे।

एमिल फिर उनसे अलग नहीं रह पाई।

हर हिटलर तथा जर्मन के अन्य उच्चाधिकारियों के अथक प्रयत्न के परिणामस्वरूप वीरवर सुभाष ने एमिल का पाणि-ग्रहण कर लिया। दोनों पती-पत्नी को हर हिटलर ने अपने महल में स्वयं एक प्रीति-भोज दिया था...

·

"देवता !" तभी अन्दर से एमिल की आवाज आई।

सुभाष चौंक पड़े। स्मृतियों की श्रृंखला झटके के साथ टूट गई।

एमिल उठकर उनके पास चली आई। वह बहुत घबराई हुई थी। आते ही उनके कंधे से लग गई वह—"देवता, मैंने अभी-अभी एक भयंकर स्वप्न देखा है—उफ़!—भारत का कोना-कोना मुझे धिक्कार रहा था...ओह!...देवता, मैंने आपके जीवन में आकर...उफ्...आप अब अपने कर्त्तव्य-पथ पर पूरी शक्ति के साथ आगे बढ़ें...आगे बढ़ें देवता...मेरी चिन्ता आप नहीं करें...आप-से विद्रोही की सह-धर्मिणी होकर मैं...मैं..." और वह हाँफती हुई सुभाष के कंधे पर झुक गई। सुभाष ने उसे अपनी बाँहों में सम्हाल लिया।

सुभाष बाबू जापान जाने की तैयारी में व्यस्त हो गये। एमिल में जाने कहाँ का उत्साह आ समाया था। सुभाष देखते और तब उनके मुँह से एक लम्बा निश्वास निकल जाता। अन्दर ही अन्दर वह किस तरह घुट रही है, कैसा दावानल उसके अन्तर में धधक रहा है—इसे वे खूब समझते थे मगर करते भी क्या?

जापान इस तरह खुले रूप में पहुँचना किसी तरह संभव नहीं था। मित्र-राष्ट्रों के जासूसों की गिद्ध-दृष्टि से बचकर मंजिल तक पहुँचना अत्यावश्यक था वर्ना उनकी सारी कल्पनायें धूल-धूसरित होकर....

अन्त में हर हिटलर के सुझाव से उनका पनडुब्बी से जाना निश्चय हुआ। यह सब अत्यन्त सावधानपूर्वक गुप्त ही रखा गया था।

समुद्र-मार्ग द्वारा इतना लम्बा सफर नितान्त गुप्तरूप से समाप्त कर पाना खतरे से खाली नहीं था; पर सुभाष का सारा जीवन ही दुस्साहस और धैर्य के अवलम्ब पर स्थित था, अतएव सदैव की भाँति वे इस निश्चय पर दृढ़ ही रहे।

"क्या सचमुच आप सबमैरिन द्वारा यात्रा करेंगे देवता !" एमिल ने शंकित-स्वर में पूछा।

"हाँ !" सुभाष अत्यन्त गम्भीर थे—"तुम्हें भय लग रहा है क्या ?"

"नहीं, पर..."

"खतरों में ही मेरी ज़िन्दगी पली है एमिल !"

"फिर भी..."

वे मुस्करा उठे। उनकी मुस्कान में बड़ा बल था—"पगली हो तुम एमिल, ऐसे घबराने से कैसे काम चलेगा ? अपने को संयत करो और..." कहते-कहते वे सहसा रुक गये।

"कब जायेंगे ?"

"कल, रात..."

"ओह !"

"क्यों, क्या बात है ?"

उसने कस कर अपने काँपते हाथों से उनका पैर पकड़ लिया—"देवता, मेरी अब और परीक्षा न लो...मैं अब...ओह !..."

सुभाष को लगा कि जैसे किसी ने उनके कलेजे में सुई चुभो दी हो। पीड़ा के आवेग से उनके प्रशस्त मस्तक पर पसीने की बूँदें चुहचुहा आईं—"तुम मेरी प्रेरणा हो एमिल, अपने को इस तरह भयाकुल बना लोगी तो मैं कुछ भी नहीं कर पाऊँगा और तब.. मेरा सारा जीवन ही निस्सार होकर रह जायगा...एमिल, तुम इसे पसन्द करोगी क्या कि तुम्हारा यह सुभाष अपनी मातृभूमि से दूर, इस विदेश में पड़ा असहायों-सा जीवन व्यतीत करे और उसके देशवासी उसे कायर...देश-द्रोही...और न जाने क्या-क्या कहते फिरें..."

"नहीं-नहीं..." एमिल ने अपने दोनों कान बन्द कर लिये।

"जिसने मरना नहीं सीखा उसे जीने का कोई अधिकार नहीं

एमिल !"—सुभाष धीरे-धीरे उसका मस्तक थपकने लगे—"मैं अगर स्वतंत्रता-प्राप्ति के अपने पावन-मार्ग पर होम भी हो जाऊँ तो...मेरे अधूरे कार्य को तुम पूरा करने का संकल्प करोगी—बस, मुझे तुम पर विश्वास है एमिल..."

"मगर..."

"बोलो न एमिल !"

"मैं किसके सहारे..."

'ओह, सुभाष की पत्नी को किसी सहारे की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिये एमिल !...फिर भी मैं अपने दादा के नाम एक पत्र देता जाऊँगा...उन्होंने हमें अब तक पितृवत् स्नेह दिया है। तुम्हारे लिये भी उनका स्नेह-भंडार मुक्त ही रहेगा..." कहकर सुभाष उठकर खड़े हो गये।

"देवता !"

"उठो एमिल, बेबी का खयाल रखना..." उनकी आँखें गीली हो आई थीं। जल्दी से वे बाहर निकल गये। एमिल किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी वहीं खड़ी रह गई।

दूसरे दिन।

एक विशेष रूप से सुसज्जित सबमैरिन सुभाष को लेकर अथाह जल-राशि में समा गई। एमिल फफक कर रो पड़ी। गोद में दुबकी

बेबी को उसने और कसकर अपने से दाब लिया। उसे सारा संसार उजाड़-उजाड़-सा दीखने लगा था। सुभाष को विदा करने के लिये नव संघटित आजाद हिन्द सेना के कई उच्चाधिकारी एवं जर्मन सरकार के विशेष-सचिव भी आये थे।

एमिल के हाथ में सुभाष का एक पत्र था, जो उन्होंने अपने बड़े भाई श्री शरद्चन्द्र बोस के नाम लिखा था। घर आकर वह हत् चेतन-सी पलंग पर गिर पड़ी। आया ने बेबी को सम्हाल लिया।

उसकी आँसूभरी आँखों के समक्ष सुभाष का वह पत्र था और था उनके महान्-हृदय के निकट बीती हुई घड़ियों की कसकती हुई स्मृति...

सुभाष बाबू ने लिखा था—

पूज्य मेजदादा,

आज मैं फिर एक संकटमयी यात्रा के लिए निकल रहा हूँ—इस बार देश की ओर। हो सकता है मैं अपने उद्दिष्ट स्थान तक न पहुँच सकूँ। यदि मार्ग में कोई दुर्घटना हुई तो मैं आपको अपने बारे में कोई और समाचार न दे सकूँगा। इसलिए आपके नाम यह पत्र छोड़े जा रहा हूँ जो समय पर आप तक पहुँचा दिया जायगा। मैंने यहाँ शादी कर ली है और मेरी इस स्त्री से एक लड़की पैदा हुई है। कृपया मेरी स्त्री और लड़की के लिए आप वही प्रेम रखें जो जीवन भर आपने मेरे लिए रखा। ईश्वर करे मेरी स्त्री और पुत्री मेरे मरने के बाद मेरा

अपूर्ण कार्य पूरा करें। ईश्वर से यही मेरी अन्तिम प्रार्थना है। मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिये और माताजी, मेजबउदीदी (मझली भाभी) और परिवार के दूसरे सदस्यों को प्रणाम कहिये।

आपका प्यारा भाई—
सुभाष।

उसका मानस हाहाकार कर रहा था। मन के कोने-कोने में गूँज रहा था—अब वे कभी नहीं आयेंगे, कभी नहीं...



मेरी रेखायें

'कान्त' एक प्रतिभाशाली उपन्यासकार हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। यों तो मुझे इतना अवकाश नहीं रहता कि मैं उनकी साहित्यिक गतिविधियों का अच्छी तरह निरीक्षण कर सकूँ मगर फिर भी मैंने समय निकाल कर उनके सब उपन्यास पढ़े हैं।

मैं दृढ़तापूर्वक कह सकता हूँ कि जैसी लेखन-शैली 'कान्त' ने पाई है, वैसी बहुत कम उपन्यासकारों को मिली है। उनके उपन्यास में एक वैचित्र्य यह होता है कि पढ़ने से तबियत कहीं भी नहीं ऊबती।

'कान्त' के उपन्यासों में कला-गाम्भीर्य भले ही न हो परन्तु मनोरंजन ऐसा होता है कि आप पुस्तक हाथ से छोड़ नहीं सकते।

इसीलिये मैंने उन्हें 'सर वाल्टर स्काट' की पदवी दे डाली है।

हाँ तो, जब मैंने 'कान्त' से यह सुना कि वे 'विद्रोही सुभाष' नामक उपन्यास लिख रहे हैं, जो कि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की जीवनी से सम्बन्धित है तो मुझे उनके दुस्साहस पर हँसी आ गई।

हँसी इसलिये आई कि एक महान् नेता की जीवनी को उपन्यास रूप में लिखना मैं हास्यास्पद समझता था।

मैं जानता था कि 'कान्त' अब तक सरस, प्रेमपूर्ण दुखान्त उपन्यास ही लिखते आये हैं।

इसलिये मुझे विश्वास नहीं था कि वे सुभाष बाबू की जीवनी के साथ न्याय कर सकेंगे।

परन्तु जब 'कान्त' ने अपना उपन्यास पूर्ण करके मुझे दिखाया तो मैं आश्चर्यचकित हुए बिना न रह सका।

मैंने देखा—'कान्त' ने एक असम्भव बात कर दिखलाई थी। मेरी धारणा उन्होंने असत्य प्रमाणित कर दी थी।

'विद्रोही सुभाष' नामक उपन्यास को मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा तो मुझे मालूम हुआ कि ऐसी पुस्तक मेरे जान में और कहीं से नहीं निकली।

इसमें सुभाषचन्द्र बोस की प्रमाणिक जीवनी दी गई है।

इधर नेताजी सुभाष के विषय की अनेक पुस्तकें

मेरे देखने में आई परन्तु वे सब भी अपूर्ण ही थीं। उनमें से किसी में भी सुभाष बाबू के प्रारम्भिक जीवन का प्रमाणिक दिग्दर्शन नहीं है। हैं तो केवल उनके आज़ादहिन्द फ़ौज की कहानी।

परन्तु प्रस्तुत पुस्तक सबसे निराली है। इसमें सुभाष बाबू का जन्म से लेकर उनके अन्तर्ध्यान होने तक की सारी कथा सुरुचिपूर्ण ढंग से वर्णित है।

ऐसा प्रतीत होता है कि 'कान्त' ने यह पुस्तक लिखने में पूरे मनोयोग से काम लिया है।

मुझे विश्वास न था कि 'कान्त' हमारे सामने कभी ऐसी क्रान्तिकारी चीज़ रख सकेंगे। उपन्यासकार का क्षेत्र कल्पना तक ही सीमित है। अतः पहले मैंने सोचा था कि 'कान्त' अपनी कल्पना का सहारा लेकर जीवनी को असम्भाव्य घटनाओं वाले उपन्यास का रूप न दे दें।

परन्तु मुझे सन्तोष हुआ, यह जानकर कि 'कान्त' ने अपनी क़लम बहुत सम्हाल के चलाई है। वास्तविक घटनाओं पर कल्पना का पुट देकर उन्हें मनोरंजक नहीं बनाया गया है—उन्हें ज्यों का त्यों चित्रित किया गया है।

कल्पना का सहारा वहीं लिया गया है, जहाँ वह अत्यन्त आवश्यक प्रतीत हुआ। कल्पना और वास्तविक घटनाओं का सुन्दर सम्मिश्रण मैंने इसी उपन्यास में देखा।

कल्पना का क्षेत्र उन स्थानों पर कुछ अधिक हो गया है, जहाँ बसन्तकुमार मल्लिक, नीरा मल्लिक और जनरंजन राय हैं।

ये पात्र एक दम काल्पनिक हैं परन्तु लेखक ने उनसे सम्बन्ध रखने वाली घटनाओं को इस तरह पिरोया है कि वे सत्य मालूम होती हैं।

यह जानकर मुझे बड़ी खुशी हुई कि 'कान्त' जी 'विद्रोही सुभाष' का दूसरा संस्करण, परिवर्द्धित और संशोधित रूप में स्वयं निकालने जा रहे हैं। इधर उनकी कुछ पुस्तकें, प्रकाशकों के द्वारा अत्यन्त भ्रष्ट रूप में आ रही थीं। मैंने कई बार इसके लिये 'कान्त' जी को लिखा भी। वे बनारस में रहने लगे और मैं मिर्ज़ापुर के अपने व्यस्त-जीवन में ही इतना अस्त-व्यस्त रहता कि उनसे मिलने तक का मौका मुश्किल से मिल पाता है। बनारस रहते हुए भी 'कान्त' जी मुझे भूले नहीं हैं, जब-तब पत्र द्वारा हम दोनों अपनी मित्रता की कड़ी जोड़ते रहते हैं। उन्होंने जब मुझसे यह कहा कि वे इस संस्करण में स्वर्गीय नेताजी सुभाष की पत्नी एमिल शेंकल सम्बन्धी घटनायें जोड़ना चाहते हैं तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। जब यह पुस्तक लिखी गई थी, तब से अब में बहुत अन्तर आ गया है। नेताजी सम्बन्धी बहुत-सी ऐसी बातों का निराकरण हो गया है, जिनसे बड़ा भ्रामक वातावरण बनता जा रहा था। उनका कहना था कि वे एमिल-सम्बन्धी घटनायें

बीच ही में जोड़ना चाहते हैं मगर मुझे यह उचित नहीं लगा। मैंने राय दी कि एमिल-सम्बन्धी घटनाओं को उपसंहार रूप में ही दिया जाय तो अच्छा हो। मुझे आशा ही नहीं विश्वास है, 'कान्त' जी का प्रस्तुत उपन्यास हिन्दी-कथा-साहित्य में पर्याप्त ख्याति अर्जित करेगा।

अन्त में मैं अपने अभिन्न 'कान्त' जी को अपनी हार्दिक बधाई देता हूँ। साथ ही कामना करूँगा कि उनकी क़लम की स्याही कभी न सूखे—बस।

बार एसोसियेशन,
मिर्ज़ापुर

—भगवान प्रसाद
बी० ए०, एल-एल० बी०
७-१२-५१

